वर्ष-34, अंक-393

संपर्क भाषा भारती

वर्ष 1990 से प्रकाशित कथा साहित्य-समाज को समर्पित राष्ट्रीय मासिकी, जुलाई—2023, RNI-50756

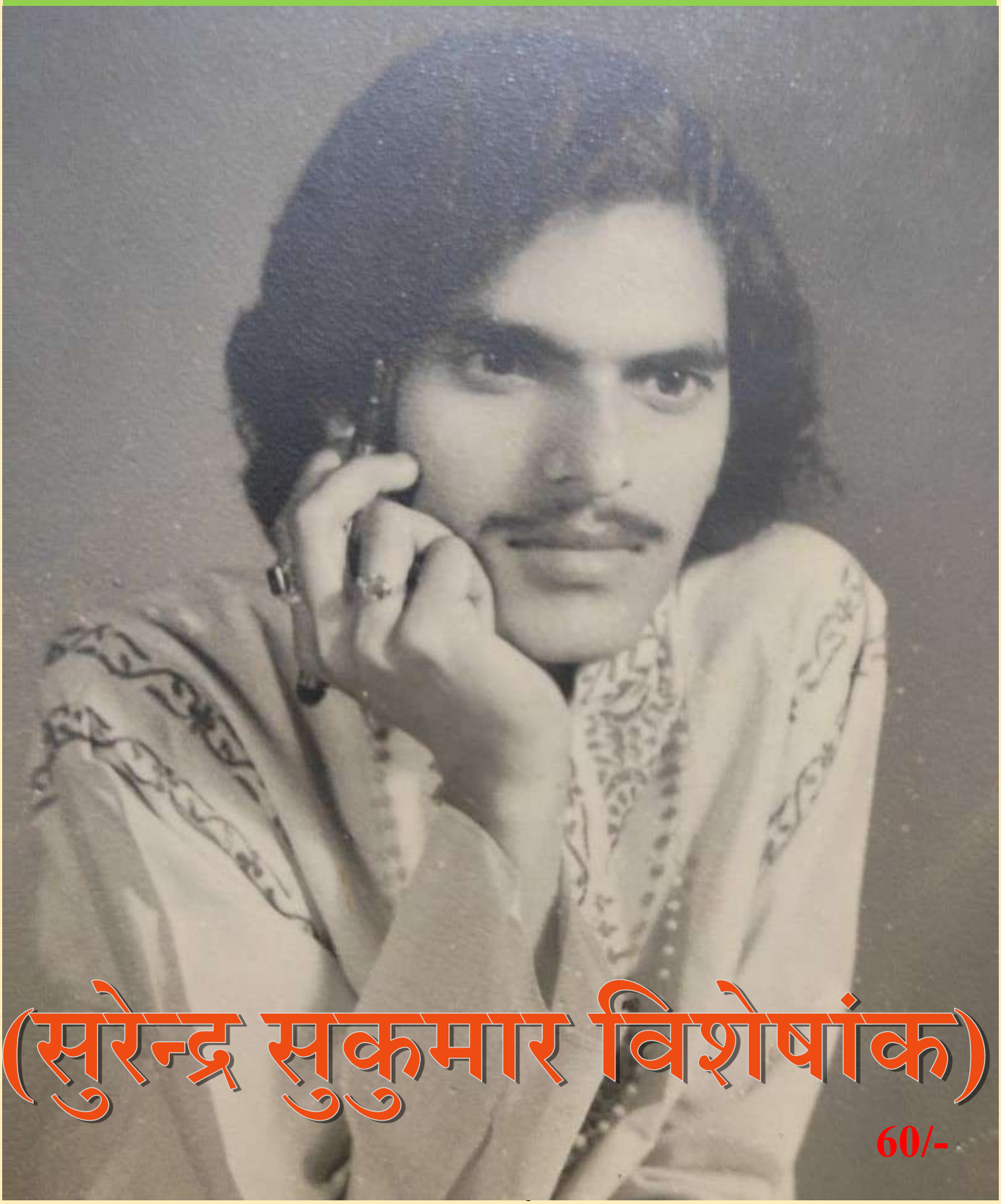

(सुरेन्द्र सुकुमार विशेषांक)

60/-

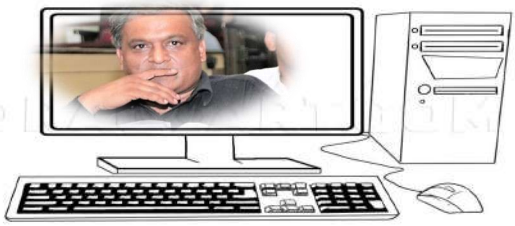

अपनी बात...

संपर्क भाषा भारती पत्रिका के समस्त पाठकगण नमस्कार!

आपकी पत्रिका ने अप्रैल माह 2023 में यह निर्णय लिया था कि पत्रिका अपना जून 2023 का अंक हिन्दी पत्रकारिता के परिचित चेहरे श्री त्रिलोक दीप को समर्पित करेगी। **अब जुलाई 2023, सुरेन्द्र सुकुमार को समर्पित विशेषांक को आपके हाथों सुपुर्द करने की बारी है।**

तय था कि, जुलाई 2023 का अंक यशस्वी कथाकार श्री सुरेन्द्र सुकुमार तथा अगस्त 2023 का अंक लोकप्रिय नवगीतकार डॉक्टर धनंजय सिंह के सम्मान को समर्पित होगा।

मुझे अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि आपकी पत्रिका ने इस क्रम में श्री त्रिलोकदीप के सम्मान में अपना जून अंक 25 मई 2023 को आप के सम्मुख रख पाने में सफलता प्राप्त की।

आमूमनतौर पर प्रत्येक माह 50-60 पृष्ठ समेटे **आपकी पत्रिका ने जून अंक में 172 पठनीय सामग्री प्रदान की।**

जून अंक का अभूतपूर्व स्वागत हुआ। उस अंक को भारतीय जनसंचार संस्थान ने अपने विद्यार्थियों में प्रसारित करने के उद्देश्य से पत्रिका को अपने पोर्टाल पर स्थान दिया।

त्रिलोकदीप विशेषांक को तैयार करते हुए मुझे भी विगत दिनों में लौटने को मजबूर होना पड़ा उसका एक मात्र कारण यह रहा कि श्री त्रिलोक दीप हिन्दी पत्रकारिता के उस युग के द्योतक हैं, उस युग की पहचान हैं जिस युग ने पत्रकारिता के क्षेत्र में हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अप्रतिम हस्तियों को प्रतिष्ठापित किया जिनके साथ मुझे भी जीने का अवसर प्राप्त हुआ था। भवानी प्रसाद मिश्र, जैनेन्द्र जैन, डॉ लक्ष्मी नारायण लाल, विष्णु प्रभाकर, यशपाल जैन, कमलेश्वर, शैलेश मटियानी, राजेंद्र यादव ....अनगिनत नाम। ये नाम मात्र नाम नहीं हैं, अपने क्षेत्र के पारभाषिक शब्द हैं जिनका अर्थ विस्तार असीम है। इसी तरह से 1986 से 2000 तक आकाशवाणी में समाचार वाचन के दौरान देवकी नन्दन पाण्डेय, अनादि मिश्र, रामानुज प्रसाद सिंह, जयनारायण शर्मा, अशोक वाजपेयी, कृष्ण कुमार भार्गव, इन्दु वाही, विनोद कश्यप, क्लेयर नाग, अखिल मित्तल.....

त्रिलोक दीप पर आए कई लेखों ने स्मृतियों को सुगंधित कर दिया।

प्रयाग शुक्ल, उदय प्रकाश, संतोष भारतीय, सुधेन्दु पटेल.....अरविंद कुमार सिंह, सर्जना शर्मा और बहुत सारे नाम ऐसे आए जिन्हों ने 1980 के बाद हिन्दी पत्रकारिता के दौर को मेरे मन-मस्तिष्क पर पुनः किसी सिनेमा की तरह उछाल दिया हो।

प्रयाग शुक्ल और उदय प्रकाश को निश्चित रूप से स्मरण नहीं होगा कि उनकी सकारात्मकता और उत्साहवर्धन के परिणाम से मैं अकूत लाभ में रहा। दिनमान में 1980 के दशक में मेरा प्रवेश हो चुका था। मेरी कई स्टोरीज़ छप चुकी थीं। उदय प्रकाश जी कहने पर मैं, दिनमान के लिए विदेशी घटनाओं पर संक्षेप में लिखने लगा था।

प्रयाग शुक्ल जब नवभारत टाइम्स के रविवासरीय परिशिष्ठ के संपादक बने तो उन्होंने नशे के व्यवसाय पर मेरी कथा को 1985 में आद्योपांत नवभारत टाइम्स में प्रकाशित किया, पूरे पृष्ठ पर। उन्हें कदापि ध्यान नहीं होगा कि उन्हों ने मुझ से पूछा था "तुम इतनी बड़ी स्टोरी कैसे लिख लेते हो?" उन्हों ने यह भी पूछा था कि "इस स्टोरी के लिए कितने पैसे लोगे?"

मेरा उत्तर था, "मैंने कभी नवभारत टाइम्स के लिए नहीं लिखा है, मैं यह दुर्ग भेदना चाहता हूँ। " उन्हों ने हाथ से लिखित स्टोरी देखी और कहा "मैं तुम्हें इसके सर्वाधिक पैसे दिलवाऊंगा, और बचे हुए हिस्से को भी अगले अंक में उपयोग करूंगा। उन्हों ने वैसा ही किया।

फिर, 96 वर्षीया शीला झुनझुनवाला जी को कैसे भूल सकता हूँ, जिन्हों ने मुझे साप्ताहिक हिंदुस्तान में कई कवर स्टोरी प्रदान कीं। इन्हीं प्रकाशनों का परिणाम यह रहा कि मैंने जहां-जहां हिन्दी अधिकारी पद केलिए आवेदन किया, सब ने मुझे नियुक्ति पत्र प्रदान किए।

और फिर, श्री प्रभाष जोशी जी। जिन्होंने एक अविस्मरणीय साक्षात्कार के बाद मुझे जनसत्ता में वरिष्ठ रिपोर्टर के रूप में रोहतक ज्वाइन करने का नियुक्ति पत्र, बढ़े हुए वेतन के साथ प्रदान किया।

अब, जुलाई 2023 का अंक रचनाधर्मिता को समर्पित एक यायावरी, उलझे-सुलझे चरित्र सुरेन्द्र सुकुमार पर केन्द्रित है। **इसी अंक के पृष्ठ 51 पर....कृपया पढ़िएगा अवश्य सुरेन्द्र सुकुमार के जीवन वृत्त को.....**

जुलाई——2023

क्रम सं:	शीर्षक :	लेखक :	पृष्ठ संख्या :
1	संपादकीय		2
2	सभा समाचार		6-10
3	लघुकथा : प्यास	कृष्ण चन्द्र महादेविया	7
4	समाज को आईना : मुंशी प्रेम चंद का साहित्य	कृष्ण कुमार यादव	11-14
5	कविता	योगेंद्र पाण्डेय	15
6	कविता	आलोक रंजन	15
7	कविता	राजेश पाठक, प्रो.(डॉ) शरद नारायणखरे	15
8	कहानी : मेरा हौसला	पद्मा अग्रवाल	16-17
9	कुसंस्कारों से जूझती पुरानी पीढ़ी	व्यग्र पाण्डे	18-19
10	कविता	तृप्ति मिश्रा	19
11	1857 की क्रान्ति का प्रथम शहीद : मंगल पाण्डे	राम शिव मूर्ति यादव	20-22
12	बिहार में ग़ज़ल लेखन	डॉ जियाउर रहमान जाफरी	22-25
13	कहानी : परीक्षा	डॉ जया आनंद	26-28
14	चाय सुबह-बेवक्त और शाम	महेंद्र महर्षि	29-31
15	दोहे	डॉ शरद नारायण सक्सेना	31
16	कविता	डॉ प्रेम कुमार	31
17	मेरे पिता जी की साइकिल	गोवर्धन दास बिन्नाणी	32
18	व्यंग्य लंका	दिलीप कुमार सिंह	33-34
19	कविता	गिरेन्द्रसिंह भदौरिया "प्राण"	34
20	कविता	संजय कुमार सिंह,	35
21	कविता	दीपक कुमार, अनिल कूमर मिश्र	35
22	व्यंग्य : तीन टांग का कुत्ता	रामानुज आनुज	36-38
23	झूठी शान में निष्ठुर बनाता समाज	सोनम लववंशी	38
25	पुस्तक समीक्षा : नियंता नहीं हो तुम	नीरज कुमार मिश्र	39-41
26	कविता	आशा शैली	41
27	पुस्तक समीक्षा : नवगीत का स्त्री पक्ष -सलीबें	गणेश गंभीर	42-46
28	1942 की स्वतन्त्रता सेनानी : अरुणा	आकांक्षा यादव	47-49
29	सुरेन्द्र सुकुमार	सुधेन्दु ओझा	51-56
30	सुरेन्द्र सुकुमार की विवादास्पद कहानी "अगिहाने"	सुरेन्द्र सुकुमार	57-61
31	खरे मन का ठसकदार व्यक्तित्व	कीर्ति काले	62-63
32	सुरेन्द्र सुकुमार : एक प्रभंजन पारावार	डॉ शिव ओम अंबर	64-66

पत्रिका में प्रकाशित लेख में व्यक्त विचार लेखक के हैं उनसे संपादक मण्डल या संपर्क भाषा भारती पत्रिका का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय-क्षेत्र नई दिल्ली रहेगा।

प्रकाशक, मुद्रक तथा संपादक : सुधेन्दु ओझा, 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली-110092 फोन : 9868108713

क्रम सं:	शीर्षक :	लेखक :	पृष्ठ संख्या :
33	एक बेलौस फक्कड़ इंसान सुरेन्द्र सुकुमार	सोम ठाकुर	67-68
34	एक अद्भुत व्यक्तिवा के मालिक सुरेन्द्र सुकुमार	डॉ कुन्दन लाल उप्रेती	69-71
35	अद्भुत भाई सुरेन्द्र सुकुमार	रमेश पंडित	72
36	कविवर सुरेन्द्र सुकुमार का जीवन	मंजीत सिंह	73-74
37	लोकप्रिय सुरेन्द्र	डॉ सुरेश अवस्थी	75-76
38	एक कथाकार की जंगी लव स्टोरी	अनिल शुक्ल	77-89
39	सुरेन्द्र	रामेन्द्र त्रिपाठी	90
40	सुकुमार हमारे बहुत निकट थे	उदय प्रताप	91
41	साहित्य की अलख अब तक	कमलेश भारतीय	92
40	सम्बन्धों को सतही तौर पर जीने वाला सुरेन्द्र सुकुमार	डॉ विष्णु सक्सेना	93-94
41	पहली बार जब मिला सुकु	विनोद क्वात्रा	95-98
42	सुकुमार से मेरी रु-ब-रु मुलाक़ात...	त्रिलोकदीप	99-101
43	कविता	डॉ केवल कृष्ण पाठक	101
44	सुकुमार मगर बेहद विचित्र	जया रावत	102-103
45	सत्य ही जिया हूँ मैं तो	बलराम सरस	104-105
46	लघुकथा : अपना अपना काम	संजय कुमार सिंह	105
47	सुरेन्द्र सुकुमार : भोगी भी योगी भी	अशोक अंजुम	106-108
48	सुरेन्द्र सुकुमार मेरी दृष्टि में	अवधेश कुमार सिंह राठौर (IAS)	109-112
49	कविता	प्रतिमा पुष्प	112

पत्रिका में प्रकाशित लेख में व्यक्त विचार लेखक के हैं उनसे संपादक मण्डल या संपर्क भाषा भारती पत्रिका का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय-क्षेत्र नई दिल्ली रहेगा।

●

पुस्तक समीक्षा के लिए समीक्षार्थ पुस्तक की प्रति भेजना अनिवार्य है।

●

प्रकाशक, मुद्रक तथा संपादक : सुधेन्दु ओझा, 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर विस्तार, नई दिल्ली-110092 फोन : 9868108713/7701960982

संपर्क भाषा भारती का आगामी विशेषांक

अगस्त 2023

डॉ धनंजय सिंह (लब्धप्रतिष्ठ नव-गीतकार)

सभा समाचार

पुस्तकालयों के माध्यम से देश की सभ्यता, संस्कृति, विरासत आगामी पीढ़ियों तक पहुँचती है

-पोस्टमास्टर जनरल कृष्ण कुमार यादव

पोस्टमास्टर जनरल कृष्ण कुमार यादव ने ऋषिव वैदिक अनुसंधान, वाराणसी में मां सरस्वती पुस्तकालय का उद्घाटन किया...

~

इंटरनेट और सोशल मीडिया के दौर में भी पुस्तकालयों की अहम् भूमिका - पोस्टमास्टर जनरल कृष्ण कुमार यादव...

समाज और राष्ट्र की दशा व दिशा के निर्धारण में पुस्तकालयों की अहम भूमिका - पोस्टमास्टर जनरल कृष्ण कुमार यादव

पुस्तकालय सिर्फ किताबों और पत्र -पत्रिकाओं के संग्रहण व अध्ययन का जरिया मात्र नहीं हैं, बल्कि इनके माध्यम से देश की सभ्यता, संस्कृति, विरासत, संस्कार आगामी पीढ़ियों तक पहुँचते हैं। पुस्तकालय सभ्य समाज की पहचान होते हैं। इंटरनेट व सोशल मीडिया के इस दौर में विविध प्रकार के ज्ञान, सूचनाओं, स्रोतों, आदि के प्रमाणीकरण में भी पुस्तकालयों की अहम् भूमिका है। उक्त विचार वरिष्ठ साहित्यकार एवं वाराणसी परिक्षेत्र के पोस्टमास्टर जनरल श्री कृष्ण कुमार यादव ने नव भारत निर्माण समिति के तत्वावधान में आयोजित ऋषिव वैदिक अनुसंधान, योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र, सुद्धिपुर, वाराणसी में मां सरस्वती पुस्तकालय का उद्घाटन करते हुए बतौर मुख्य अतिथि व्यक्त किये। इस अवसर पर पोस्टमास्टर जनरल श्री कृष्ण कुमार यादव ने बीएचयू वाराणसी में असिस्टेंट प्रोफेसर डॉ. अपर्णा सिंह की पुस्तक "दि पैन मॉडल ऑफ़ एस्योर्ड कैरियर प्रेडिक्शन्स" का विमोचन भी किया, वहीं कवि सम्मेलन में भागीदार युवा कवियों आयुष कश्यप, आशीष द्विवेदी,

रमाकान्त, अंश ग़ाफ़िल, सुधांशु रघुवंशी कुटज, नीरज नीर को सम्मानित भी किया।

पोस्टमास्टर जनरल श्री कृष्ण कुमार यादव ने कहा कि समाज और राष्ट्र की दशा व दिशा के निर्धारण में पुस्तकालयों की अहम भूमिका है। किताबें सबसे अच्छी मित्र और धरोहर होती हैं। शोध और नवाचार में पुस्तकालयों की अहम भूमिका है। पुस्तकालय स्वयं में ज्ञान मन्दिर हैं जहाँ स्वयं देवी सरस्वती विराजमान होती हैं, तभी तो मनुष्य यहाँ ज्ञान रुपी धन को पाकर जीवन के अज्ञान रुपी अँधेरे को दूर कर पाता है। आज प्रिंटेड पुस्तकों के साथ-साथ ई-बुक्स और डिजिटल बुक्स का भी दायरा बढ़ रहा है। ऐसे में आजादी के अमृत काल के बजट में देश में नेशनल डिजिटल लाइब्रेरी खोलने की घोषणा भी की गई है।

श्री यादव ने मां सरस्वती पुस्तकालय के शुभारंभ पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि पुस्तकालय अनुसंधान, सूचना, ज्ञान और पढ़ने की खुशी के लिए महत्वपूर्ण हैं। इससे अध्ययन-अध्यापन में रुचि रखने वालों के साथ-साथ प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कर रहे विद्यार्थियों, गरीब बच्चों और शोधार्थियों को काफी मदद मिलेगी।

बीएचयू वाराणसी के लाइब्रेरियन श्री केडी सिंह ने कहा कि पुस्तकें मार्गदर्शक होती हैं और पुस्तकालय ज्ञान के अमूल्य भंडार होते हैं। पुस्तकों के माध्यम से जीवन के विविध आयामों को समझा जा सकता है। पुस्तकालय हमें बुरी आदतों से बचाकर अच्छा नागरिक बनाते हैं।

नव भारत निर्माण समिति के संयोजक श्री बृजेश सिंह ने कहा कि पुस्तकालय हमारे सामाजिक और शैक्षिक जीवन का एक अहम स्थान हैं। युवाओं को पुस्तकालयों की ओर आकर्षित करने की आवश्यकता है और मां सरस्वती पुस्तकालय इस ओर पहल करके अहम भूमिका निभाएगा।

इस अवसर पर नव भारत निर्माण समिति के संयोजक बृजेश सिंह, सचिव प्रमोद पांडेय, डॉ. शिव शक्ति प्रसाद द्विवेदी, पंडित देवाशीष डे, आचार्य नवनीत त्रिपाठी, शिखा सिंह, अंबरीश ठाकुर, दान बहादुर सिंह, आचार्य नवनीत त्रिपाठी, सुभाशीष चटर्जी, रमेश सिंह, धर्मेंद्र कुमार सिंह सहित तमाम शिक्षाविद व बुद्धिजीवी उपस्थित रहे।

(प्रमोद पांडेय)

सचिव, नव भारत निर्माण समिति

वाराणसी

प्यास

लघुकथा :

कृष्ण चंद्र महादेविया

मस्तमन ने कॉलेज को जाने के लिए द्वार के बाहर पांव रखा ही था किंतु फिर वैसे ही उसने बहुत धीरे से पांव वापस हटा लिया। सामने बैलों के पास बाल्टी में भरे पानी को कौवा पीने लगा था। कौवा बाल्टी में चोंच डुबोता फिर ऊपर की ओर चोंच कर पानी गटकने के साथ इधर-उधर भी सुरक्षा के निमित्त गर्दन घुमा लेता था। पांच-छः बार चोंच पानी में डुबोने और पानी गटकने के बाद कौवा उड़कर बैलों को छांव देने वाले पेड़ की चोटी पर जा बैठा।अब द्वार लांघ कर मस्तमन आंगन से निकलने लगा ही था की मां ने पुकारा -"मस्त मन ?"

"जी अम्मा।"

"बेटे पहले तो तुमने द्वार से बाहर कदम रखा फिर हटा लिया और द्वार पर खड़ा होकर बाहर देखता रहा। पुत्तर बिल्ली ने रास्ता काट लिया था क्या ?"

"नहीं अम्मा जी, वहां कौवा बाल्टी से पानी पी रहा था। यदि मैं चल पड़ता तो मेरे जूतों की आहट से डरकर उड़ जाता और प्यासा ही रह जाता। अम्मा जी, इसलिए रुक गया था।रुक गया था "।

"शाबाश बेटा।"

अम्मा जी के पांव स्पर्श कर मस्त मन मस्ती से कॉलेज की राह बढ़ गया।

-०००-

प्रणेता साहित्य न्यास का स्थापना दिवस, सम्मान समारोह और पुस्तक लोकार्पण

प्रणेता साहित्य न्यास का स्थापना दिवस, सम्मान समारोह और पुस्तक लोकार्पण आयोजन प्रणेता के संस्थापक/अध्यक्ष और महामहिम राष्ट्रपति से सम्मानित वरिष्ठ कथाकार श्री एस जी एस सिसोदिया जी और प्रणेता साहित्य न्यास की महासचिव श्रीमती शकुंतला मित्तल के कुशल संयोजन में 11 जून 2023 को अपराह्न 3:00 बजे आर्य समाज मंदिर, राणा प्रताप बाग, नई दिल्ली में सफलतापूर्वक संपन्न हुआ। इस आयोजन की अध्यक्षता वरिष्ठ साहित्यकार और पत्रकार श्री सुधेन्दु ओझा जी ने की। मुख्य अतिथि के पद पर वरिष्ठ साहित्यकार और पत्रकार श्री सुभाष अखिल जी ने अपनी गरिमामयी उपस्थिति दी।अति विशिष्ट अतिथि के रूप में वरिष्ठ साहित्यकार डॉ सविता चड्डा जी, वरिष्ठ साहित्यकार और चित्रकार डॉ नलिनी भार्गव जी और सुप्रसिद्ध उद्योगपति और समाजसेवी श्री राम अचल सिंह जी की उपस्थिति रही। अजमेर से प्रणेता साहित्य न्यास की संरक्षक और मार्गदर्शक श्रीमती पुष्पा शर्मा कुसुम जी की विशेष उपस्थिति रही। अतिथियों के दीप प्रज्वलन के बाद वरिष्ठ कवयित्री सुश्री वीणा अग्रवाल जी ने अपनी सुमधुर सरस्वती वंदना से सबको मंत्रमुग्ध कर दिया। प्रणेता साहित्य न्यास की उपाध्यक्ष डॉ भावना शुक्ल जी के स्वागत उद्बोधन के साथ सब अतिथियों और संरक्षकों को सम्मानित किया गया। तत्पश्चात प्रणेता साहित्य न्यास के संस्थापक और अध्यक्ष श्री एस जी एस सिसोदिया जी ने प्रणेता साहित्य न्यास की विगत उपलब्धियोंऔर आगत योजनाओं से सबको परिचित करवाते हुए शीघ्र ही दो नई योजनाओं से संबद्ध विज्ञप्ति देने की सूचना से सब उपस्थित साहित्यकारों में उत्साह भर दिया।

मंचासीन अतिथियों और सभी पदाधिकारियों ने वरिष्ठ कथाकार श्री एस जी एस सिसोदिया जी के कथासंग्रह 'प्रेम पियासे नैन' का

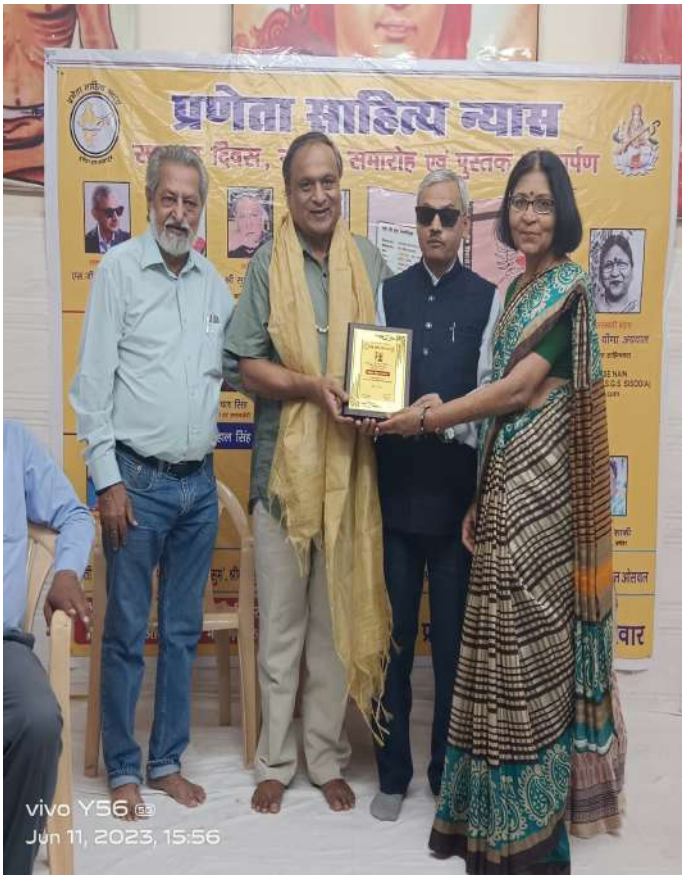

विमोचन सभी वरिष्ठ साहित्यकारों की गरिमामयी उपस्थिति में किया। मुख्य अतिथि श्री सुभाष अखिल जी ने पुस्तक की समीक्षा करते हुए लेखक को समाज के उपेक्षित किन्नर वर्ग के जीवन पर गहरा शोध कर लिखे कहानी संग्रह के लिए बधाई दी। सुभाष अखिल जी ने कहा कि समाज सदा ही इस वर्ग को घृणा और उपेक्षा देता रहा है। इस वर्ग को सम्मान और प्रेम से वंचित रख कर हम इनसे प्रेम की आशा कैसे कर सकते हैं? उन्होंने कहा कि यह कहानी संग्रह उनके जीवन संघर्ष, पीड़ा, वेदना और मनोभावों को समाज तक पहुंचा कर मानसिकता बदलने के महत्वपूर्ण दायित्व को पूर्ण करेगा। लेखक श्री सिसोदिया जी ने अपने कहानी संग्रह से जुड़े अपने अनुभव साझा किए। विशिष्ट अतिथियों में डाक्टर नलिनी भार्गव जी ने प्रणेता के स्थापना दिवस की बधाई देते हुए लेखक को उनकी नई कृति के लिए शुभकामनाएं दी। डॉ सविता चड्डा जी ने बधाई देते हुए अपने संपर्क में आए कुछ किन्नरों के जीवन अनुभव साझा किए। श्री राम अचल सिंह जी ने भी लेखक को बधाई देते हुए भव्य आयोजन के लिए शुभकामनाएं दी। इसके बाद श्रीमती एवं श्री खुशहाल सिंह पयाल स्मृति सम्मान समारोह के पुरस्कृत विजेताओं को सम्मानित किया गया। प्रथम पुरस्कार फरीदाबाद से वरिष्ठ साहित्यकार श्रीमती कमल कपूर को दिया गया। द्वितीय पुरस्कार भी फरीदाबाद से आई वरिष्ठ साहित्यकार डॉ इंदु गुप्ता जी को दिया गया। तृतीय स्थान पर जयपुर की डाक्टर आभा सिंह रहीं।इस वर्ष दो विशेष पुरस्कार दिव्यांग वर्ग के अन्तर्गत डाक्टर वंदना और श्री घनश्याम आसुदाणी जी को दिया गया।सभी को स्मृति चिह्न, अंग वस्त्र और धन राशि दे कर सम्मानित किया गया।

अंत में अध्यक्ष श्री सुधेन्दु ओझा जी ने प्रणेता साहित्य न्यास के स्थापना दिवस की बधाई देते हुए कहा कि प्रणेता की कार्यशैली और आत्मीयता ने उन्हें बहुत प्रभावित किया है और भविष्य में भी वे प्रणेता के आयोजनों में आते रहेंगे। इस समारोह में सक्रिय सहयोगी प्रणेता टीम इस प्रकार रही : श्री मती पुष्पा शर्मा कुसुम, सुषमा भंडारी जी, अशोक पाहुजा जी, दीपशिखा श्रीवास्तव दीप जी, शारदा मित्तल जी, वीणा अग्रवाल जी, सुशीला यादव जी, डा राजबाला जी, संतोष संप्रीति जी, रजनी बाला जी, आशमा काल जी, सुमन पुष्करणा जी, पुनीता सिंह जी, डॉ भावना शुक्ल, शकुंतला मित्तल, सुश्री कमल कपूर, डॉ इन्दु गुप्ता जी, डा वंदना, श्री संजय शाफी जी और संस्थापक श्री एस जी एस सिसोदिया जी सहित अन्य अनेक वरिष्ठ साहित्यकारों ने अपनी गरिमामयी उपस्थिति दी। प्रणेता महासचिव शकुंतला मित्तल ने इस आयोजन का कुशल संचालन किया। उपाध्यक्ष डॉ भावना शुक्ल जी ने सबका धन्यवाद ज्ञापित किया।

एक स्नेहिल निमंत्रण हल्द्वानी, लालकुआं से....

नैनीताल से स्नेहिल आमंत्रण था, सेंचुरी पेपर मिल से सेवानिवृत्ति प्राप्त कर रहे श्री सत्यपाल 'सजग' जी के विदाई समारोह में आयोजित साहित्यिक अनुष्ठान में सहभागिता करने का।

आहा!! आयोजन अविस्मरणीय रहा।

श्री सत्यपाल 'सजग' जी एक आशु कवि होने के साथ-साथ कुशल मंच संचालक भी हैं। सुश्री आशा शैली जी द्वारा संपादित 'शैलसूत्र' पत्रिका के आधार स्तम्भ होने के साथ-साथ लालकुआँ के साहित्यिक कार्यक्रमों में प्राण-उद्घोष करने वाले सत्यपाल 'सजग' के साहित्यिक अवदान का सभी वक्ताओं ने उल्लेख किया और उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की।

हालांकि, श्री सत्यपाल 'सजग' जी सेवानिवृत्ति उपरांत अपने पैतृक निवास 'पीलीभीत' लौटने की इच्छा है किन्तु, लालकुआँ का साहित्यिक परिवार उन्हें अपने पास ही सहेज कर रखने को तत्पर है।

इस अवसर पर अच्छा काव्य-पाठ भी हुआ जिसे सभी के द्वारा सराहा गया।

स्थानीय डेयरी के सभागार में आयोजित इस कार्यक्रम में लालकुआँ, हल्द्वानी (उत्तराखण्ड), उप्र आध्यात्मिक साहित्यक संस्था के संस्था के अध्यक्ष, श्री जितेंद्र कमल 'आनन्द', (रामपुर) सुश्री गीता पपोला (गदरपुर), सुश्री मीना अरोड़ा, गीता मिश्रा 'गीत', सुश्री लोकेष्णा, सुश्री पुष्पलता पुष्पांजलि, (हल्द्वानी) एवं सर्वश्री सुबोध कुमार शर्मा (गदरपुर), पंकज बत्रा, राधे श्याम यादव आदि स्थानीय, लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकार उपस्थित रहे।

श्री सत्यपाल सिंह 'सजग' जी की दो काव्य पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

जयन्ती : 31 जुलाई पर विशेष

आज भी समाज को आइना दिखाता है मुंशी प्रेमचंद का साहित्य

साहित्य समाज के आगे चलने वाली मशाल है। कालजयी साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि, चरित्र और परिवेश के साथ बदलते युग में भी यह नया आख्यान रचता है। मुंशी प्रेमचंद का साहित्य इसी परम्परा को समृद्ध करता है। कोरोना महामारी का प्रकोप और उसके बाद जारी लॉकडाउन में विस्थापन, बेचारगी, सड़कों पर मीलों पैदल चलते कामगार और मजदूर, उनके पाँवों में पड़ते छाले और समाज के निचले तबके के लिए पैदा हुई दुश्वारियों ने एक बार फिर से मानो प्रेमचंद की कृतियों के पात्रों को जीवंत कर दिया हो। मुंशी प्रेमचंद की कृतियों के तमाम चरित्र, मसलन- होरी, मैकू, अमीना, माधो, जियावन, हामिद कहीं-न-कहीं वर्तमान समाज के सच के सामने फिर से तनकर खड़े हो गए। यही कारण है कि आज भी मुंशी प्रेमचंद की कृतियाँ विकास के तमाम प्रतिमानों के बीच भी समाज को आइना दिखाती हैं।

प्रेमचन्द ने 19वीं सदी के अन्तिम दशक से लेकर 20वीं सदी के लगभग तीसरे दशक तक, भारत में फैली हुई तमाम सामाजिक समस्याओं पर लेखनी चलायी। चाहे वह किसानों-मजदूरों एवं जमींदारों की समस्या हो, चाहे छुआछूत अथवा नारी-मुक्ति का सवाल हो, चाहे 'नमक का दरोगा' के माध्यम से समाज में फैले इंस्पेक्टर-राज का जिक्र हो, कोई भी अध्याय उनकी निगाहों से बच नहीं सका। प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा साहित्य को एक नया मोड़ दिया। जहाँ पहले साहित्य मायावी भूल-भुलैयों में पड़ा स्वप्नलोक और विलासिता की सैर कर रहा था, वहाँ प्रेमचन्द ने कथा साहित्य में जनमानस की पीड़ा को उभारा। ब्रिटिश सरकार भी मुंशी प्रेमचन्द की रचनाओं से भय खाती थी। जिसकी एक झलक उनकी 'जुलूस' कहानी में देखने को मिलती है। उनकी कृति 'रंगभूमि', 'गोदान' अथवा कहानी संग्रह 'मानसरोवर' आज भी घर परिवार के बच्चों को संस्कारित करते हैं। इसी तरह लोभ, लालच और पाखंड पर

आधारित लाटरी, अय्याश जमींदारों पर हमला करती 'शतरंज के खिलाड़ी' और नैतिक मूल्यों की रक्षा करती 'पंच परमेश्वर' आदि सभी कृतियां अतुलनीय हैं।

प्रेमचन्द के राष्ट्र-राज्य में दलित, स्त्रियाँ और किसान समान भाव से मौजूद हैं, जिनके विकास के बिना भारत के विकास के कल्पना भी बेमानी है। प्रेमचन्द ने 'होरी', 'घीसू', 'माधव' और 'धनिया' सरीखे पात्रों का चयन करके वाकई दिलों को छूने का काम किया। प्रेमचन्द ने कृषक समुदाय को भारत की प्राणवायु बताया। कर्ज में डूबे किसान, उन पर ढाये जाते जुल्म, उनकी बद से बद्तर होती गरीबी, व्यवस्थागत विक्षोभ और किसानों की समस्याओं को किसी भी साहित्यकार ने उस रूप में नहीं उठाया, जिस प्रकार प्रेमचन्द ने उठाया। प्रसिद्ध इतिहासकार प्रो. विपिन चन्द्र की टिप्पणी गौरतलब है, ''यदि कभी बीसवीं शताब्दी में आजादी के पूर्व किसानों की हालत के बारे में इतिहास लिखा जाएगा तो इतिहासकार का प्राथमिक स्त्रोत होगा प्रेमचंद का 'गोदान', क्योंकि इतिहास कभी भी अपने समय के साहित्य को ओझल नहीं करता।'' 'गोदान' मात्र किसान की संघर्ष गाथा नहीं है वरन् इसमें स्त्री की बहुरूपात्मक स्थिति को दर्शाते हुए उसकी संघर्ष गाथा को भी चित्रित किया गया है। स्त्रियों के साथ समाज में हो रहे दोयम व्यवहार का प्रेमचन्द ने कड़ा विरोध किया और अपनी रचनाओं में उसे स्वतंत्र व्यक्तित्व का दर्जा देते हुये, विकास की धुरी बनाया। 'गोदान' में अभिव्यक्त गोबर व झुनिया के बीच अवैध प्रेम और विवाह, सिलिया चमाइन और मातादीन पण्डित का प्रेम-प्रसंग जहाँ परम्परा में सेंध लगाते हैं और स्त्री को मुक्त करते हैं वहीं मेहता से प्रेम करते वाली मालती मलिन बस्तियों में मुफ्त दवा बाँट कर सामाजिक कार्यकत्री के रूप में नजर आती है तो क्लब-संस्कृति के बहाने वह जीवन का द्वैत भी जीती है। मेहता और मालती का प्रेम एक प्रकार से 'लिव-इन-रिलेशनशिप' का उदाहरण है।

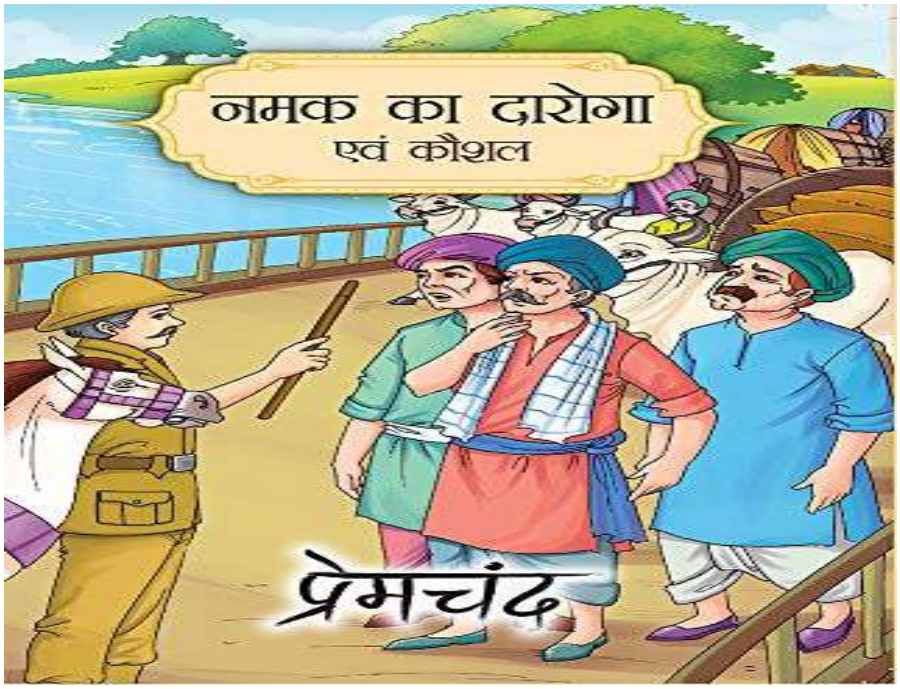

'गोदान' ने प्रेमचन्द को हिन्दी साहित्य में वही स्थान दिया जो रूसी साहित्य में 'मदर' लिखकर मैक्सिम गोर्की को मिला। 'सेवा सदन' में एक वेश्या के बहाने प्रेमचन्द्र ने धर्म के नाम पर चलने वाले अनाथालयों एवं पाखण्डों का भण्डाफोड़ किया है। 'कर्मभूमि' में मुन्नी द्वारा बलात्कारी सिपाही की हत्या स्त्री-मुक्ति के संघर्ष का अनूठा साक्ष्य है। प्रेमचन्द का पूरा साहित्य ही दलित, स्त्री और किसान की लड़ाई का साहित्य है जिसमें समता, न्याय और सामाजिक परिवर्तन की घोषणा है। यहाँ धर्म, संस्कृति, रीति-रिवाज, जाति, वर्ण, ऊँच-नीच के लिये कोई जगह नहीं है, जगह है तो सिर्फ मानवता की- जिसके बिना जीवित रहना ही अकारथ है।

प्रेमचन्द ने छुआछूत की समस्या को दूर करना, सामाजिक समता के लिए महत्वपूर्ण बताया। परम्परागत वर्णाश्रम व्यवस्था के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा, "भारतीय राष्ट्र का आदर्श मानव शरीर है जिसके मुख, हाथ, पेट और पाँव- ये चार अंग हैं। इनमें से किसी भी अंग के अभाव या विच्छेदन से देह का अस्तित्व निर्जीव हो जाएगा।" वे प्रश्न उठाते हैं कि यदि वर्णाश्रम व्यवस्था के पाँव माने जाने वाले शूद्रों का सामाजिक व्यवस्था से विच्छेदन कर दिया जाय तो इसकी क्या गति होगी ? इसी आधार पर वे समाज में किसी भी प्रकार के छुआछूत का सख्त विरोध करते हैं। अपने एक लेख में वे लिखते हैं, ''क्या अब भी हम अपने बड़प्पन का, अपनी कुलीनता का ढिंढोरा पीटते फिरेंगे? यह ऊँच-नीच, छोटे-बड़े का भेद हिन्दू जीवन के रोम-रोम में व्याप्त हो गया है। हम यह किसी तरह नहीं भूल सकते कि हम शर्मा हैं या वर्मा, सिन्हा हैं या चौधरी, दूबे हैं या तिवारी, चौबे हैं या पाण्डे, दीक्षित हैं या उपाध्याय? हम आदमी पीछे हैं, चौबे या तिवारी पहले और यह प्रथा कुछ इतनी भ्रष्ट हो गई है कि आज जो निरक्षर भट्टाचार्य है, वह भी अपने को चतुर्वेदी या त्रिवेदी लिखने में जरा भी संकोच नहीं करता।'' प्रेमचन्द ने 1932 में महात्मा गाँधी द्वारा मैकडोनाल्ड अवार्ड द्वारा प्रस्तावित पृथक निर्वाचन के विरोध में किये गए आमरण अनशन का समर्थन किया और गाँधी जी के इन विचारों का भी समर्थन किया कि शेष हिन्दू समाज के लिये निर्वाचन की चाहे जितनी कड़ी शर्तें लगा दी जायें पर दलितां के लिये शिक्षा और जायदाद की कोई शर्त न रखी जाये और हरेक दलित को निर्वाचन का अधिकार हो। वस्तुतः प्रेमचन्द दलितां को समाज का एक अभिन्न हिस्सा मानते थे, इसलिये वे उनकी पृथक पहचान के लिए सहमत नहीं थे। यही कारण था कि उन्होंने नागपुर में हरिजनों के लिये स्थापित पृथक छात्रावास व्यवस्था की भी आलोचना की।

दलितों के सम्बन्ध में प्रेमचन्द द्वारा दिये गये उद्गारों से उन्हें ब्राह्मण विरोधी भी कहा गया पर प्रेमचन्द इसकी परवाह किये बिना हिन्दू समाज में व्याप्त विषमता की लगातार आलोचना करते रहे। उन्होंने दलितों के लिये काशी विश्वनाथ मंदिर के पट नहीं खोलने पर कहा, ''विश्वनाथ किसी एक जाति या सम्प्रदाय के देवता नहीं हैं, वह तो प्राणी मात्र के नाथ हैं। उनपर सबका हक बराबर-बराबर का है।'' शास्त्रों की आड़ में दलितों के मंदिर प्रवेश को पाप ठहराने वालों को जवाब देते हुए प्रेमचन्द ने ऐसे लोगों की विद्या-बुद्धि व विवेक पर सवाल उठाया और कहा, ''विद्या अगर व्यक्ति को उदार बनाती है, सत्य व न्याय के ज्ञान को जगाती है और इंसानियत पैदा करती है तो वह विद्या है और यदि वह स्वार्थपरता व अभिमान को बढ़ावा देती है, तो वह अविद्या से भी बदतर है।'' वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थकों द्वारा हिन्दू मंदिरों की दलितों से रक्षा करने के सन्दर्भ में वायसराय को सम्बोधित ज्ञापन की तीखी आलोचना करते हुए प्रेमचन्द ने वर्णाश्रम व्यवस्था समर्थकों पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए लिखा, ''राष्ट्र की वर्तमान अधोगति हेतु ऐसे ही लोग जिम्मेदार हैं। दक्षिणा में अछूतों द्वारा दिए गये पैसे लेने में इन्हें कोई पाप नहीं दिखता पर किसी अछूत के मंदिर में प्रवेश मात्र से ही इनके देवता अपवित्र हो जाते हैं। यदि इनके देवता ऐसे निर्बल हैं कि दूसरों के स्पर्श से ही अपवित्र हो जाते हैं, तो उन्हें देवता कहना ही मिथ्या है। देवता तो वह है, जिसके सम्मुख जाते ही चांडाल भी पवित्र हो जाए।'' प्रेमचन्द धर्म का उद्देश्य मानव मात्र की समता मानते थे एवं किसी भी प्रकार के विभेद को राष्ट्र के लिये अहितकर मानते थे। प्रेमचन्द का स्पष्ट मानना था, ''हरिजनों की समस्यायें मंदिर प्रवेश मात्र से नहीं हल होने वाली। उनके विकास में धार्मिक बाधाओं से कहीं कठोर आर्थिक बाधाएँ हैं।''

प्रेमचन्द ने सांप्रदायिकता पर भी कलम चलायी। प्रेमचन्द ने स्पष्ट रूप से कहा कि हिन्दू-मुसलमान की आपसी शिकायतें मसलन- ''मुसलमानों को यह शिकायत है कि हिन्दू उनसे परहेज करते हैं, अछूत समझते हैं, उनके हाथ का पानी नहीं पीना चाहते तो हिन्दुओं को शिकायत है कि मुसलमानों ने उनके मंदिर तोड़े, उनके तीर्थ स्थलों को लूटा, हिन्दू राजाओं की लड़कियाँ अपने महल में डालीं'', जायज हो सकतीं हैं पर इस आधार पर सांप्रदायिकता को उचित नहीं ठहराया जा सकता। उन्होंने हिन्दू-मुसलिम एकता को ही स्वराज का दर्जा दिया पर दोनों संप्रदायों की विशिष्टताओं के साथ। उन्होने एक दूसरे के धर्म का परस्पर आदर करने पर जोर दिया और कहा, ''हिन्दू और मुसलमान न कभी दूध और चीनी थे, न हांगे और न होने चाहिये। दोनों की पृथक-पृथक सूरतें बनी रहनी चाहिए और बनी रहेंगी।'' 1931 में मैकडोनाल्ड अवार्ड द्वारा दलितों के लिये पृथक निर्वाचन की व्यवस्था किये जाने पर मुसलमानों में भी पृथक और संयुक्त निर्वाचन पर बहस छिड़ी पर 19 अक्टूबर 1932 को लखनऊ में संपन्न हुए मुस्लिम सर्वधर्म सम्मेलन में पृथक निर्वाचन की अवधारणा को अस्वीकार कर दिया गया। इस पर टिप्पणी करते हुए प्रेमचन्द ने कहा कि राष्ट्रीयता ने पूना में प्रथम विजय पाई मगर लखनऊ में उसने जो विजय प्राप्त की है,उसने तो साम्प्रदायिकता को जैसे सुरंग में बारूद लगाकर उड़ा दिया हो।

प्रेमचन्द एक ऐसे राष्ट्र-राज्य का सपना देखते थे जो समतावादी समाज पर आधारित हो। यहाँ तक कि जब काशी में उन्होंने सरस्वती प्रेस खोला तो कर्मचारियों को रोज कुछ-न-कुछ देना ही पड़ता पर उतनी आय नहीं होने से सबकी माँग रोज पूरी नहीं हो पाती थी। ऐसे में प्रेमचन्द सबके सामने रोज शाम को आमदनी का हिसाब रख देते और कहते- ''इतने पैसों में तुम्हीं लोग अपने और मेरे लिये ब्योंत कर दो, मुझे पान-तम्बाकू और इक्का-भाड़ा-भर देकर बाकी आपस में बाँट लो।'' वस्तुतः प्रेमचन्द के चिंतन और व्यवहार में समरसता और साहचर्य महत्वपूर्ण है, केंद्र-बिंदु बनना नहीं। यही कारण है कि ऐसे लोग जो आंदोलनों का केंद्र-बिंदु बनकर स्वयं के लिये कुर्सी हथियाना चाहते हैं, प्रेमचन्द उन्हें बाधा नजर आते हैं। उनके उपन्यास 'रंगभूमि' की प्रतियाँ जलाने वाले वर्गीय संरचनाओं की जटिलता और यंत्रणादायी व्यवस्था के स्तर को नहीं समझना चाहते, सिर्फ निश्चित फॉर्मूलों में निबद्ध दलित आत्मकथाओं व घृणित प्रतिक्रियाओं पर आधारित रचनाओं को ही दलित लेखन समझते हैं तो इसमें प्रेमचन्द का क्या दोष? प्रेमचन्द ने राष्ट्रीयता को पारिभाषित करते हुए लिखा, ''हम जिस राष्ट्रीयता की परिकल्पना कर रहे हैं, उसमें जन्मगत वर्ण व्यवस्था की गंध तक नहीं

होगी। वह हमारे श्रमिकों और किसानों का साम्राज्य होगा, जिसमें न कोई ब्राह्मण होगा, न हरिजन, न क्षत्रिय, न कायस्थ। उसमें सभी भारतवासी हांगे, सभी ब्राह्मण होंगे या सभी हरिजन होंगे।''

महाजनी व्यवस्था पर भी प्रेमचंद ने कलम चलाई। इस पर उनका एक लेख 'हंस', सितम्बर 1936 में छपा था। उन्होंने उसी दौर में ही पूंजीवाद की आहट को समझ लिया था। यदि आज वे हमारे बीच में होते तो भी उनकी कलम में अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय पूंजी व्यवस्था के माध्यम से महाजनी का वर्तमान स्वरूप झलकता। अमेरिकन साम्राज्यवाद ने जिस तरह से विश्व भर के देशों को अपने कर्ज के जाल में जकड़ रखा है, उसकी वास्तविक तस्वीर प्रेमचन्द की लेखनी में नजर आती। प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों के पात्रों के बारे में एक बार कहा था, ''हमारी कहानियों में आपको पदाधिकारी, महाजन, वकील और पुजारी गरीबों का खून चूसते हुए दिखेंगे और गरीब किसान, मजदूर, अछूत और दरिद्र उनके आघात सहकर भी अपने धर्म और मनुष्यता को हाथ से न जाने देंगे, क्योंकि हमने उन्हीं में सबसे ज्यादा सच्चाई और सेवा भाव पाया है।''

समग्र लेखन की सबसे बड़ी विशेषता समाज के सभी पक्षों को उसमें समाहित करना है। प्रेमचंद के लगभग सभी पात्र कहानियों से निकल कर उपन्यासों से बाहर आकर एक अलग संसार रचते हैं और इन चरित्रों की छाप इतने गहरे उतरती है कि यह हमारे अवचेतन का हिस्सा हो जाते हैं। 'पंच परमेश्वर' के अलगू चौधरी और जुम्मन शेख न्याय की निष्पक्षता को एक रुहानी ऊँचाई देते हैं और हामिद के चिमटे में छिपी भावना पूरी 'ईदगाह' में बड़े मियाँ के सजदे में झुकने से भी बड़ी इबादत हो जाती है। काल्पनिक पात्र सजीव हो जाते हैं, किस्से-किवदंतियों में तब्दील हो जाते हैं और कथानकों के मामूली चरित्र रोजमर्रे में लोगों की जुबान पर नायक और महानायक की तरह चढ़ जाते हैं। यही कारण है कि प्रेमचन्द के लेखों में दक्षिणपंथी-मध्यमार्गी-वामपंथी, सभी धाराएँ फूटकर

सामने आती हैं। चूँकि समाज विभाजित है, अतः उनके लेखन की भी पृथक-पृथक व्याख्या करता है। असहयोग आंदोलन के कारण गाँधी जी से प्रभावित होकर सरकारी नौकरी से इस्तीफा देने के कारण किसी ने उन्हें गाँधीवादी कहा तो अपनी रचनाओं में वर्ग-संघर्ष को प्रमुखता से उभारने के कारण उन्हें साम्यवादी अथवा वामपंथी कहा गया। समाज में छुआछूत व दलितों की स्थिति पर लेखनी चलाने के कारण उन्हें दलित समर्थक कहा गया और नारी-मुक्ति को प्रश्रय देने के कारण उन्हें नारी-समर्थक कहा गया। आधुनिक दौर में उनके उपन्यास 'रंगभूमि' में सूरदास का जातिसूचक शब्द लिखे जाने पर इसकी प्रतियाँ जलाकर और 'कफन' जैसी रचना को आरोपित कर उन्हें मनुवादी तथा दलित-विरोधी भी कहा गया।

प्रेमचन्द का साहित्य और सामाजिक विमर्श आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं और उनकी रचनाओं के पात्र आज भी समाज में कहीं-न-कहीं जिंदा हैं। आधुनिक साहित्य के स्थापित मठाधीशों के नारी-विमर्श एवं दलित-विमर्श जैसे तकिया-कलामों के बाद भी अंततः लोग इनके सूत्र किसी न किसी रूप में प्रेमचन्द की रचनाओं में ढूंढते नजर आते हैं। प्रेमचन्द जब अपनी रचनाओं में समाज के उपेक्षित व शोषित वर्ग को प्रतिनिधित्व देते हैं तो निश्चिततः इस माध्यम से वे एक युद्ध लड़ते हैं और गहरी नींद सोये इस वर्ग को जगाने का उपक्रम करते हैं। राष्ट्र आज भी उन्हीं समस्याओं से जूझ रहा है जिन्हें प्रेमचन्द ने काफी पहले रेखांकित कर दिया था। चाहे वह जातिवाद या सांप्रदायिकता का जहर हो, चाहे कर्ज की गिरफ्त में आकर आत्महत्या करता किसान हो, चाहे नारी की पीड़ा हो, चाहे शोषण और समाजिक भेद-भाव हो। इन बुराईयों के आज भी मौजूद होने का एक कारण यह है कि राजनैतिक सत्तालोलुपता के समांतर हर तरह के सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक आन्दोलन की दिशा नेतृत्वकर्ताओं को केंद्र-बिंदु बनाकर लड़ी गयी जिससे मूल भावनाओं के विपरीत आंदोलन गुटों में तब्दील हो गये एवं व्यापक व सक्रिय सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा कुछ लोगों की सत्तालोलुपता की भेंट चढ़ गयी।

कृष्ण कुमार यादव,

पोस्टमास्टर जनरल, वाराणसी परिक्षेत्र, वाराणसी-221002 मो.- 09413666599 ई-मेलः **kkyadav.t@gmail.com**

तुम्हारे जाने के बाद

तुम्हारे जाने के बाद
भूल गया है मौसम बदलना,
पछियाँ भूल गई हैं चहचहाना।
तुम होते थे, सब होते थे
तुम हंसते थे, सब हंसते थे,
तुम्हारे पास बैठकर
भूल जाते थे खुद को।
तुम सिर्फ मेरे ही नही
बल्कि-
तुम करीब थे बुलबुल के
तुम करीब थे गिलहरी के
तुम करीब थे फूलों के।
तुम्हे फिर आना होगा
सिर्फ मेरे लिए ही नहीं,
बुलबुल के लिए,
गिलहरी के लिए,
फूलों के लिए।।

योगेन्द्र पांडेय

जब औरतें बोलती हैं

जब औरतें बोलती है
विरोध के स्वर
तो अच्छा लगता है।

और अच्छा लगता है
जब वह घर परिवार और
रिश्ते नाते छोड़ अपने-अपने
कर्तव्यों और अधिकारों की करती हैं बात।

बहुत अच्छा लगता है
जब वह नेताओं पर गालियां
फेंककर मारती है तमाचा
मांगती है वह अपने
वोटों का हिसाब
खोजती हैं फाइलें काम की।

-आलोक रंजन

समर्पण

समर्पण करना
खुद को कमजोर करना
नहीं होता है

जल पेड़ में समर्पित हो
बढ़ा देता है उसकी आयु

बीज खेत में समर्पित हो
पैदा कर जाता है
अन्न के असंख्य दाने

प्रेमी प्रेम में समर्पित हो
पैदा कर जाता है
दो प्रेमियों में अथाह प्रेम

समर्पण जरूरी है
जगत की निरंतरता के लिए

यह मनोभाव में
युद्ध से भी बड़ा होता है

सृष्टि का स्तंभ
इसी पर खड़ा होता है,,,

राजेश पाठक

पर्यावरण-संरक्षण के दोहे

कटते जाते पेड़ नित, बढ़ता जाता ताप।
ज़हरीली सारी हवा, कैसा यह अभिशाप।।

डीजल जलता रोज़ ही, बिजली जलती ख़ूब।
हरियाली नित रो रही, सूख गई सब दूब।।

यंत्रों ने दूषित किया, मौसम और समाज।
हमने की है मूर्खता, हम ही भुगतें आज।।

नगर घिर गये धुंध में, धूमिल सारे गांव।
धुँआ-धुँआ जीवन हुआ, गायब सारी छांव।।

दिखती नहिं पगडंडियाँ, चारों ओर गुबार।
तिमिर विहँसता नित्य ही, रोता है उजियार।।

जनजीवन रोने लगा, सिसक रहा इनसान।
हर प्राणी भयभीत है, आफत में है जान।।

आवाजाही रुक गई, मंद हुआ व्यापार।
शिक्षा, ऑफिस, काम पर, हुई सघनतम् मार।।

प्रकृति बिलखती आज तो, कारण है अविवेक।
यदि हम चाहें निज भला, तो करनी हो नेक।।

आत्मचेतना से मिटे, प्रियवर आज कलंक।
सभी करें कुछ अब खरा, क्या राजा, क्या रंक।।

कोरोना के वेग से, हर जन है भयभीत।
आओ हम मिलकर लड़ें, तब पाएँगे जीत।।

फिर से अब आबाद हों, नगर, बस्तियाँ-गाँव।
तभी मिलेगी वक़्त को, मनभावन इक छाँव।।

प्रो.(डॉ) शरद नारायण खरे

पद्मा अग्रवाल

मेरा हौसला

ट्रि. ट्रि .ट्रि.

"आप निशा जी बोल रही हैं।''

"जी, बताइये मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूं। "

"आपके लिये एक बहुत शुभ समाचार है ... आपके नाम का चयन प्रतिष्ठित अर्जुन एवार्ड के लिये किया गया है।"

प्रसन्नता के अतिरेक से वह क्षण भर को संज्ञाशून्य हो गईं थी। उनके मुंह के शब्द तिरोहित हो गये थे ... मुश्किल से वह धन्यवाद कह पाईं थीं।

फोन रखते ही यह शुभ सूचना उन्होंने अपने मां पापा को दी थी। उन्होंने उनके चरण स्पर्श कर उनके प्रति कृतज्ञता जाहिर की थी। उन दोनों ने प्यार से उन्हें अपने गले से लगा लिया था।

"मां पापा आप लोगों की मेहनत, लगन और कर्मठता ने मुझे इस पुरुस्कार के योग्य बनाया नहीं तो मैं अपाहिज की तरह किसी कोने में पड़ी सिसकती रहती। मां ने उनके मुंह कोने में पड़ी सिसकती रहती। मां ने उनके मुंह पर अपनी हथेली रख कर चुप रहने का इशारा किया।

क्षणांश में ही यह समाचार चारों ओर फैल गया था और बधाई संदेशों के लिये फोन की घंटी बजने लगी थी। घर के बाहर बधाई देने वालों का तांता लग गया था, उनमें अधिकतर वही पड़ोसी और रिश्तेदार थे, जो उनके मां पापा और उनको उपहास और व्यंग्य की दृष्टि से देखा करते थे। उनके व्यंग्य वाणों के कारण उनका कलेजा छलनी हो चुका था परंतु उन्हीं व्यंग वाणों और तानों के कारण सफलता प्राप्त करने की जिजीविषा पैदा हो गई और उनकी मेहनत के कारण एक के बाद एक सफलता उनके कदमों को चूमने लगी थी।

वह अपने अतीत में खो गई ....

निशा जी की आंखों के सामने अपना जीवन चल चित्र की भांति सजीव हो उठा था ...

वह साधारण मध्यम परिवार की लाडली बेटी थीं वह लगभग तीन वर्ष की थीं, उन्हें जोर का बुखार आया और बुखार ने उनके शरीर को लकवा ग्रस्त कर दिया था। वह तो नासमझ और छोटी थी परंतु मां पापा की तो दुनिया ही उजड़ गई ...वह अपाहिज बनी हुई मां पापा को आंसू बहाते हुये देखा करती ... मां उन्हें अपनी गोद में उठाकर आज इस डॉक्टर और कल दूसरे डॉक्टर के पास चक्कर लगाया करतीं। पूरा परिवार उनकी बीमारी के कारण परेशान रहता था। न ही कोई दवा असर कर रही थी और न ही कोई दुआ। वह बड़ी होती जा रही थी परंतु जरा भी हिल डुल भी नहीं पाती थी फूरे परिवार के लिये बहुत कठिन समय था।

पापा की छोटी सी दुकान थी, मां घर संभाला करतीं थीं। डॉक्टर, दवा, इलाज के चक्कर में यहां वहां जाने के कारण दुकान अक्सर बंद रहती। पापा कर्जदार बन गये थे लेकिन उनका हौसला बरकरार था ....यदि कोई उनके सामने उन्हें बेचारी भी कह देता, तो वह उस पर नाराज हो उठते थे।

डॉक्टर ने इलेक्ट्रिक शॉक का ट्रीटमेंट देने के लिये बोला था। अब समस्या यह थी कि लुंज पुंज बेटी को तीन बसों को बदल कर इलेक्ट्रिक शॉक दिलवाने के लिये लेकर जाना और लौट कर लाना, कैसे किया जाये ...परंतु मां पापा ने हिम्मत नहीं हारी थी ... लगभग दो वर्षों तक उनको शॉक ट्रीटमेंट दिया गया, इसका असर भी दिखाई दिया, शरीर का ऊपरी भाग कफी हद तक क्रियाशील हो उठा था, उसमें हरकत होने लगी थी लेकिन लेकिन कमर का निचला हिस्सा वैसे ही निष्क्रिय रहा था। अब वहां के डॉक्टरों ने भी अपने हाथ खड़े कर दिये थे।

मां लक्ष्मी की आंखें भीग उठीं थीं। अब यह तो निश्चित हो गया था कि वह अब अपने पैरों पर कभी भी नहीं खड़ी हो सकेगी। उसकी दशा देख कर मां अवसाद से पीड़ित होती जा रही थी। अवसाद के लम्हों में मां के मन में आत्महत्या का विचार हावी होता रहता परंतु बेटी निशा की दुर्दशा और उसकी कठिनाइयों का ध्यान आते ही वह नये उत्साह से बेटी को आत्मनिर्भर बनाने के प्रयास में जुट जातीं थीं।

तभी एक डॉक्टर ने उसकी हालत देख कर, उन्हें चेन्नई के आर्थोपेडिक सेंटर ले जाने की

सलाह दी। वहां पर दिव्यांग बच्चों को निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। उसके साथ साथ बच्चों को खेल कूद के लिये भी ट्रेनिंग देकर प्रोत्साहित किया जाता था।

पापा प्रशांत ने जरा भी विलंब नहीं किया और उसको लेकर चेन्नई पहुंच गये। उन्हें हॉस्टल में छोड़कर आते समय मां पापा दोनों ही फफक कर रोने लगे थे, परंतु उनके भविष्य के लिये अपने दिल को कड़ा कर लिया था।

वहां पर उनके पैरों की हड्डियों की कई बार पर सर्जरी की गई। सर्जरी, दर्द, फीजियोथैरेपी और एक्सरसाइज का अंत हीन सिलसिला उनके जीवन का आवश्यक हिस्सा बन गया था। यहीं पर दूसरे बच्चों को खेलते देख कर उन्हें भी खेल में रुचि उत्पन्न हो गई। खेल का अभ्यास इनके लिये दवा से अधिक प्रभावी कारक बन गया।

उनकी सर्जरी कामयाब न होने के कारण यह तो तय हो गया था कि अब उन्हें अपना जीवन व्हील चेयर के सहारे ही बिताना होगा। परंतु वहां पर दूसरे बच्चों को क्रिया शील देखने के बाद उनका आत्मविश्वास और जीवन जीने का हौसला बहुत ज्यादा बढ गया था।

वह 15 वर्षों तक चेन्नई के सेंटर में रही थीं। वहां रहने से उनके मन में कुछ कर गुजरने का हौसला पैदा हो गया था। अब मां पापा उनको लेकर बंगलुरू लेकर आये और ग्रैजुएशन के लिये कॉलेज में एडमिशन करवा दिया था परंतु मुसीबतों से तो उनका आत्मीय रिश्ता रहा था, इसलिये यहां भी वह भला क्यों उनका साथ छोड़ती .... उनकी क्लास ऊपर के फ्लोर पर लगती थी लेकिन पापा के आग्रह को रहम दिल प्रिन्सिपल ने मान कर ग्राउँड फ्लोर में लगवाने का प्रबंध कर दिया। अब तक उनका आत्मविश्वास बहुत बढ चुका था।

यहीं पर उन्हें पैरा ओलंपिक के विषय में मालूम हुआ और यहीं पर उनकी शॉटपुट और चेयर रेसिंग की प्रैक्टिस शुरू हुई। उनकी लगन और कुछ कर गुजरने की भावना के कारण उनके खेल में निखार आता गया। कड़ी मेहनत और बुलंद हौसलों के कारण कामयाबी उनके कदम चूमने लगी।

सर्वप्रथम स्थानीय स्तर पर उन्हें सफलता मिली फिर तो सिलसिला चल निकला था। प्रादेशिक स्तर पर मेडल मिलने के बाद राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिताओं को जीतने के बाद ओलम्पिक का सपना देखना तो स्वाभाविक ही था। उनके कोच रवींद्र जी उन्हें उत्साहित करते रहते।

ओलम्पिक में भाग लेने के लिये रेसिंग व्हील चेयर की जरूरत थी लेकिन उनके पास इतने पैसे नहीं थे कि वह रेसिंग व्हील चेयर खरीद सकती, उन्होंने किराये की व्हील चेयर से अपना काम चलाया था।

जीवन का अविस्मरणीय पल ओलम्पिक पदक जीतने का क्षण था, उनके जीवन के लिये अविश्वसनीय पल था ...उनके जीवन की दिशा बदल गई थी .... उनको खेल कोटे से बैंक में डिप्टी मैनेजर की नौकरी मिल गई। अब उनके घर की आर्थिक दशा सुधरने लगी थी।

ओलम्पिक मेडल पाने के साथ – साथ वह कुशल वक्ता बन गईं थीं क्योंकि उन्हें विभिन्न मंचों से बार बार अपनी सफलता के लिये किये गये संघर्ष की कहानियों को बताना पड़ता था।

उन्होंने बंगलुरू में एक फाउंडेशन की शुरुआत की है, जहां पर गरीब दिव्यांग बच्चों को निःशुल्क शिक्षा दी जाती है और उसके साथ - साथ उनके अंदर के हुनर को पहचान कर उसे निखार कर उन्हें आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया जाता है।

मां की आवाज से उनकी तंद्रा भंग हुई और वह वर्तमान में लौटी थीं।

“अरे, आप तैयार नहीं हुई हैं ? आप भूल गईं। आज आपके पुराने कॉलेज में वहां के बच्चों के लिये संबोधन और साथ में आपको सम्मानित भी किया जायेगा।‘‘

“ओह, मैं 10 मिनट में तैयार होकर आती हूं।‘‘

“आराम से कर लो, वहां 2 बजे लेक्चर है।‘‘

जब उन्हें सम्मानित किया गया तो उन्होंने कहा कि इस सम्मान की असली हकदार तो मेरे माता पिता हैं, जिन्होंने अपना हौसला नहीं छोड़ा और अपनी दिव्यांग बेटी के मन में विश्वास जगाया और उन्हीं के प्रयास के कारण आज उनकी दिव्यांग बेटी ने विश्व में अपनी पहचान बनाई है। ये व्हील चेयर नहीं, वरन् मेरी रेसिंग कार है। इसी के सहारे मैंने गोल्ड, सिल्वर और ब्रांज मेडल जीतने में कामयाब हुई हूं।

हमारी सबसे बड़ी कमजोरी है, हमारे मन के अंदर की हीन भावना घर कर लेती है कि हम दूसरों से कमजोर हैं, कमतर हैं, तो आप मानसिक रूप से दिव्यांग बन जाते हैं। वह शरीर से दिव्यांग अवश्य थी, लेकिन दिल से कभी भी दिव्यांग नहीं थी। जीवन में कुछ कर गुजरने का हौसला था। उसी हौसले के कारण वह तमाम कठिनाइयों को झेलती हुई आगे बढती रही।

मैं सोचती हूं कि मैं दुनिया की सबसे खुशनसीब महिला हूं ... हम सब हर समय इस समाज से या दूसरों से बहुत सारी शिकायतें करते रहते हैं लेकिन कभी यह नहीं सोचते कि हम अपनी ओर से समाज को क्या दे सकते हैं या कि दूसरों की भलाई, अच्छाई के लिये क्या सहयोग कर सकते हैं।

यदि दूसरों से लेने और छीनने के स्थान पर कुछ देने की प्रवृत्ति मन में रखें तो अवश्य मेव यह दुनिया बहुत खूबसूरत और सुंदर हो जायेगी।

हॉल तालियों से गूंज उठा था।

प्रिंसिपल ने धन्यवाद देते हुये कहा कि निशा जी का जीवन हम सबको जीवन में आगे बढने और मुश्किल घड़ी में हौसला रखने की प्रेरणा देने की मिसाल कायम करता है। हमें कभी भी हिम्मत नहीं हारना चाहिये और न ही मन को कमजोर करना चाहिये।

वह बहुत खुश थी ....जीवन का एक सफल दिन बीत गया था, उनके मन में अपार संतोष था।

व्यग्र पाण्डे

कुसंस्कारों से जूझती पुरानी पीढ़ी

जब अधिकतर लोग अशिक्षित थे तो सभी अशिक्षितों के मन में एक कुण्ठा सदैव बनी रहती थी कि अनपढ़ का भी कोई जीवन है । समय बदला राज सत्ताओं में परिवर्तन आया। वह परिवर्तन एक नवजीवन सा था। जो इंसान सदियों से अंधकारमय जीवन जी रहे थे उनके जीवन में शिक्षा, रोशनी बनकर आई।

हमारे देश में शिक्षा न केवल अक्षर ज्ञान तक सीमित थी वरन् चरित्र- निर्माण भी उसका अभिन्न अंग रहा। आजादी के बाद वो सब भी पढ़ने लगे जिनके पढ़ने पर प्रतिबंध तो नहीं पर अवसर नहीं होता था। पर अब शिक्षा की गाड़ी द्रुत गति से बढ़ने लगी। कुछ वर्षों बाद परिवर्तन के नाम पर कुछ बदलाव शिक्षा-पाठ्यक्रम में भी दिखने लगे। अब शिक्षा का रुख चरित्र-निर्माण से दूर होने लगा था। शिक्षा के मायने केवल पढ़-लिखकर कोई अच्छी सी नौकरी मिल जाये और नौकरियां मिलने भी लगी। आरंभ के कुछ दसक ठीक-ठाक निकल गये और अभिभावक भी प्रसन्न थे। लेकिन जैसे ही पीढियाँ बदलने लगी पुरानी व नयी पीढ़ी की सोच में अंतर साफ दिखाई देने लगा।

फिर भी प्रत्येक माँ-बाप अपनी संतान को अच्छे से अच्छा पढ़ाकर ऊँचे ओहदे पर बिठाना चाहते रहे और वे अपने जीवन में कठोर मेहनत से कमाई संपत्ति को बेटे-बेटियों की शिक्षा पर बेझिझक खर्च करते रहे । अब पुरानी सोच से माँ बाप भी निकलना चाहते थे साथ ही बच्चों को भी पुराने विचारों से परे ले जाना चाहने लगे। आधुनिकता के नाम पर पुराने संस्कार उन्हें भी दकियानूसी दिखने लगे थे । सभी संस्कार- विहीन शिक्षा के दुष्प्रभाव से अंजान थे। पर जब उन गलतियों के प्रभाव समाज में हर जगह दिखाई देने लगे तो आँखें खुलने लगी पर अब क्या होने वाला था तीर तो निकल चुका था । अब मैं, आपको कुसंस्कारों से जूझती पुरानी पीढ़ी के दर्शन कराता हूँ ... जिनके पात्र कल्पित हैं पर घटनाएं वास्तविक ...

प्रथम दृश्य - मई का महीना दोपहर का समय मुझे आवश्यक काम से बाजार जाना हुआ। चिलचिलाती धूप के कारण सड़क पर कम ही आवागमन था। मुझसे कुछ आगे सड़क पर एक वृद्ध सज्जन चलते चलते रुक गये मैंने अपनी वाइक उनके पास जाकर रोकी तो पता चला की वो तो मेरे परिचित मीठालाल जी थे । उनके दो बेटे जिनमें एक का निजी व्यवसाय दूसरा सरकारी नौकर । स्वयं मीठालाल जी को रिटायर हुए पांच छ: साल हो गए थे। मैंने नमस्ते कर उनसे पूछा इस गर्मी में इस समय आप कहाँ जा रहे हो ? तो उनने पसीने पोछते हुए कहा- छोटे बेटे का बालक इस पास के स्कूल में पढ़ता है उसे लेने जा रहा हूँ। मैंने पूछा बालक कौनसी कक्षा में पढ़ता है उन्होंने कहा- पाँचवीं में। चलो बैठो में आपको छोड़ देता हूँ। नहीं, धन्यवाद! आप जाइये और वो चल दिए। लगभग एक घंटे बाद मैं बापस आ रहा था तो दोनों बाबा-पोता जाते हुए दिखाई दिए। पर ऐसा लग रहा था कि बाबा को पोता ले जा रहा है न कि बाबा पोते को....

द्वितीय दृश्य- हमारी कालोनी में मिस्टर एस.के. साहब को रिटायर हुए लगभग आठ-दस वर्ष हो गये होंगे, मकान बड़ा आलिशान

एक रूतबे के धनी, शहर में अच्छा खासा सम्मान जिनका । जीवन में एक ही पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई या उनने अपनी मर्जी से की, ये पता नहीं । पर कोई कोर कसर नहीं छोड़ी उसके लालन-पालन में । बालक भी प्रतिभाशाली था । बड़ा होकर बालक का जाॅब विदेश में लग गया उसने वहाँ ही शादी कर ली और वह वहीं रहने लग गया था । कुछ वर्ष पहले मि. एस.के. की पत्नी जब गुजरी तो बालक परिवार सहित पाँचवें दिन आकर पहुँचा । पत्नी की मृत्यु के पश्चात एस के साहब टूट चुके थे यद्यपि रोटी पानी व झाड़ू पोंछा हेतु नोकरानी रख छोड़ी थी । एक दिन अचानक मि.एस के साहब की अटेक से मृत्यु हो जाती है । पड़ोसियों ने डायरी से ढूंढ कर मोबाइल नंबर लेकर बालक को सूचना दी । भैया ! आपके पिताजी की मृत्यु हो गयी है अतः आप आ जाइये । तो बालक जबाब देता है अंकल मेरी मजबूरी है मैं आ नहीं सकता । मैं आपको दाग-क्रिया में जो खर्च होगा उसके लिए फोन-पे कर देता हूँ । कृपया आप इस कार्य में पड़ोसी का दायित्व निभा कर मुझ पर कृपा कीजिए ....

तृतीय दृश्य- एक विशेष पर्व पर मुझे अपने साथियों के साथ वृद्धाश्रम जाना हुआ । वहाँ अधिकतर वृद्धाएं ही थी । मैंने एक वृद्धा माँ के पास जाकर पूछा- अम्मा आप कहाँ से हो? उसने कहाँ-क्या करोगे पूछा कर रहने दो बेटा,और उसकी आँखों में आंसू आ गए । मेरे विशेष आग्रह पर उसने कहा- पड़ोस के शहर की रहने बाली हूँ दो बेटों की माँ हूँ नाती-पोते हैं । मेरे पति को गुजरे दो वर्ष हो गये । शुरू में बेटों ने छ: छ: महीने मुझे रखा, मर अब एक साल पहले यहाँ छोड़ गये कभी कभी मिलने आते हैं । अबकी बार तो बहुत दिन हो गये उन्हें यहाँ आये । मुझे घर /बच्चों की बहुत याद आती है बेटा ...अम्मा की आँखों में अनवरत पानी बह रहा था । मेरी भी आँखें नम हो गयी थी ।

चतुर्थ दृश्य- जवानी के दिनों में जिनका सारे गाँव में डंका पुजता था वो वीरू काका अब पिचेहत्तर के लगभग हो चुके थे । लड़के-लड़कियों की शादी-विवाह से वर्षों पहले फ्री हो चुके थे । अब उन्हें चलने-फिरने, दिखने में भी परेशानी रहने लगी थी पर अभी भी गाँव के स्त्री-पुरुष उनका सम्मान करते थे । अक्सर उनके घर से गाली-गलोच की ध्वनियां पिछले कई महीनों से यदा-कदा आती तो समझा जाता कि हर घर में होता है, लड़ते होंगे बहु-बेटे पर एक दिन नहीं रहा गया तो मैं चला ही गया, पता चला कि बड़ा बेटा अपने बाप से अभद्र भाषा में बात कर रहा था । उनके तीनों बेटे पढ़े-लिखे थे । मुझे देखकर वीरु काका की आँख भर आई और कहने लगे । देखा, इनको इसलिए ही दूर दूर तक पढ़ाया था । और ये ही नहीं तीनों की पत्नियां भी मुझसे गलत बोलती हैं । सभी चाहते हैं मैं जल्दी मरूँ...अब मैं कैसे मरूँ ...मौत आती नहीं ... मैं निरूत्तर ही घर से बाहर आ गया ।

दृश्य तो और भी लिखे जा सकते हैं जैसे सुबह-शाम बुजुर्गों को दूध, सब्जियां लाते हुए इससे भी ज्यादा कुत्तों को घुमाते हुए भी देखे जा सकते हैं । बड़ी उम्र की अम्माएं घरों में नोकरानी बनी हुई हैं । ये हमने कैसी शिक्षा प्राप्त की है समझ नहीं आती। आज 'पुरानी पीढ़ी' पढ़े-लिखे आधुनिक परिवारों में अधिक पीड़ित हैं । अच्छे जीवन के लिए शिक्षा जितनी महत्वपूर्ण है ठीक उतने ही सुसंस्कार का होना भी जरुरी है । इस पर भी सभी को ध्यान देना होगा । तब सभी मनुष्य, मनुष्य कहलाने के हकदार बन पायेंगे ।

*****

हनुमान जी का एक पुरातन लोकगीत

वीरों में बजरंग कहाने वाले,
तुम्ही हो संकट मिटाने वाले

अद्भुत लीला की बचपन में,
उड़कर पहुंचे नील गगन में।
सूरज को मुख में छुपाने वाले
तुम्ही हो संकट मिटाने वाले।।

सीता का तुमने पता लगाया,
अशोक वन में दर्शन पाया।
सोने की लंका जलाने वाले
तुम्ही हो संकट मिटाने वाले।।

लक्ष्मण को जब शक्ति लगी थी,
लेने संजीवनी तुम्हे भिजाया।
सोनागिरी परबत उठने वाले
तुम्ही हो संकट मिटाने वाले।।

रोम रोम में राम लिखाया,
राम नाम का रटन लगाया।
हृदय चीरकर दिखाने वाले
तुम्ही हो संकट मिटाने वाले।।

तृप्ति मिश्रा

1857 की क्रान्ति का प्रथम शहीद : मंगल पाण्डे

मंगल पाण्डे की जयंती 19 जुलाई पर विशेष

राम शिव मूर्ति यादव

1857 की क्रांति भारतीय इतिहास में अहम स्थान रखती है। यह क्रांति तात्कालिक रूप से विफल भले ही रही हो, पर इसने ही आजादी के लिए चलने वाली लम्बी और सुनियोजित लड़ाई की संगठित नींव रखी। इस क्रांति में तमाम क्रांतिकारियों ने अपनी आहुति दी, उन्हीं में से एक मंगल पांडे भी थे, जिन्हें 1857 की क्रान्ति का प्रथम शहीद माना जाता है। उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के नगवा नामक गांव में 19 जुलाई 1827 को जन्मे मंगल पाण्डे ईस्ट इंडिया कंपनी की 34वीं बंगाल इंफेन्ट्री के सिपाही थे। मात्र 22 साल की उम्र में सन् 1849 में वे ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना में शामिल हो गए।

कहा जाता है कि पूरे देश में एक ही दिन 31 मई 1857 को क्रान्ति आरम्भ करने का निश्चय किया गया था, पर 29 मार्च 1857 को बैरकपुर छावनी के सिपाही मंगल पाण्डे (19 जुलाई 1827-8 अप्रैल 1857) की विद्रोह से उठी ज्वाला वक्त का इन्तजार नहीं कर सकी और प्रथम स्वाधीनता संग्राम का आगाज हो गया। मंगल पाण्डे को 1857 की क्रान्ति का पहला शहीद सिपाही माना जाता है। इस विद्रोह का प्रारम्भ एक बंदूक की वजह से हुआ। सिपाहियों को दी गई इस नई एनफ़ील्ड बंदूक भरने के लिये कारतूस को दाँतों से काटकर खोलना पड़ता था और उसमें भरे हुए बारुद को बंदूक की नली में भर कर कारतूस को डालना पड़ता था। कारतूस के बाहरी आवरण में चर्बी होती थी जो कि उसे पानी की सीलन से बचाती थी। सिपाहियों के बीच अफ़वाह फ़ैल चुकी थी कि कारतूस में लगी हुई चर्बी सुअर और गाय के माँस से बनायी जाती है।

29 मार्च 1857, दिन रविवार-उस दिन जनरल जान हियर्से अपने बँगले में आरम्भ कर रहा था कि एक लेफ्टिनेन्ट बद्हवास सा दौड़ता हुआ आया और बोला कि देसी लाइन में दंगा हो गया। खून से रंगे अपने घायल लेफ्टिनेन्ट की हालत देखकर जनरल जान हियर्से अपने दोनों बेटों को लेकर 34वीं देसी पैदल सेना की रेजीमेन्ट के परेड ग्राउण्ड की ओर दौड़ा। उधर धोती-जैकेट पहने 34वीं देसी पैदल सेना का जवान मंगल पाण्डे नंगे पाँव ही एक भरी बन्दूक लेकर क्वाटर गार्ड के सामने बड़े ताव मे चहलकदमी कर रहा था और रह-रह कर अपने साथियों को ललकार रहा था- ''अरे! अब कब निकलोगे? तुम लोग अभी तक तैयार क्यों नहीं हो रहे हो? ये अंग्रेज हमारा धर्म भ्रष्ट कर देंगे। आओ, सब मेरे पीछे

आओ। हम इन्हें अभी खत्म कर देते हैं।'' लेकिन अफसोस किसी ने उसका साथ नहीं दिया। पर मंगल पाण्डे ने हार नहीं मानी और अकेले ही अंग्रेजी हुकूमत को ललकारता रहा। तभी अंग्रेज सार्जेंट मेजर जेम्स थार्नटन ह्रासन ने मंगल पाण्डे को गिरफ्तार करने का आदेश दिया। यह सुन मंगल पाण्डे का खून खौल उठा और उसकी बन्दूक गरज उठी। सार्जेंट मेजर ह्रासन वहीं लुढ़क गया। अपने साथी की यह स्थिति देख घोड़े पर सवार लेफ्टिनेंट एडजुटेंट बेम्पडे हेनरी वॉग मंगल पाण्डे की तरफ बढ़ता है, पर इससे पहले कि वह उसे काबू कर पाता, मंगल पाण्डे ने उस पर गोली चला दी। दुर्भाग्य से गोली घोड़े को लगी और वॉग नीचे गिरते हुये फुर्ती से उठ खड़ा हुआ। अब दोनों आमने-सामने थे। इस बीच मंगल पाण्डे ने अपनी तलवार निकाल ली और पलक झपकते ही वॉग के सीने और कन्धे को चीरते हुये निकल गई। तब तक जनरल जान हियर्से घोड़े पर सवार परेड ग्राउण्ड में पहुँचा और यह दृश्य देखकर भौंचक्का रह गया। जनरल हियर्से ने जमादार ईश्वरी प्रसाद को हुक्म दिया कि मंगल पाण्डे को तुरन्त गिरफ्तार कर लो पर उसने ऐसा करने से मना कर दिया। तब जनरल हियर्से ने शेख पल्टू को मंगल पाण्डे को गिरफ्तार करने का हुक्म दिया। शेख पल्टू ने मंगल पाण्डे को पीछे से पकड़ लिया। स्थिति भयावह हो चली थी। मंगल पाण्डे ने गिरफ्तार होने से बेहतर मौत को गले लगाना उचित समझा और बन्दूक की नाली अपने सीने पर रख पैर के अंगूठे से फायर कर दिया। लेकिन होनी को कुछ और ही मंजूर था, सो मंगल पाण्डे सिर्फ घायल होकर ही रह गए । तुरन्त अंग्रेजी सेना ने उन्हें चारों तरफ से घेर कर बन्दी बना लिया और मंगल पाण्डे के कोर्ट मार्शल का आदेश हुआ। अंग्रेजी हुकूमत ने 6 अप्रैल को फैसला सुनाया कि मंगल पाण्डे को 18 अप्रैल को फांसी पर चढ़ा दिया जाये। पर बाद में यह तारीख 8 अप्रैल कर दी गयी, ताकि विद्रोह की आग अन्य रेजिमेण्टो में भी न फैल जाये। मंगल पाण्डे के प्रति लोगों में इतना सम्मान पैदा हो गया था कि बैरकपुर का कोई जल्लाद फाँसी देने को तैयार नहीं हुआ। नतीजन कलकत्ता से चार जल्लाद बुलाकर मंगल पाण्डे को 8 अप्रैल, 1857 को फाँसी पर चढ़ा दिया गया। मंगल पाण्डे को फाँसी पर चढ़ाकर अंग्रेजी हुकूमत ने जिस विद्रोह की चिंगारी को खत्म करना चाहा, वह तो फैल ही चुकी थी और देखते ही देखते इसने पूरे देश को अपने आगोश में ले लिया।

14 मई 1857 को गर्वनर जनरल लार्ड वारेन हेस्टिंगस ने मंगल पाण्डे का फांसीनामा अपने आधिपत्य में ले लिया। 8 अप्रैल 1857 को बैरकपुर, बंगाल में मंगल पाण्डे को प्राण दण्ड दिये जाने के ठीक सवा महीने बाद, जहाँ से उसे कलकत्ता के फोर्ट विलियम कॉलेज में स्थानान्तरित कर दिया गया था। सन् 1905 के बाद जब लार्ड कर्जन ने उड़ीसा, बंगाल, बिहार और मध्य प्रदेश की थल सेनाओं का मुख्यालय बनाया गया तो मंगल पाण्डे का फांसीनामा जबलपुर स्थानान्तरित कर दिया गया। जबलपुर के सेना आयुध कोर के संग्राहलय में मंगल पाण्डे का फांसीनामा आज भी सुरक्षित रखा है। इसका हिन्दी अनुवाद निम्नवत है-

जनरल आर्डर्स

बाय हिज एक्सीलेन्सी

द कमान्डर इन चीफ, हेड क्वार्टर्स, शिमला

18 अप्रैल 1857

गत 18 मार्च 1857, बुधवार को फोर्ट विलियम्स में सम्पन्न कोर्ट मार्शल के बाद कोर्ट मार्शल समिति 6 अप्रैल 1857, सोमवार के दिन बैरकपुर में पुनः इकट्ठा हुई तथा पाँचवी कंपनी की 34वीं रेजीमेंट नेटिव इनफेन्ट्री के 1446 नं. के सिपाही मंगल पाण्डे के खिलाफ लगाये गये निम्न आरोपों पर विचार किया।

आरोप (1) बगावतः- 29 मार्च 1857 के बैरकपुर में परेड मैदान पर अपनी रेजीमेन्ट की क्वार्टर गार्ड के समक्ष तलवार और राइफल से लैस होकर अपने साथियों को ऐसे शब्दों में ललकारा, जिससे वे उत्तेजित होकर उसका साथ दें तथा कानूनों का उल्लंघन करें।

आरोप (2) इसी अवसर पर पहला वार किया गया तथा हिंसा का सहारा लेते हुए अपने वरिष्ठ अधिकारियों, सार्जेन्ट-मेजर जेम्स थार्नटन ह्यूसन और लेफ्टिनेंट-एडजुटेंट बेम्पडे हेनरी वॉग जो 34वीं रेजेमेन्ट नेटिव इनफेन्ट्री के ही थे, पर अपनी राइफल से कई गोलियाँ दागीं तथा बाद में उल्लिखित लेफ्टिलेन्ट वॉग और सार्जेंट मेजर ह्यूसन पर तलवार के कई वार किये।

निष्कर्षः- अदालत पाँचवी कंपनी की 34वीं रेजीमेन्ट नेटिव इनफेन्ट्री के सिपाही नं0 1446, मंगल पाण्डे को उक्त आरोपों का दोषी पाती है।

सजाः- अदालत पाँचवी कंपनी की 34वीं रेजीमेन्ट नेटिव इनफेन्ट्री के सिपाही नं0 1446, मंगल पाण्डे को मृत्युपर्यन्त फाँसी पर लटकाये रखने की सजा सुनाती है।

अनुमोदित एवं पुष्टिकृत

(हस्ताक्षरित) जे.बी.हरसे, मेजर जनरल कमाणि्डग, प्रेसीडेन्सी डिवीजन बैरकपुर, 7 अप्रैल 1857

टिप्पणीः- पाँचवी कंपनी की 34वीं रेजीमेन्ट नेटिव इनफेन्ट्री के सिपाही नं0 1446, मंगल पाण्डे को कल 8 अप्रैल को प्रातः साढ़े पाँच बजे ब्रिगेड परेड पर समूची फौजी टुकड़ी के समक्ष फाँसी पर लटकाया जायेगा।

(हस्ताक्षरित) जे.बी.हरसे, मेजर जनरल, कमांडिंग प्रेसीडेन्सी डिवीजन

इस आदेश को प्रत्येक फौजी टुकड़ी की परेड के दौरान और खास तौर से बंगाल आर्मी के हर हिन्दुस्तानी सिपाही को पढ़कर सुनाया जाये।

बाय ऑर्डर ऑफ हिज एक्सीलेन्सी

द कमांडर-इन-चीफ

सी.चेस्टर, कर्नल।

इतिहास गवाह है कि मंगल पांडे द्वारा आरम्भ की गई विद्रोह की यह चिंगारी बुझी नहीं। एक महीने बाद ही 10 मई सन् 1857 को मेरठ की छावनी में बगावत हो गयी। आधुनिक शोध पत्रों ने भी यह स्पष्ट कर दिया है कि 1857 की क्रांति का आरम्भ सैनिक विद्रोह के रूप में भले ही हुआ, परन्तु शीघ्र ही इसने लोकप्रिय विद्रोह का रूप धारण कर लिया। वस्तुतः इस क्रान्ति को भारत में अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध पहली प्रत्यक्ष चुनौती के रूप में देखा जा सकता है। यह आन्दोलन भले ही भारत को अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति न दिला पाया हो, लेकिन लोगों में आजादी का जज्बा जरूर पैदा कर गया। 1857 की इस क्रान्ति को कुछ इतिहासकारों ने महास्वप्न की शोकान्तिका कहा है, पर इस गर्वीले उपक्रम के फलस्वरूप ही भारत का नायाब मोती ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों से निकल गया और जल्द ही कम्पनी भंग हो गयी। 1857 के संग्राम की विशेषता यह भी है कि इससे उठे शंखनाद के बाद जंगे-आजादी 90 साल तक अनवरत चलती रही और भारत का अंतत: स्वतंत्र देश के रूप में आविर्भाव हुआ।

बिहार में ग़ज़ल लेखन

-डॉ. ज़ियाउर रहमान जाफ़री

हिंदी ग़ज़ल की बढ़ती हुई लोकप्रियता में जिन ग़ज़लकारों का महत्वपूर्ण स्थान है, उसमें बिहार के कई ऐसे शायर भी शामिल हैं, जिन्होंने पाबंदी से इस परंपरा को सुदृढ़ किया है. सिर्फ शायरी ही नहीं आलोचनात्मक स्तर पर भी हिंदी ग़ज़ल को स्थापित करने में इनकी महती भूमिका रही है.

जब भी बिहार के ग़ज़ल कारों की बात चलती है तो हमारा ध्यान सबसे पहले अनिरुद्ध सिन्हा पर जाता है. उन्होंने जहां गजल पर मौलिक पुस्तकों की रचना की, वहीं ग़ज़ल के आलोचक के तौर पर भी राष्ट्र स्तर पर अपने आप को स्थापित किया. हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा में उनके किताबें-तिनके भी डराते हैं, तपिश तड़प, तमाशा, हिंदी गजल सौंदर्य और यथार्थ आदि पुस्तकें पाठकों के द्वारा हमेशा पसंद की जाती रही है. इधर डॉ. भावना के संपादन में उनके ग़ज़ल -साहित्य पर मुकम्मल किताब भी प्रकाशित हुई है. अनिरुद्ध सिन्हा की ग़ज़लों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी सहजता और सरलता है. उनकी ग़ज़लों में विरोध का स्वर तो है ही पर इस मुखालफत में भी तल्खी नहीं है. वह नर्म लहजे के शायर हैं . भाषा के प्रति पूरी सावधानी उनकी अपनी शनाख़्त है. वह अपनी ग़ज़ल के दो मिसरे में पूरी कायनात समेट लेते हैं जिसे पढ़ते हुए पाठक मुतासिर हुए बिना नहीं रह पाता.इस संदर्भ में उनके कुछ शेर देखे जा सकते हैं -

अगर दरख़्त ना होंगे तो यह समझ लीजै
सफर की धूप में साया कोई नहीं देगा

जब से आई है चिड़िया चहकते हुए
मेरे आंगन की सरगम बदलने लगे

बिहार की हिंदी ग़ज़लकारों में डॉ. भावना ने अपनी महत्वपूर्ण पहचान बनाई है. वह इन दिनों हिंदी ग़ज़ल की एक परिचित नाम हैं . हिंदी ग़ज़ल ही नहीं हिंदी आलोचना को भी उन्होंने बखूबी आजमाया है. 'हिंदी ग़ज़ल के बढ़ते आयाम' जहां उनकी आलोचना की जानी-मानी पुस्तक है वहीं गजल संग्रह' मेरी मां में बसी है' और' धुंध में धूप', काफी चर्चित है. उनकी ग़ज़लें विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर के पाठ्यक्रम में भी शामिल की गई हैं.डॉ. भावना की ग़ज़लों का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष सामाजिक विडंबना,धार्मिक विद्वेष, ऊंच-नीच, स्त्री और प्रेम है. उन्होंने ग़ज़लें अपने स्वभाव के अनुसार लिखा है इसलिए वहां पूरी पावनता,पवित्रता और शालीनता दिखाई देती है.उन्होंने ने अपनी शायरी में मिथकों का भी खूब प्रयोग किया किया है. उदाहरण स्वरूप कुछ शेर देखे जा सकते हैं-

महामारी को भी अवसर बना दे
भला वो किस तरह का देवता है

~

दर्द देते हो दवा देते हो
प्यार करने की सजा देते हो

बिहार की महिला ग़ज़ल कारों में डॉ.आरती भी लगातार ग़ज़लें लिख रही हैं . वह ग़ज़ल के साथ मंच पर भी सक्रिय हैं. हाल के दिनों में उनकी प्रकाशित किताब' साथ रखना है' ने हिंदी गजल- आलोचकों का ध्यान अपनी तरफ खींचा है. उनके भी एक दो शेर देखे जा सकते हैं-

उसकी आंखों में चांद रोशन है
तीरगी अब बिखर गई होगी

~

आसमां को भी धरा मिल जाएगी
बस जरा सा सिर झुकाना चाहिए

बिहार के ग़ज़लकारों पर चर्चा करते हुए हमारा ध्यान कुछ ऐसे शायरों पर भी जाता है. जिन्होंने अपने समय में उम्दा ग़ज़लों की रचना की. उसमें से कुछ अब नहीं है और कुछ पाबंदी से अभी भी लिख रहे हैं. ऐसे शायरों में शिव नारायण,फजलुर रहमान हाशमी,सियाराम प्रहरी, शिवनंदन सिंह, अशांत भोला, चाँद मुंगेरी, नचिकेता, प्रेमकिरण, छंदराज, अशोक आलोक आदि के नाम लिए जा सकते हैं. बिहार के नए लेकिन स्थापित हो चुके ग़ज़लकारों में जिन से बहुत सारी उम्मीदें वाबस्ता हैं और जो लगातार ग़ज़ल लेखन में सक्रिय हैं उनमें विकास, अभिषेक कुमार सिंह, राहुल शिवाय, अविनाश भारती, श्वेता गजल,रामा मौसम, शेखर सावंत आदि के नाम क़ाबिले ज़िक्र हैं.

बेगूसराय के अशांत भोला की ग़ज़लों में ठोस यथार्थ हमेशा दिखलाई देता है. समाज में जो कुछ उपेक्षित है उनके अशआर के विषय वस्तु बने हैं.एक -दो शेर मुलाहिजा हो -

हार कर इंसाफ घर से लौट आए
यातनाओं के सफ़र से लौट आए

~

चुपके से आजमाना अच्छा नहीं लगा
ये आप का निशाना अच्छा नहीं लगा

आभा पूर्व बिहार के भागलपुर की शायरा हैं. जिन्होंने नया हस्ताक्षर का संपादन भी किया है. उन्होंने दोहा ग़ज़ल लिखकर ग़ज़ल की परंपरा को बढ़ाने का काम किया है. उनका यह शेर काफी चर्चित है -

सांसो पर पहरा हुआ घुटते जाते प्राण
सन्नाटे में चीख़ कर मिला उन्हें वरदान

गजल आलोचक अनिरुद्ध सिन्हा ने ग़ज़ल के बारे में लिखा है कि आज की ग़ज़लें जीवन के कुछ बेहद जरूरी बिंदुओं पर चोट करती हैं. सूबे बिहार में लिखी जाने वाली गजलें इस दृष्टि से भी देखी जा सकती हैं. कुछ अशआर ग़ौर तलब हैं -

एक सीधे आदमी को क्यों तबाही दे गई
हाथ में गीता लिए झूठी गवाही दे गई

- उपेंद्र प्रसाद सिंह

आज के दौर की नई गजलें
तिलमिलाती ये किरचई ग़ज़लें

- चांद मुंगेरी

कहीं जुल्म की बादशाही न देना
सितमगर की वह वाहवाही न देना

- दिनेश तपन

जब जान आ के जिस्म से बाहर निकल गई
बेटे ने मकबरा तब बनवाया शान से

- वसंत

ज़लज़लों के बाद भी उम्मीद है
इस यकीं को एक पौधा रह गया

- शांति यादव

उस कलम की कभी न कल आए
जिस कलम पर नहीं ग़ज़ल आए

- सियाराम प्रहरी

इस प्रकार हम देखते हैं कि बिहार के ग़ज़ल लेखन में मानव के अस्तित्व की महत्ता स्वीकार की गई है. हिंदी ग़ज़ल का तेवर शुरू से ही विरोधी विद्रोही और बगावती रहा है. उर्दू की तरह यह आशिकों की शायरी नहीं रही. हिंदी ग़ज़ल अपनी बुनावट तो उर्दू से लेती है लेकिन बनावट इसकी खालिस अपनी है. इसने मोहब्बत की जगह ऊब, फिक्र और उदासी को अपना सब्जेक्ट बनाया है. बल्कि इस परंपरा को बिहार की युवा गजल कार भी अपनी उर्जा दे रहे हैं - बिहार के युवा ग़ज़ल कारों में विकास और राहुल शिवाय का नाम काफी अहम है. विकास के दो गजल संग्रह और एक सम्पादित किताब को आलोचकों ने नोटिस किया है. अगर हम विकास की गजलों की गहराई की तरफ जाएं तो पाएंगे कि उनकी ग़ज़लों में प्रेम उत्साह और और सौंदर्य की धारा साथ -साथ बहती है.एक शेर आप भी देखें -

बगल की सीट पर बैठो तुम्हीं अब
तुम्हारे नाम का चर्चा नहीं है

-विकास

'मौन भी अपराध है' के कवि राहुल शिवाय लेखन और प्रकाशन दोनों क्षेत्र में काफी सक्रिय हैं. उनके इस एक शेर से आप उनकी गहराई समझ सकते हैं -

अंधेरी रात है पर रोशनी सलामत है
गमों के बीच भी यह जिंदगी सलामत है

श्वेता ग़ज़ल भी बिहार के महिला ग़ज़लजारों में अपना स्थान तेजी से बना रही हैं. वह मंचों पर भी बेहद सक्रिय हैं उनकी रचनाओं का लबो- लहजा एक मजे हुए शायरा की पहचान दिलाता है.उनका एक जाना - पहचाना शेर है-

तोड़कर दिल गया एक पल में मेरा
प्यार का ये कोई कायदा तो नहीं

-श्वेता ग़ज़ल

बिहार के युवा ग़ज़लकारों में ऐसा ही एक नाम अविनाश भारती का भी है, जो ग़ज़ल तो लिखते रहे हैं बिहार के ग़ज़ल कारों पर अपना शोध भी पूरा कर रहे हैं. उनका यह शेर देखने योग्य है -

मयस्सर नहीं जब हमें दाल रोटी
मुनासिब है कितना कमाना हमारा

- अविनाश भारती

बिहार के ऐसे ही युवा ग़ज़ल कारों में अंजनी कुमार सुमन,कुमार आर्यन,अमन ग्यावी, नवनीत कृष्ण ए. आर आज़ाद आदि भी पाबंदी से ग़ज़ल कह रहे हैं.सूबे बिहार के एक महत्वपूर्ण हिंदी गजलकार फजलुर रहमान

हाशमी भी हैं.उन्होंने मैथिली साहित्य में भी अपनी विशेष पहचान बनाई है. उन्हें मैथिली में साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला, पर गहराई से देखा जाए तो हिंदी ग़ज़ल परंपरा में पौराणिक संदर्भ के प्रयोगकर्ता के तौर पर वह अकेले शायर ठहरते हैं.' मेरी नींद तुम्हारे सपने 'उनका हिंदी गजल संग्रह है. जिससे कुछ शेर देखे जा सकते हैं -

उनकी किस्मत में कब है वैदेही
जो धनुष को कभी उठा न सके

~

मानो एहसान कर्म का अर्जुन
सांप फन बारहा उठाता है

-फज़लुर रहमान हाशमी

बिहार की माटी के अमन ज़खी रवी ने भी 'परिंदों का सफर' नामक गजल संग्रह की रचना की है.अपनी ग़ज़लों के बारे में ख़ुद कहते हैं कि मैंने इस संग्रह में आम-फ़हम शब्दों का ही चयन किया है जो हिंदी पाठकों को सहजता से समझ आ सके. जैसे उनका यह शेर -

वक्त ने ऐसे दिन दिखाए हैं
कितना बूढा है हर जवां चेहरा

असल में ग़ज़ल सिर्फ सहजता और सरलता का नाम नहीं है. महज शिल्प के बल पर भी अच्छी ग़ज़लें तामीर नहीं की जा सकती. वजन को अपनी संरचना में रहते हुए मुकम्मल ग़ज़ल के लिए असर करने का गुण भी होना चाहिए. अगर शेर को सिर्फ शब्दों या फिर काफिये रदीफ़ पर बैठा दें तो वह गजल नहीं हो सकेगी. गजल बहर कैफ जीवन के गहरे अनुभव की मांग करती है. आर. पी शर्मा महर्षि ने ग़ज़ल के छंद पर बहुत काम किया है. उनका कथन है कि ग़ज़ल वह है जो जीवन उपयोगी तथा अपनी धरती और परिवेश से जुड़ी हुई हो. उनके अनुसार ग़ज़ल एक सुकोमल विधा है जो नफासत पसंद है, वह भी इतनी के हाथ लगाते ही मैली हो जाती है. उसे सलीके से तथा स्वच्छता से स्पर्श करना पड़ता है.

बिहार के एक ऐसे महत्वपूर्ण और स्थापित ग़ज़लकार अभिषेक कुमार सिंह है. जिन्होंने ग़ज़ल की परिपाटी से अलग होकर नए शब्द और नए कथ्य दिए हैं. उनकी ग़ज़लों ने पारंपरिक ग़ज़लों से हटकर अपनी मौजूदगी दर्ज की है. उनके हर शेर में एक नयापन है वह एक नई दुनिया को स्पर्श करते हैं. अछूते शब्द, चित्र, व्यंजना, कौशल और बिंब के वो लसानी गज़लकार हैं.'वीथियों के बीच' उनका हालिया प्रकाशित गजल संग्रह है. जिसके पढ़ते हुए उनके मौलिकता का पता चलता है -

आओ उतार लायें ज़मीं पर वो रोशनी
झिलमिल जो कर रही है सितारों के आसपास

~

अजीब घोड़े हैं चाबुक की मार सह कर भी
सलाम करते हैं मालिक को हिनहिनाते हुए

इन पंक्तियों के लेखक डॉ. जियाउर रहमान जाफ़री की भी दो ग़ज़ल संग्रह खुले दरीचे की खुशबू, और खुशबू छू कर आई है नाम से प्रकाशित है. खुले दरीचे की खुशबू की भूमिका हिंदी के जाने-माने ग़ज़ल का जहीर कुरैशी ने लिखी है. लेखक की हिंदी गजल की आलोचना की भी एक किताब 'गजल लेखन परंपरा और हिंदी गजल का विकास 'नाम से अनुकृति प्रकाशन बरेली द्वारा छपकर आई है.उनके भी एक -दो शेर का अवलोकन किया जा सकता है -

नई इक फैक्ट्री तामीर कर लेने की चाहत में
यहां के लोग होरी से किसानी छीन लेते हैं

~

हमारी उम्र तो गुजरी उजाले लाते हुए
चराग़ सोच रहा था मकां जलाते हुए

बिहार के प्रतिष्ठित गजलकारों में शिवनारायण का नाम भी जाना पहचाना है. आप नई धारा के संपादक भी हैं, और प्रसिद्ध हिंदी गज़लकार भी. लगभग 32 पुस्तकों के लेखक शिवनारायण को हिंदी साहित्य में विशिष्ट योगदान के लिए बिहार सरकार ने नागार्जुन सम्मान से भी नवाजा है. 'झील में चांद' इन का महत्वपूर्ण ग़ज़ल संग्रह है. शहंशाह आलम की मानें तो इस संग्रह में समकालीन समय की विश्वव्यापी समस्याओं का जायजा लिया गया है. इस संग्रह के कुछ शेर देखने योग्य हैं -

~

उसी के हाथ होंगे फूल सारे
महक का कारवां जो आ रहा है

~

बहुत हैरान है खामोशियों में
परिंदा फड़फड़ाना चाहता है

असल में ग़ज़ल अपनी शर्तों पर लिखी जाती है, जैसा कि अहमद रजा ने भी लिखा है इसमें नग्मगी,रवानी और मौसिकी जरूरी है. बिहार की ग़ज़लें इस प्रवृत्ति पर भी खरी उतरती है. बिहार के अन्य उभरते हुए ग़ज़लकारों में आनंद वर्धन, मनीष कुमार सिंह, प्रीति सुमन, रामनाथ शोधार्थी, हरिनारायण सिंह, स्वराक्षी स्वरा, रंजना जायसवाल,दीप नारायण आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं जो ग़ज़ल को आगे बढ़ाने में निरंतर लगे हुए हैं. कहना न होगा कि बिहार में जिस तरह से ग़ज़लें लिखी जा रही हैं. आने वाले समय में यह विधा और मजबूती से स्थापित होगी, जिसमें बिहार के ग़ज़लकारों को और प्रभावपूर्ण ढंग से रेखांकित किया जा सकेगा.

परीक्षा

डॉ जया आनंद

" माँ! मुझे सुबह चार बजे जगा देना " सुजय ने लैपटॉप बंद करते हुए आवाज लगाई

"बेटा! सुबह तुम्हारी नींद तो खुलती नहीं...बस मेरी नींद खराब कर देता है " समिधा रसोई समेटते हुए बोलती जा रही थी

"माँ! प्लीज पक्का उठा देना, पढ़ना है मुझे " सुजय बिस्तर पर लेट चुका था।

समिधा ने भी कमरे की लाइट बंद की और बिस्तर पर सोने का उपक्रम करने लगी पर आंखों में नींद कहाँ थी। चिंताओं ने मन-मस्तिष्क को घेर रखा था, अब अपनी चिंता से बढ़कर थी बेटे के भविष्य की चिंता शायद माँ बनते ही स्वय से अधिक महत्वपूर्ण अपना अंश हो जाता है, अपनी इच्छाएं, महत्वाकांक्षाएं सब गौण हो जाती हैं पर ऐसा नहीं कि समिधा ने अपनी इच्छाओं की पूरी तरह तिलांजलि दे दी हो, पढ़ने- पढ़ाने के लिए वो समय निकाल लेती है .... लेकिन अपने बच्चे की सफलता तो सर्वोपरि है...। वैसे अभी तक सुजय ने उसे गौरवान्वित ही किया था। बचपन से लेकर बारहवीं कक्षा तक स्कूल में सभी शिक्षक उसकी प्रशंसा ही करते आए थे " सुजय इज अ वेरी गुड ब्वाय एन्ड वेरी वेल बिहेव्ड टू " समिधा गदगद हो जाती। अभी तक बात छोटे क्लास की थी, पढ़ाई का अधिक बोझ भी नहीं होता इसलिए सब अच्छा ही था....पर अब तो बात अलग है .....पढ़ाई जम कर करनी होगी।

सुजय की पढ़ाई के साथ समिधा भी जुट जाती थी

" सुजय! इस बार टेन्थ बोर्ड है, ये बहुत महत्वपूर्ण साल है बेटा, बहुत ध्यान से पढ़ो.....और तुम्हारे अंदर योग्यता है कि तुम अच्छे मार्क्स ला सकते हो "

"क्या माँ! तुम भी पर्सेंट की दौड़ में पड़ी हो कि मेरे बेटे की

नाक ऊँची रहे या.....तुम्हारी और पापा की नाक ऊँची हो "सुजय जोर से हँस पड़ता

"हँस लो....माँ का मजाक उड़ाने में तो तुमको खूब मज़ा आता है " समिधा गुस्सा हो जाती थी

"अच्छा माँ!सच बोलो क्या तुम नहीं चाहती कि तुम्हारे बेटे के नाइंटी पर्सेंट से ऊपर मार्क्स आयें और तुम सबको गर्व से बताओ "

"हम्म.... अच्छा तो लगेगा मुझे ...पर तुम इतना ला सकते हो क्योंकि तुम्हारी योग्यता है इस स्तर की....और तुम पर भरोसा भी है "

"माँ! ये भरोसे वाली बात बहुत अच्छी है..., मैं कोशिश करूंगा ....अच्छा माँ! जब मैं फिफ्त में था तब भी तुम कहती थी 'ध्यान से पढ़ो, इसके एग्जाम आसान नहीं', जब एट्थ में आया तब भी यही कहा और अब फिर वही...."

समिधा सुजय से प्यार से कहती " बेटा ! जीवन का हर पल परीक्षा है और सबके लिए भरपूर मेहनत करना होता है, "...उसके लाडले सुजय ने कितना समझा उसकी बात को यह जानना अभी शेष था.....।

सुजय के पापा ने दसवीं से ही उसे गणित, विज्ञान जैसे विषयों के लिए सुजय को एक ट्यूशन में डाल दिया था " सुजय! सर से पढ़ोगे न! "

"हाँ!पापा मुझे सर का ट्रायल क्लास अच्छा लगा और मैं वो भीड़- भाड़ वाली कोचिंग में पढ़ना भी नहीं है "

समिधा बाप- बेटे की वार्तालाप से संतुष्ट नजर आयी....। समिधा के भी जीवन की यह महत्वपूर्ण परीक्षा थी जहां उसे अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होना था नहीं तो उसे व्यंग्य बाण झेलने के लिए तैयार रहना होगा 'अरे!अपने में लगी रहती रही, बेटे की फिक्र ही नहीं की '।यद्यपि समिधा और उसके बेटे के बीच बहुत अच्छा संवाद है, बहुत अच्छी समझ भी विकसित है। सुजय ने हमेशा समिधा को

प्रोत्साहित ही किया था बचपन से ही "माँ!तुम स्कूल में बच्चों को पढाओ न!, ...माँ !तुम लिखो न, मेरी प्यारी माँ!"

….. पर दूसरों को ये बात कहाँ समझ आएगी।

पर दूसरों को समझाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। सुजय को दसवीं में सत्तानवे प्रतिशत अंक आए थे, समिधा को अच्छा लगा मानों वही परीक्षा में पास हो गयी। हाँ उसकी भी तो परीक्षा थी एक माँ के रूप में, जीवन के अनेक रूपों में उसे सफलता मिली थी।जब वो स्वयं बेटी थी तो भी उसकी कोशिश रहती कि माँ- पापा का सम्मान सदैव बना रहे, उन्हें खुशियां दे सके, कभी कोई फिजूलखर्ची नहीं, खर्च किया भी तो बस समोसे खाने और जूस पीने में, पढ़ाई में भी अच्छी ही रही, सारे शिक्षक भी बहुत खुश रहते थे उससे और फिर शादी भी माँ- पापा की मर्जी से की और अच्छी तरह निभा के दिखाया, बेटी स्वरुप की परीक्षा में तो उसे अच्छे अंक मिले थे लेकिन बहू की परीक्षा में…..समिधा सोच में पड़ गयी थी। सोचा था कि ससुराल मे सबको खुश कर लेगी। सबका ख्याल रखेगी, सेवा करेगी और बदले में ढेर सारा प्यार समेटेगी, ननद में बहना की मूरत, सास में माँ की सूरत……।शादी के पहले दादी ने समझाया था " देखो बिटिया ! जैसा तुम्हारी सास बोले वैसे ही काम करना, उनसे पूछ-पूछ कर काम करना, खुश हो जायेंगी तुम्हारी सास "। दादी की बात को समिधा ने जैसे गांठ में बांध लिया ।" अम्मा! इतना चावल ठीक है न ….अम्मा! ये साड़ी ठीक है न …. अम्मा! अभी बाजार जाऊँ न…. अम्मा! इतना मसाला पड़ेगा न! .."

हर काम अपनी सास से पूछ कर करना शुरू किया आखिर बहू की परीक्षा में उत्तीर्ण होना था, सास प्रसन्न हो जाएं तो समझो उत्तीर्ण।

उस दिन जन्माष्टमी की पूजा थी, सुबह से समिधा अम्मा से पूछ कर पूजा घर का सब काम कर रही थी, अम्माजी का आदेशात्मक स्वर जारी था

"समिधा ! चरणामृत मा शहद डाल दिहो और शकरकंद छोटे कुकर मा उबाल्यो ….",

" जी अम्मा जी …"समिधा सब बातें ध्यान से सुनते हुए काम करती जा रही थी। रात मे पूजा के समय प्रसाद में तुलसी डालने जब अम्मा ने कहा तो समिधा परेशान हो गयी "वो….अम्मा मैं वो तुलसी तोड़ना तो भूल गयी अब तो रात में…"।बस अम्मा नाराज हो गयीं " अरे ऐसी लापरवाह है कि का कहें, जिम्मेदार कब बनिहें … पूजा मा तुलसी भूल गयी, अरे सब काम तो इनको हम याद दिलाते

"हाँ जानती हूं तुम्हारा दो मिनट...आधा एक घन्टा लगा दोगे .....मेहनत का समय है और तुम सोने में गुजार रहे हो... इंजीनियरिंग की तैयारी ऐसे नहीं होती ये टेंथ या ट्वेल्थ का बोर्ड एग्जाम नहीं है ... बारहवीं में तो कोरोना के कारण ऐसे ही मार्क्स मिल गए ...." समिधा काम करते हुए बड़बड़ाती जा रही थी.।

रहते हैं, दिन भर पूछा करती हैं फिर भी ये हाल….किसी काम का कौनो अंदाज नहीं, हमे तो कोई सिखाने वाला था नहीं फिर भी और इन्हें देखो……"।समिधा को लगा जैसे वो बुरी तरह फेल हो गयी है अब तक किया धरा सब पानी में, जहां वो नब्बे प्रतिशत की उम्मीद लगा कर बैठी थी वही वो शून्य से भी नीचे अंक पा रही है।…. य़ह तो समिधा के लिये हृदय तोड़ देने जैसा था पर अब ऐसी परीक्षाओं से उसे हर दिन जूझना था।अब वो मानसिक रूप से स्वय को तैयार कर चुकी थी। अब कभी वह उत्तीर्ण होती है तो कभी अनुत्तीर्ण, ऐसा लगता है जैसे हर दिन उसे परीक्षा देनी है…., 'क्या अपनी ही बात लेकर बैठ जाती हो 'समिधा ने स्वयं को कोसा।

सुबह छः बजे के अलार्म से समिधा की नींद खुली, सोचते हुए वो कब सो गयी उसे पता ही नहीं चला था।

" सुजय !उठ बेटा, पढ़ना है तुमको...उठो बेटा!"

"माँ बस दो मिनट और सोने दो…" सुजय ने चादर सर से ओढ़ लिया

"हाँ जानती हूं तुम्हारा दो मिनट...आधा एक घन्टा लगा दोगे …..मेहनत का समय है और तुम सोने में गुजार रहे हो… इंजीनियरिंग की तैयारी ऐसे नहीं होती ये टेंथ या ट्वेल्थ का बोर्ड एग्जाम नहीं है … बारहवीं में तो कोरोना के कारण ऐसे ही मार्क्स मिल गए …." समिधा काम करते हुए बड़बड़ाती जा रही थी.।

"माँ! अब सुबह- सुबह उपदेश मत दो...मैं उठता हूं थोड़ी देर में " सुजय ने लेटे हुए कानो पर कुशन रख लिया

समिधा दस मिनट बाद रसोई से वापस सुजय को देखने गयी...सुजय उठ चुका था। समिधा को राहत मिली पर मन में उठा- पटक मची रहती ' कहीं सुजय को छोटे से ट्यूशन क्लास में डाल कर गलती तो नहीं कर रही…सुजय को उन्हीं सर से पढ़ना था जिनसे वह दसवीं से पढता आ रहा था, किसी नामी-गिरामी कोचिंग क्लास में डालती तो अच्छा रहता। कोचिंग क्लास वाले मेहनत करवाना जानते हैं….पर सुजय को सर से ही पढ़ना पसंद है, बच्चों के आगे झुकना ही पड़ता है।

"माँ, नाश्ता दो जल्दी " सुजय तैयार होकर डाइनिंग टेबल पर बैठ गया। समिधा ने गरम दूध का ग्लास जल्दी से सुजय के हाथ मे दिया और आलू के पराठे की प्लेट टेबल पर रख दी।

"बेटा ठीक से खाओ तो पढ़ाई में मन लगेगा "कहते हुए समिधा ने सुजय के सर पर हाथ फेरा

"माँ!मैं पढ़ता तो हूं न!...अब अधिक मत बोलो "सुजय की आवाज में खीझ थी

समिधा चुप हो गयी '...अब अपने बच्चे को बोलने में भी इतना सोचना पड़ेगा...पता नहीं क्या करेंगे आजकल के बच्चे...' यही सब सोचते हुए समिधा बिखरे घर को समेटने लगी पर उसे बार-बार ये लगता कि सुजय को अच्छे कोचिंग संस्थान में डालना चाहिए था! सुजय अपने स्कूल मे अच्छा विद्यार्थी रहा है, सभी शिक्षक उसकी तारीफ ही करते आए हैं पर अब पता नहीं क्या करेगा...।

सर के पास से आने के बाद सुजय मोबाइल लेकर बैठ गया और उसके बाद नीचे खेलने चला गया "माँ!बस आधे घण्टे में आ रहा हूं "

"सुजय!बेटा अभी मत जाओ एक हफ्ते बाद ही जे ई मेंस है, बहुत पढ़ना पड़ता है.." समिधा बोलती रह गयी पर सुजय तो नीचे जा चुका था

"कैसे क्या करेगा ये लड़का, इतना कांपटीशन हैऔर इसे खेलने की पडी रहती है" समिधा के माथे पर बल पड़ गए थे।

फिर वो दिन आ गया जिसकी प्रतीक्षा इतने समय से हो रही थी। समिधा ने दही चीनी सुजय को खिलाया और हल्दी चावल का टीका लगया।

" माँ!हल्का टीका लगाना नहीं तो सब हँसेंगे"

"...बड़ा आया स्टाईल मारने वाला....अच्छा सुजय! सर को फोन कर लेना उनसे भी आशीर्वाद ले लेना "

"हाँ माँ!जरूर " सुजय बैग सम्हालने लगा

"बेटा!जल्दी करो " पापा का फरमान जारी हो गया

'जी पापा! सुजय ने माँ के दादी के पैर छुए और पापा के साथ लिफ्ट की ओर बढ़ गया तब तक आवाज आयी "आल द बेस्ट दादा!" छोटी श्रेया जोर से चिल्लाई सुजय ने मुस्कुराते हुए बाय किया और लिफ्ट की ओर बढ़ गया।

जे ई मेन्स की परीक्षा हो चुकी थी और अब परिणाम की प्रतीक्षा थी। पापा, दादी और समिधा सभी बेसब्र थे पर समिधा कुछ अधिक ही व्यग्र थी। पिछले दो सालों से सुजय को समय से सुबह जगाना, पढ़ने के लिए प्रेरित करते रहना, साथ- साथ लगे रहना....'.सभी माएं ऐसा करती हैं, कुछ विशेष भी उसने नहीं किया 'समिधा यह भी सोचती जाती पर परिणाम की प्रतीक्षा उसे थी, कहीं न कहीं माँ के रूप में उसकी भी तो परीक्षा थी।

"सुजय! तुम्हें क्या लगता है...?"समिधा हर दूसरे दिन यह प्रश्न पूछ लेती। " माँ!देखते हैं..." सुजय का भी उत्तर कुछ अस्पष्ट सा रहता...।

समिधा मोबाइल पर कुछ लिख रही थी कि फ्लैश हुआ 'जे ईमेन्स रिज़ल्ट डिकलेयर्ड '

"सुजय ! रिजल्ट आ गया, जल्दी से देख " समिधा जोर से चिल्लाई

"हाँ माँ! देखता हूँ " सुजय जल्दी से लैप टॉप खोलकर रिजल्ट देखने लगा

समिधा के होंठ बुदबुदाने लगे जिसमें प्रार्थनाओं का मद्धम स्वर भासित हो रहा था। दादी भी औचक दृष्टि से सब गतिविधि देख रहीं थीं। पापा ऑफिस में ही थे, छोटी बहन भी स्कूल गयी थी। समिधा व्यग्र हो रही थी " क्या हुआ सुजय?...जल्दी बता न!"

सुजय कुछ शांत दिख रहा था। समिधा चिंतित हो गयी।

"क्या हुआ सुजय..बता क्यों नहीं रहा ?"

"माँ! वो.... वो मैं.... 90 परसेन्टाइल पर क्वालिफाई होना है इस बार और मेरा 89.5 परसेन्टाइल आया....."सुजय बोलते - बोलते चुप हो गया

समिधा की आँखों से दो बूंदें ढुलक आयीं.... सोचा था अभी सबको फोन करेगी, खुशखबरी देगी, सुजय के पापा कितने खुश होते, समिधा गर्व से भर जाती....पर.....सुजय तो 97 परसेन्टाइल की योग्यता रखता था....।

"दिन भर मोबाइल में लिखत रहतीं रहैं बच्चे पर ध्यान ही नहीं " अम्मा के व्यंग्य बाण समिधा पर चलना शुरू हो गए थे। समिधा स्वयं को हारा हुआ सा अनुभव कर रही थी।

"माँ!तुम दुखी हो.." सुजय समिधा के पास आकर बैठ गया

"क्या बोलूँ बेटा...मैंने उम्मीदें तो बहुत लगाई थीं तुमसे, सोचा था कि.....तुम्हारी योग्यता को देखते हुए ये मार्क्स तो बहुत ही कम हैं, यहाँ तक कि तुम जे ईमेन्स क्वालिफाइ भी नहीं कर पाए....गलती हो गयी हमलोगों से, तुम्हें किसी बड़े कोचिंग क्लास में डालना चाहिए था, वहाँ तुम्हें प्रॉपर कॉम्पिटिशन मिलता, ...सर के क्लास में डाल कर गलती हो गयी" समिधा एक साँस में बोलती चली गयी।

"माँ!क्या बोल रही हो तुम...मेरा रिजल्ट मेरी वजह से खराब हुआ इसमें सर की कोई गलती नहीं। सर ने अच्छे से पढ़ाया, मैंने उतनी मेहनत नहीं की...प्लीज माँ! सर को कुछ मत कहो मुझे उन पर पूरा भरोसा था और है, मेरी गलती का जिम्मेदार सर को मत ठहराओ.....माँ!मैंने शायद उतनी मेहनत नहीं की ..आय एम अनेबल टू गिव माय बेस्ट और तुम सर को...प्लीज माँ!..." कहते हुए सुजय ने अपने कमरे का दरवाजा बंद कर दिया।

समिधा सुजय की बात सुनकर ठिठक गयी... मन- मस्तिष्क में मचा कोलाहल अचानक शांत पड़ गया। अभी तक समिधा स्वयं को पराजित सा महसूस कर रही थी पर अब मन की स्थिति कुछ अलग थी। सुजय की स्वीकारोक्ति 'माँ गलती मेरी है सर की नहीं...मैंने मेहनत कम की..सर पर मुझे पूरा भरोसा था और है ...सर को कुछ मत कहो ...' समिधा के भीतर एक ठहराव को जन्म दे रहा था और मन आश्वस्ति से भर रहा था ' भले ही सुजय जे ईमेन्स की परीक्षा में पास नहीं हो पाया पर 'जीवन की परीक्षा'में जरूर पास होगा।

चाय ~ सुबह-बेवक्त और शाम...

शाम की चाय ~ चाय एक आदत है। सुबह की चाय, नाश्ते के वक्त की चाय या फिर मिलने जुलने के मौक़े पर बे वक्त की चाय।

सुबह एक प्याला चाय और दो बिस्कुट, नाश्ते की चाय पर टोस्ट, पराँठा या मन पसंद कुछ ऐसा वैसा। बे वक्त की चाय, वक्त के मूड के साथ जो चल जाए वो ठीक। शाम की चाय के साथ कुछ ऐसा हल्का कि डिनर टाइम तक ऐसा न लगे कि अरे ! भूख ही मर गई।

बहरहाल मैं शाम की चाय पर लौटता हूँ। बरसों बरस बीत गए, शाम की चाय एक आदत बन गई है। जब मैं लड़का था तब चाय की तलब का यह आलम कि बिना घड़ी देखे बता देता कि चार बज गए हैं। उन दिनों स्कूल जाने से पहले सुबह खाई रोटी

महेंद्र महर्षि

दाल या जो कुछ और भी रहता, वह पच जाता। माँ को अंदाज था कि हम बच्चे, कुछ खाने को माँगेगे। तो हमारे लिए देसी घी के पराँठे का इंतज़ाम कर रखती थीं। पराँठा अपने आप में लज़ीज़ होता जिस पर थोड़ा अमचूर, चुटकी से कम नमक व लाल मिर्च, कभी मन हुआ तो कच्चे ही जीरे के कुछ दाने और शक्कर बुरक कर पराठे को लपेट लेते। इसे हम 'भभैय्या' पुकारते। चाय से भरा पीतल का कटोरी में सजा गिलास, भभैय्ये के हर गस्से के बाद, होंठ गर्म करता हुआ गले उतरता। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि फीका पराँठा गर्म चाय में डुबो डुबो कर खा लेते। अब भी कई लोगों को बिस्कुट चाय में डुबो कर खाने में मज़ा लेते देखता हूँ। मगर असली मज़ा तो तब आता है जब बिस्कुट का भीगा हिस्सा प्याले में डूब जाता है। यह सब पराठे के साथ नहीं होता था। मैंने ' भभय्ये' का

तामझाम, इस पकी उम्र में भी करके देखा, पर बात जो तब थी, अब लौट न पाई।

चाय के साथ जुड़ा दिन शुरू होने से बाद का सिलसिला भी बदल गया है। सुबह उठने की पाबंदी ही न रही तो चाय के साथ दो बिस्किट का कल्चर भी चला गया। मैं जिस तरह की चाय पीता हूँ, उसकी महक टी-कोजी से ढँकीं केतली में 'सिमर' होती हुई, टी-ट्राली से टेबल तक आती है। सुबह की चाय का पहला कप, मैं नींबू और चुटकी भर नमक डाल कर धीरे धीरे पीता हूँ। अख़बार पढ़ने लायक़ ही नहीं रहे। चकल्लसों से भरे पेज बेमतलब की छपाई लगते हैं। तो मंगाने ही बंद कर दिए। स्मार्ट फ़ोन ने अब टी टाईम पर साथ बैठकर बतियाने का सलीका छीन लिया है। हर हथेली में चिपका फ़ोन दिखने के लिए एक मेज़ पर बैठे परिवार को भी अकेला बैठाए रखता है।

घरों में अब नाश्ते की चाय, सबके शिड्यूल के मुताबिक़ तय रहती है। मोटर, ट्रेफ़िक और दफ़्तर पहुँचने का प्रेशर (बोझ) बेचैन किए रहता है। शनिवार-इतवार तो यह एतबार ही नहीं होने देता कि कुछ चैन आया या सिर्फ़ दो दिन छुट्टी का सपना देखा। मध्य वर्ग की सुबह की चाय के अहसास आधारित, इस लेख पर अपवाद संभव है।

गाँव छोड़कर काम के लिए शहर की ओर भागे हर शख़्स की ज़िन्दगी कमोबेश कुछ कुछ ऐसी ही हो चली है। पगार के हिसाब से उपर-नीचे का फ़र्क़ कोट क़मीज़ के कालर में झलकता है। मन में बेचैनी लगभग वैसी ही जैसी की पोल्यूशन भरी बुरी, बहुत बुरी हवा। हर साँस में उसका ' सेक्यूलर' अंदाज, एक समान, सबके साथ समान व्यवहार की आवाज़। यहाँ कोई रिज़र्वेशन लागू नहीं होता।

अब हम शाम की चाय पर चर्चा करेंगे। उसके साथ जुड़ी औपचारिक या अनौपचारिक ज़्यादतियाँ, जगह जगह के भेद को निबाहने के लिए बदल बदल कर सामने आती हैं।

मीटिंग के पहले की चाय, या बाद की चाय, प्रोग्राम की मर्यादा के साथ जुड़ी रहती है। उसके साथ परोसे गए स्नेक्स, बर्फ़ी-गुलाब जामुन, टी या काफ़ी, प्रायोजित शाम की चाय के चोचले होते हैं। उनके प्रत्यक्ष - परोक्ष, लक्ष्य या मंशा-मन्तव्य क्या है, बताना मेरा मक़सद नहीं। पढ़ने वाले इसे अपनी तरह से एनेलाइज करके समझ लेंगे।

अब मैं अपनी और परिवार की हर शाम की चाय से जोड़ कर कुछ आगे बढ़ता हूँ। मैं इन

चाय के साथ जुड़ा दिन शुरू होने से बाद का सिलसिला भी बदल गया है। सुबह उठने की पाबंदी ही न रही तो चाय के साथ दो बिस्किट का कल्चर भी चला गया। मैं जिस तरह की चाय पीता हूँ, उसकी महक टी-कोजी से ढँकीं केतली में 'सिमर' होती हुई, टी-ट्राली से टेबल तक आती है। सुबह की चाय का पहला कप, मैं नींबू और चुटकी भर नमक डाल कर धीरे धीरे पीता हूँ।

दिनों 'वैरी सीनियर सिटिज़न ' की कैटेगिरी में चल रहा हूँ। उम्र के साथ जुड़ी कुछ पाबंदियों का बोझ मेरे कोमल मन पर बना दिया गया है तो कुछ मैंने खुद से पहन-ओढ लिया है। मुझे बूँद भर टपकाए टोन्ड दूध की फीकी चाय का डेढ़ प्याला, या यों कहें कि लगभग 300 एमएल चाय शाम को चाहिए। साथ ऐसा चबैना जोड़ लेता हूँ जो हल्का हो और चाय की हर घूँट का साथ देता रहे। बाज़ार के नमकीन कितने भी अच्छे हों, सेहत और पेट के लिए इस पकी उम्र में ठीक नहीं। रोज़ रोज़ पकौड़े, बरसात की शाम के मज़े को किरकिरा कर सकते हैं। घर में तले आलू के चिप्स या फिर पुराने जमाने में ख़रबूज़े की सुखाकर रखी छीलन, तलकर चटर-मटर खाने का रिवाज अब घर की मैनेजिंग डायरेक्टर को भाता नहीं। ऐसे में कुछ महीनों से एक एक्सपेरिमेंटल जिहाद शुरू हुआ जो अब आतंक में तब्दील सा लगने लगा है। क़िस्सा बयान करूँ तो हुआ यों कि जहां हमारी कामवाली रहती है, वहाँ की दुकान में मुरमुरों के पैकेट मिलते हैं। एक बार वह हमारे कहने पर एक ले आई। बस मुरमुरों को कढ़ाई में चम्मच दो चम्मच तेल, सूखे करी पत्ते व हरी मिर्च, मूँगफली दाना, नमक और अमचूर के साथ मिलाकर शाम की चाय के लिए कई दिन का चबैना बना लिया गया। पर हर शाम महीनों से कामयाब, अब यही बोरियत बन गया है। यों तो इस पर चर्चा बे मानी थी मगर बात से बात निकलती है। विस्तार से पढ़ने के लिए चलें :~~~

हुआ यों कि मैंने हर रोज़ शाम की चाय के साथ मुरमुरों के नमकीन से ऊब कर अचानक से कह दिया कि,"अब बस, नो मोर भड़भूझा मुरमुरा नमकीन"। साथ ही बैठे बेटे ने पूछा, " भड़भूझा" किसे कहते हैं? मैं हैरत में था कि इस पीढ़ी को यह भी नहीं मालूम। तभी उसकी अम्मा, मेरी श्रीमती जी ने कहा, " बस इतने में ही ऊब गए। अरे ! पूरब में तो सदियों से लोग चिवड़ा, मुरमुरा दही में मिला कर कच्चा ही खा लेते हैं। वे तो सत्तू पानी में घोल कर पी लेते हैं। दिन भर हाड़ तोड़ मेहनत भी करते हैं। "

मैं, बेटे को बताने लगा कि भड़भूझा कौन होता है। वह क्या क्या बनाता है। स्पष्ट करते हुए मैंने पूछा, "क्या जानते हो कि पौपकार्न को माइक्रोवेव में सेंकते हुए हम भी भड़भूझे के किरदार में होते हैं?" मल्टीप्लेक्स में बड़े से डब्बे के मात्र 100 ग्राम पापकोर्न के लिए 200 रूपये वसूलने वाला भी तो यही काम करता है। ताज्जुब है कि शहरी जैनेरेशन भड़भूझे का काम कर लेती है लेकिन उसके देसी प्रोफेशनल नेम से वाक़िफ़ नहीं है।

कुछ ऐसा हुआ कि यों ही बात ही बात में विषय उन लोगों की तरफ़ मुड़ गया जो कभी पोटली में भुने जौ चने का सत्तू और गुड़ लेकर घर से कोसों दूर की यात्रा पर निकल जाते थे। सत्तू नाम का वह भोजन तृप्ति,

संतुष्टि के साथ पोषक भी होता था। बिना तारीख़ी लेबल के,उसकी शेल्फ लाइफ़ भी ख़ासी बेहतर होती थी। गुजरे-भूले दौर में जब स्वाभिमान तलाशा जाने लगे और वो मिल भी जाए, तो ऐसा लगता है कि मेले में बिछड़ा भाई मिल गया। मोटे अनाज का नया दौर विश्व पटल पर वापसी करने को है। संदेश संतोष करने का है।

"देख पराई चोपड़ी, ना ललचाईए जी, रूखी सूखी खाय के ठंडा पानी पी। "।

बात में से बात निकलती है। चर्चा कृष्ण-सुदामा प्रसंग पर आ पहुँची। सुदामा की पत्नी वसुंधरा ने थोड़े से चावल-मुरमुरे अपने पति को पोटली में बांधकर द्वारिकाधीश को भेंट स्वरूप भेज दिए। मुरमुरे की दो मुठ्टी भेंट से उन्होंने क्या कुछ न पा लिया था ? इसी प्रसंग में सुदामा के संकोच और बाल सखा प्रेम का जो बेमिसाल आदर्श कृष्ण ने प्रस्तुत किया, वह भी चावल के बिन संभव न होता। द्वारिकाधीश तो तीनों लोक आधे चावल के बदले में न्योछावर कर रहे थे कि पत्नी ने पूछ लिया, यदि ऐसा कर बैठे तो रहने के लिए बैकुण्ठ छोड़कर कहाँ जाएँगे महाराज ?

चावल के चिवड़ा-पोहा हों, मुरमुरे, गुड़-चना या सत्तू, भुने अनाज सदैव ऊर्जा के स्रोत रहे हैं। इनमें सादगी का स्वाद-रस है। प्रतीक रूप में, कृष्ण-सुदामा की मित्रता में दोनों सखाओं का, अपनी-अपनी सीमाओं में बँधे रहते, सब कुछ न्योछावर करने का निश्चल त्याग है। देवी वसुंधरा के स्वभाव के संदेश अनुसार, स्वयं पुरुषार्थ से अर्जित उपलब्धि ही जीवन का संतोष सूत्र है। यहाँ मुरमुरा थोड़े में भी भरपूर होने के भोले भाव का प्रतीक है।

शाम की चाय पर मूँगफली दाने के साथ मिलकर मुरमुरा सस्ता सुलभ पौष्टिक चबैना है। मुझे इसे स्वीकार करना होगा।

महेन्द्र महर्षि-दूरदर्शन अपार्टमेंट, गुडगांव।

संतों के दोहे

संत ज्ञान, तप, योग से, रचते जीवन-सार।
राह दिखा, आलोक दें, परे करें अँधियार।।

संत नित्य ही निष्कलुष, सदा आचरण नेक।
कर्म, सत्य को मानकर, साधें प्रखर विवेक।।

संत करें नित साधना, शुभ-मंगल का मान।
जहाँ संत होता वहाँ, हर दुर्गुण का अवसान।।

संत आचरण से बनें, बाह्य प्रदर्शन व्यर्थ।
जहाँ शुद्ध अंतर वहाँ, संत रूप का अर्थ।।

संत धर्म, अध्यात्म को, कर देते अभिराम।
जिसके मन में ब्रम्ह है, संत वही अविराम।।

संत त्याग का सार है, फलीभूत उत्थान।
रच सामाजिक चेतना, लाता नवल विहान।।

संत हरे हर वेदना, रोग, शोक, संताप।
सद्गुरु बनकर विश्व को, देता नवल प्रताप।।

मिथ्याचारी संत पर, बन जाते हैं शूल।
कर समाज को खोखला, काटें सत् की मूल।।

संत भोग का त्याग कर, ठुकराते हैं अर्थ।
छद्म रूप में संत पर, कर देते सब व्यर्थ।।

संत पूजते हम सभी, करके नत निज शीष।
करें कामना नित मिले, हम सबको आशीष।।

-प्रो(डॉ) शरद नारायण खरे

मजदूर

मज़दूर बनाते हैं
आलीशान महल
ऊँची मीनार
कोठियाँ
बंगले
अपना खून पसीना बहाकर

लगाते हैं उनमें असंख्य प्रकाशपुंज
सोने के लिए मखमली गद्दा
टी. वी. ए. सी. अलवारी स्वीमिंग पूल

लेकिन हैं मजदूर
सदियों से शोषित
ठिठुरती सर्दी
और झुलसती गर्मियों में
मरने के लिए
अंधेरी
सड़कों पर

लड़कियाँ

आज भी बंद घरों में
पिट रही हैं असंख्य
महिलाएँ

जलाई जा रही हैं
दहेज के लालच में
असंख्य बहुएँ

दफ्तर कार्यालयों में
रौंदी जा रही हैं
उनकी अस्मिता
कत्ल हो रही हैं असंख्य
इस दुनिया में
आने से पहले
अपनी माँ की कोख में
लड़कियाँ ...

डॉ. प्रेम कुमार, अध्यक्ष, हिंदी विभाग, निर्वाण विश्वविद्यालय जयपुर

मेरी पिताजी की साईकल

मैं उस समय की बात कर रहा हूँ, जब शहर में आवागमन के लिये साईकल का प्रचलन था। दुपहिया वाहन भी इक्के दुक्के ही थे जबकि चार पहिया वाहन तो ना के बराबर थे। उस समय समाज में आपसी प्रेम भाईचारा खूब था और ईमानदारी व सादगी से लोग जीवन यापन करते थे। फिर भी मेरे पिताजी ने कभी साईकल खरीदी ही नहीं, इसलिये साईकल चलाने वाला प्रश्न ही बेईमानी हो जाता है। अब यह जिज्ञासा अवश्य ही होगी कि ऐसा क्यों ? तो उस पर नीचे विस्तार से बता दे रहा हूँ—आज से 60 / 65 साल पहले एक घटनाक्रम में पिताजी के किसी परिचित द्वारा साईकल न वापरने पर जब पूछा, तब उन्होंने बताया कि मेरी ये दो टाँगें ही साईकिल वाले दो पहिये हैं। उसी बातचीत में उन्होंने अपने मित्र को बताया कि मैं तीन तल्ले पर रहता हूँ और मेरी तरह यहाँ अनेक लोग रहते हैं और सभी की साईकिलें नीचे एक के बाद एक सटी खड़ीं रखनी पड़ती है। और इनको रखने व निकालते वक्त आपसी हल्की खींचातानी न चाहते हुए भी हो ही जाती है इसलिये मैं भला और मेरी ये दोनों टाँगें।

उसके कुछ सालों बाद जब मैंने नौकरी पर जाना प्रारम्भ कर दिया तब इस विषय पर मेरे द्वारा पूछने पर उन्होंने मुझे समझाया कि यदि तुम दोनों टाँगों को साईकल के दो पहिये मान इनके भरोसे रहोगे तो बहुत ही ज्यादा सुखी रहोगे। फिर उन्होंने मुझे निम्न बातें समझायीं

1) आफिस जाओ तब रोज नये रास्ते से जाना आना करो और उसके जो कारण बताये वो इस प्रकार हैं -

अ) शहर का पूरा भूगोल तुम्हें आसानी से याद भी हो जायेगा और समझ में भी आ जायेगा।

ब) आवश्यकता पड़ने पर तुम कम दूरी वाला रास्ता काम में ले पाओगे।

स) पैदल चलने पर रास्ते में पड़ने वाले हर मन्दिर का बाहर से अपने आप दर्शन हो जायेगा।

द) किस रास्ते पर किस वस्तु का बाजार बसा है, ध्यान में रहेगा।

ल) कहाँ पर कौन सी वस्तु अच्छी व उचित दाम में मिल सकती है उसका हमेशा ध्यान करते रहो ताकि किफायती में गुणवत्ता वाला सामान वापर सको।

2) पैदल चलते रहने से मोटापा पनपेगा ही नहीं।

3) पैदल चलने वाले को डायबिटीज होती नहीं।

4) पैदल चलने से टाँगे मजबूत होती हैं।

5) पैदल चलने पर किसी के भरोसे नहीं रहोगे यानि यदि साईकल में किसी भी प्रकार की खराबी हुयी तो साईकल सवार को जरा भी पैदल चलना अखरता है।

6) पैदल चलने पर शुद्ध हवा फेफडों में जाती है जो स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगी होती है।

7) एक साथ सारा सामान लाने का झंझट नहीं रहेगा यानि रोज आफिस से लौटते समय आवश्यकता क्रमानुसार उतना ही सामान अपने थैले में डलवाओ जितना आसानी से घर तक ला पाओ। भले ही थोक भाव में सौदा कर बाकी सामान दुकानदार के पास ही रहने दो।

8) अति आवश्यकता हो तो झाका (एक टोकरी लिये मजदूर बाजारों में उपलब्ध रहते हैं) कर उससे सामान घर भिजवा दो।

9) नित्य खरीददारी होने से ताजी सब्जी, फल व फूल घर ला पाओगे।

10) भूख भी अच्छी लगेगी जिससे भोजन समय पर कर पायेंगे जो स्वास्थ्य की दृष्टि से उचित माना जाता है।

11) पैदल चलने से थकावट आना वाजिबी है जिसके फलस्वरूप रात को आरामदायक गहरी नींद आयेगी।

उपरोक्त को ही पिताश्री की आज्ञा मान आज तक मैं दो टाँगों को ही साईकल के पहियें मान आराम की जिन्दगी जी रहा हूँ हाँलाकि अब तो घर में साईकल के अलावा दुपहिया वाहन में मोटरसाइकिल व चार पहिया वाहन के तौर पर मोटरगाड़ी भी है। लेकिन मैं आज भी केवल उसमें बैठना ही जानता हूँ। चलाना सीखने की कभी ईच्छा ही नहीं हुई। यह सर्वविदित है कि आज भी अनेकों ऐसे हैं जिनके पास साईकल नहीं है और यह सब इस बार कोरोना काल में सभी को परिलक्षित जब हुआ तब लोगों का झुण्ड सड़कों पर 2000 / 3000 कि० तक का सफर अपने दो टाँगों के भरोसे पूरा किया।

गोवर्धन दास बिन्नाणी

व्यंग्य लंका

दिलीप कुमार सिंह

ना रूपया ना पैसा ना कौड़ी रे

ये मोटू और पतलू की जोड़ी रे

मोटू और पतलू रे

ये गीत गाते हुए प्रकाशक के लाये हुये लड्डू खाते हुए मोटू ने गब्बर स्टाइल में कहा –

" अरे पतलू भाई, कितने आदमी होंगे नए व्यंग्य संग्रह में "।

पतलू ने भी लड्डू मुंह मे डालते हुए उत्साहित होकर सांबा की तरह कहा –

" पूरे पचास "

मोटू ने तड़कते हुए कहा –

"पचास सालों से पचास पर ही अटका हुआ है, आगे बढ़ ना "।

पतलू ने झल्लाते होते हुए कहा –

"बात पूरी सुना करो यार, इसीलिये तुम्हारी कोई परियोजना बिना लफड़ेबाजी के पूरी नहीं हो पाती। मैं बोल रहा था कि पचास तो अपनी टीम के पुराने बन्दे रहेंगे। उनको तो हमको कुछ बोलना ही नहीं है, जो कहेंगे वो मान लेंगे। वो तो अपने कहने पर कहीं भी गर्दन झुकाने को तैयार रहते हैंरहा सवाल बाकी पचास का, तो वो हम नए बन्दे लेंगे"।

"नए बन्दे क्यों लेंगे, जब हमारी सौ लोगों की बारात पूरी है। क्योंकि जो पचास हमारे कोर मेम्बर हैं वो अगर एक -एक को लाएंगे तो सौ लोग तो चुटकी बजाते ही जुड़ जाएंगे। और जब सौ व्यंग्य हाजिर हैं तो व्यंग्य की बैंड बजने में देर क्यों है यार " ?

मोटू इस बार झल्लाते हुए बोला।

पतलू भी झल्ला गया और तुर्शी से बोला –

"ये ना तो फुरफुरी नगर है और ना ही तुम इंस्पेक्टर चिंगम हो जो तुम्हारे हिसाब से खेल चलेगा। ऐसे में सौ अच्छे लेखकों को लेकर संग्रह निकालना आसान काम नहीं है "।

मोटू ने कहा –

"फुरफुरी नगर के खिलाड़ियों और हमारी टीम के लेखकों में कोई खास फर्क है क्या। और जब पहले ही हमारी सौ बंदों की टीम थी तो पचास का ही नाम क्यों ले रहे हो बाकी के पचास व्यंग्य बाराती कम कैसे हो गए "?

पतलू ने कहा –

"अमां यार समझा करो जिन पचास लेखकों को हटाया गया है, वो ऐसे लोग हैं जिन्होंने संग्रह में नाम आने के बाद पलट कर हमको सलामी नहीं दी। ना अपनी फेसबुक वाल हमारे लेखन की बड़ाई की और ना ही हमारी फेस बुक वाल पर कभी भी हमारे लिखे को क्लासिक और कालजयी जैसे शब्द नहीं नवाजे। अब तुम्ही बताओ भाई ऐसे नाशुक्रे पचास लोगों को अपनी किताब में जगह देने का कोई मतलब है ?इसीलिये इनको निकाल दिया आगामी किताब से, ठीक किया ना भाई ?

मोटू ने गंभीर स्वर में कहा -

"बिल्कुल ठीक किया भाई, अच्छा ये बताओ बाकी के जो पचास लोग परमानेन्ट टीम में हैं उन्होंने रेग्युलर हमारी लल्लो - चप्पो की है ना, पूरे साल सलामी ठोंकते रहे हैं ना, तुमने भाई पूरी तरह चेक कर लिया है ना?कोई बागी तो नहीं बना, किसी ने बगावत तो नहीं की "?

पतलू ने हँसते हुए कहा –

" भले ही लोग हमें व्यंग्य के मोटू -पतलू बुलाते हैं लेकिन हम दोनों की जोड़ी जय - वीरू टाइप की है। यहाँ विजय हो ना हो लेकिन कोई जय शहीद नहीं होता और व्यंग्य हमारे लिये रामगढ़ की चक्की का आटा है। हम दोनों अतुकांत कविताओं से लतियाये गए लेकिन मानो या न मानो व्यंग्य ही ने हमको सिरज रखा है।सही कहा ना मोटू भाई, सारी वीरू भाई "।

"सही कहा भी और सही किया भी, पतलू भाई, सारी जय भाई" मोटू ने हँसते हुए जवाब दिया।

उन दोनों की शिखर वार्ता के दौरान व्यंग्य के रामगढ़ में सांबा इस बार लेडी सांबा के रूप में अवतरित हुआ। अपनी नाक सहलाते हुए वो जनाना, खालिस जनाना स्वर में बोली –

"मोटू भैया, पतलू भैया आप लोग मुझे भूल गये। आप लोग मुझे अब अपनी बहन सूर्पनखा समझें। मेरी नाक कटी ही समझो "।

मोटू -पतलू बड़ी देर तक लेडी सांबा की सलामत नाक को देखते रहे। फिर मोटू ने कहा –

"देख बहना, तू भले ही खुद को सूर्पनखा समझ ले। लेकिन हम तुझे बहन मानकर रावण नहीं बनने वाले। पहली बात तो क़लजुग में सूर्पनखा भले ही इफरात मिलती हों मगर लक्ष्मण तो एक भी नहीं होते, फिर तेरी नाक तो अभी सलामत है बहना, फिर तू सूर्पनखा कैसे हुई बहना "।

लेडी सांबा कुछ बोल पाती इससे पहले ही पतलू ने होशियारी दिखाते हुए कहा –

"संभल के रहना भाई, इसकी नाक सलामत है। जिस तरह क़लजुग में लक्ष्मण नहीं होते। उसी तरह क़लजुग में हमको मारीचि नहीं बनना है कि कोई हिरन समझ कर हम पर बाण वर्षा कर दे और हम टें बोल जाएं। इसके

बाद बरसों की सेटिंग -गेटिंग से बनायी हुई ये हमारी ये' व्यंग्य लंका' जल कर राख हो जाये। ये हमारी व्यंग्य लंका ही हमारे लिए स्वर्ण लंका है। हम इस पर अपना दावा हर्गिज नहीं छोड़ सकते चाहे जितने बंधु -बांधव से नाराजगी हो जाये। बस हमारे प्यारे प्रकाशक नाराज नहीं होने चाहिये। तूने किसी प्रकाशक को नाराज तो नहीं किया ना बहना "।

लेडी सांबा सुबकते हुए बोली –

"मेरी असली नाक तो सलामत है लेकिन मन की नाक कट गयी समझो। हर युग में लक्ष्मण नहीं आते नाक काटने लेकिन क़लजुग में भी सूर्पनखा की नाक कटती ही रहती है। इस बार मुझे चार -पांच महिलाओं को आने वाली व्यंग्य की किताब से निकलवाना है। उन लोगों को मैं ही लायी थी लेकिन अब वे सब मुझे ही भाव नहीं देती हैं। और कहीं तो छप नहीं पातीं अब यहां से भी निकाल दी जाएंगी तब पता चलेगा। तो समझो भैया मेरी नाक सलामत रखनी है, वरना वो पांचो लेडीज मुझे ताना देंगी, मेरा उपहास करेंगी। और मेरी बेइज्जती हुई तो मैं खुद को सूर्पनखा ही समझूँगी "

ये कहते हुए लेडी सांबा ने सुबकते हुए उन पांच नामों की लिस्ट बढ़ा दी।

मोटू और पतलू ने लिस्ट को चेक किया। वो पांच लेखिकाएं उन पचास की लिस्ट में शामिल थीं जो वफादार व्यंग्य बाराती थे।

मोटू ने कहा –

"बमुश्किल हमने पचास वफादारों की लिस्ट तैयार की है जो हमारे गाजर -मूली लेखन पर भी कसीदे गढ़ते आये हैं। ये तुम्हारी नहीं मगर हमारी वफादार रही हैं। ये और बात है बहना कि तुम्हारी मन की नाक भी तो बचानी है। लेकिन ये भी सोचो कि इनको हटाएंगे तो नारी शक्ति सन्तुलन बिगड़ जायेगा हमारी टीम से। बड़ा धर्मसंकट है " ये कहकर मोटू ने चिंतातुर होकर गहरी सांस छोड़ी।

अपना काम बिगड़ता देखकर लेडी सांबा ने फिर सुबकना शुरू कर दिया।

इस इमोशनल अत्याचार से आज़िज होकर पतलू ने कहा –

"इनको हटाएंगे तो ऐसे पांच कहाँ से लाएंगे, तुमने विकल्प का कुछ इंतजाम किया है "?

सुबकना बंद करते हुए लेडी सांबा ने लिस्ट बढ़ा दी जिसमें पांच नए नाम थे।

मोटू -पतलू दोनों ने लिस्ट देखी और एक साथ पूछा –

"इन्होंने कभी व्यंग्य लिखा है क्या। हमने तो इनका नाम नहीं सुना कभी। कैसे मैनेज होगा सब "?

"पहली बात तो ये हैं कि इन पांचों की वफादारी पांडवों की तरह है। दूसरी बात ये है कि इन लोगों ने लिखना शुरू किया है, धीरे -धीरे व्यंग्य लिखना भी सीख ही जाएंगी। इसी तरह सब मैनेज हो जायेगा। वैसे भी हमारे पिछले व्यंग्य संग्रह में कितने ही लेखक -लेखिकाएं ऐसे थे जो कि बिना एक भी ढंग का व्यंग्य लिखे ही ....."।

"श, श, श " की आवाज निकालते हुए होंठो पर उंगली रखते हुए चुप रहने का इशारा करते हुए पतलू ने कहा –

"चुप कर बहना, इतनी पोल मत खोल। तेरी नाक कटने से हमने बचा लिया तुझे लेकिन तू ऐसे बोलेगी और कोई सुन लेगा तो व्यंग्य बिरादरी में वैसे भी हमारी कोई इज्जत नहीं है, नौकरी के बलबूते पर जो हमारी रही -सही नाक अब तक बची हुई है वो भी जरूर कट जाएगी"।

पतलू की इस हरकत पर लेडी सांबा हँस पड़ी। उसे हँसता देखकर मोटू -पतलू भी हंसने लगे।

नेपथ्य में कहीं एक गीत बज रहा था –

"ये दोस्ती हम नहीं तोड़ेंगे"।

इस गीत पर लेडी सांबा तर्ज बनाते हुए मन ही मन गुनगुना रही थी

"और व्यंग्य का दिवाला निकालकर छोड़ेंगे।

ग्रीष्म

टपक रहा है ताप सूर्य का, धरती आग उगलती है।
लपट फैंकती हवा मचलती, तलई तप्त उबलती है।।

दिन मे आँच रात में अधबुझ, दोपहरी अंगारों सी।
अर्द्ध रात अगियारी जैसी, सुबह शाम अखबारों सी।।

सिगड़ी जैसा दहक रहा घर, देहरी धू धू जलती है।
गरमी फैंक रही है गरमी, तपती सड़क पिघलती है।।

सीना सिकुड़ गया नदियों का, नहरें नंगीं खड़ीं दिखीं।
कुए बावड़ी हुए बावरे, झीलें बेसुध पड़ीं दिखीं।।

तपन घुटन में हौकन ज्वाला, बाग बाग में लगी हुई।
बदली बनकर बरस रही है, आग आग में लगी हुई।।

जीभ निकाले श्वान हाँफते, बेबस व्याकुल लगते हैं।
जीव जन्तु प्यासे पशु पक्षी, जग के आकुल लगते हैं।।

हरे खेत हो गए मरुस्थल, पर्वत रेगिस्तान हुए।
सारे विटप बिना छाया के, जलते हुए मकान हुए।।

एसी कूलर अंखे पंखे, डुलें वीजने नरमी से।
बिगड़ रहे हैं सुधर रहे हैं, जूझ रहे हैं गरमी से।।

जिनके सुधरे एसी फ्रीजर, कूलर पानी आता है।
उनके घर में जेठ मास में, जड़काला आ जाता है।।

इस पर भी यदि बिजली माता, चली गईं तो मरना है।
धार लगाकर चुए पसीना तन बन जाता झरना है।।

आस पास के बोरिंग सूखे, सरकारी नल चले गए।
लम्बी लगी कतार अन्त में, नहीं मिला जल छले गए।।

करवट बदल रहा है मौसम, मन सूना पनघट क्यों है।
चलो चलें गर्मी में देखें, मरघट पर जमघट क्यों है।।

मन बेचैन हृदय घायल सा, उठा बैठ में अड़चन है।
साँस खंजरी सी बजती है, धक धक करती धड़कन है।।

जीने मरने की नौबत है, प्यासों की अकुलाहट है।
घर भर है हलकान सुबह से, मौसम में गरमाहट है।।

खौल रहा है पेट "प्राण" का, शरबत चाहत करता है।
मगर सुगर हो गयी घूँट भी, तन को आहत करता है।।

जय हो धरमी ताई की, जय हो करमी भाई की।
जय बेशरमी बाई की भी, जय हो गरमी माई की।।

गिरेन्द्रसिंह भदौरिया "प्राण"

जिजीविषा

दम तोड़ती है रौशनी जब अँधेरे की दहलीज पर।
हजारों सपने झड़ जाते हैं उम्मीद की आँखों से।।

एक हसरत औनाती है धुआँ बनकर।
आत्मा के अंध कूप में।।

सूख कर रेत हो जाती हैं अनंत में बहती हुई नदियाँ।
कल्पना के अंतरिक्ष-लोक में पड़ जाता है सूखा।।

आसमान में उड़ते ही आबाबील के बच्चे।
समा जाते हैं काल के गाल में।।

वक्त को अपनी मुट्ठी में कैद कर जब हँसते हैं दुनियावी प्रेत।
सिसकती है अपनी धुरी पर घिसटती हुई एक पूरी सदी।।

एक अदृश्य उत्तेजना से टूट कर गिरे हुए उल्का पिण्ड।
बुझ जाते हैं रौशनी की एक छोटी सी लकीर खींच कर।।

यही क्या कम है अनगिन ज्वाला में जल कर।
अँखुआती है फिर भी जिन्दगी वक्त के सख्त पत्थर को तोड़कर।।

खिलते हैं हजारों फूल अगली बारिश में।
एक पूरा जंगल के जलने के बाद भी।

संजय कुमार सिंह, प्रिंसिपल,
पूर्णिया महिला कालेज

घोंसला

फिर एक बनाएं नया घोंसला
चल री चिड़िया चल उस पार

बस हम तुम दोनों ही होंगे
छोटा सा अपना परिवार।
फिर एक बनाएँ नया घोसला
चल री चिड़िया चल उस पार।

अपने आकर आन बसे थे
तुमने बांटा प्यार अपार
लूट-लूट सब तिनके ले गये
पचा ना पाये तेरा प्यार।

फिर एक बनाएँ नया घोसला
चल री चिड़िया चल उस पार।

अपनों पर विश्वास था अपना
छोटा प्यारा सुंदर सपना
पल-पल विष घोला, आग लगाई
फिर से जीता अत्याचार।

फिर एक बनाएँ नया घोसला
चल री चिड़िया चल उस पार।

नकली अपने हमको ढूँढेंगे
कहाँ गये सबसे पूछेंगे
खोज खोज आएँ भी गर तो
नहीं भरोसा अबकी बार।

फिर एक बनाएँ नया घोसला
चल री चिड़िया चल उस पार।

प्रभु नही कोई अपने देना
बस कुछ छोटे सपने देना
उनको ही पूरा कर पाऊं
स्नेह तुम्हारा मिले अपार।

फिर एक बनाएँ नया घोसला
चल री चिड़िया चल उस पार।
चल री चिड़िया चल उस पार।

अनिल कुमार मिश्र,
रांची, झारखंड

असमंजस

व्हा

टसअप खोलते ही एक मैसेज दिखाई दिया- आई लव यू....

ये सुबह-सुबह किसको मुझ जैसे खड़ूस आदमी पर प्यार आने लगा। तभी भेजने वाले के नाम पर नजर पड़ी। यह संदेश किसी और ने नहीं बल्कि 42 वर्षिया मेरी धर्मपत्नी का था। मैं हैरान परेशान..... आज तक तो ऐसा हुआ नहीं। तुरंत उसे फोन लगाया।

ये क्या मैसेज भेजा है तुमने? आई लव यू किसी और को बोल रही थी क्या, जो गलती से मेरे पास चला आया?

उसने कहा, " अरे बाबा आप ही के लिए था।

मैं पूरी तरह असमंजस की स्थिति में था। बोला, " देखो यार ऐसे मैसेज मत भेजा करो। मैं डर जाता हूँ।

उसने पूछा, " डर किस बात का?

मैने कहा, " बेमौसम, बेमेल और बेवक्त प्यार का डर।

उसने कहा, " क्या अपना प्यार दिखा नहीं सकती?

मैने कहा, " नहीं! तुम प्यार सिर्फ़ कर सकती हो, दिखा नहीं सकती। तुम मेरी पत्नी हो। दिखाने का हक सिर्फ प्रेमिकाओं को है। मुझे असमंजस में मत डालो।

दीपक कुमार

तीन टाँग का कुत्ता

टॉमी की टाँग पर प्लास्टर चढ़ाने के बाद कुत्तों के एक मात्र डॉक्टर लखटकिया बोले, 'बत्रा साहब, फ़िकर नईं, पंद्रह दिन तक यह तीन टांग से चलेगा। फिर धीरे-धीरे चौथी पर जोर लगाएगा।'

बत्रा ने चिंता जाहिर की, 'और चौथी, ठीक तो हो जाएगी न? पहले की तरह यह जम्प मार सकेगा न?'

डॉक्टर लखटकिया, कभी प्लास्टर चढ़ाए कुत्ते को, कभी बत्रा को देखते रहे। उत्तर में कुछ नहीं बोले, देखने में कुछ कमी रह गई थी शायद, चश्मा उतार कर टेबल में रखे और नौकर को आवाज लगाए, 'हरचरन।'

'जी साहब!'

'ले भई, चश्मा धो के ला।'

बत्रा को लगा कि डॉक्टर साहब ऊँचा सुनते

रामानुज अनुज

हैं, इसलिए इस बार वे ऊँचा बोले, 'मैंने पूछा

वाक्य पूरा करने से पहले डॉक्टर साहब बोल पड़े, 'चिल्लाते क्यों हो आप? बहरा नहीं हूँ, आपने जो पूछा है, सुना हूँ। चश्मा आ जाए फिर बताता हूँ।'

चश्मा धुलकर आ गया, हरचरन बताने लगा, 'बहुत गंदा था साब! लगता है जब से आँख में चढ़ा है; पानी का मुँह नहीं देखा था। पूरा डोलची का पानी मटमैला कर दिया।'

खीजते हुए डॉक्टर लखटकिया, 'चल बाहर बैठ और जब तक कहा न जाए कविता-किस्सा न सुनाया कर।'

चश्मा को मुलायम कपड़े से पडॉक्टर साहब, पहले तीन बार पोंछे फिर आँखों में चिपका के बोले, 'नहीं, एकदम से ऐसा नहीं हो सकता, अभी-अभी प्लास्टर चढ़ाकर रीता हूँ, पंद्रह दिन बाद मैं प्लास्टर उतारकर चेक करूँगा,अनुमान लगाकर बोलना मेरी आदत में नहीं है।'

'मतलब, केस गम्भीर है?'

'कोई भी केस हो, गम्भीर होता है। हम डॉक्टर लोग उस गम्भीरता को दवा-इलाज से सिर्फ कम कर देते हैं। फिर टाँग का मामला है। फर्ज कीजिए अगर आपके टाँग की हड्डी टूट जाए तो ठीक होने में कितना समय लेगी?'

डॉक्टर बत्रा हकलाकर रह गए, पैर चेक करने लगे। सही सलामत टाँग पाकर विनम्रतापूर्वक बोले, 'सर! मुझे चिंता है, यदि चौथी टाँग ठीक न हुई तो यह दौड़ेगा कैसे? बिल्लू की बॉल दौड़कर कैसे लाएगा?'

'साहब, यह कुत्ता है, आदमी नहीं है कि एक टाँग टूटने पर बिस्तर पर चित लेट जाए। यह कुत्ता है, संतोषी जीव है, इसके लिए तीन टाँग बहुत हैं, देखिए न कैसे मुस्कुराते हुए दुम हिला रहा है। यह तीन टाँग से ही बिल्लू की बॉल दौड़कर लाएगा। फिर कुत्ते का काम सिर्फ भोंकना है, चोर पकड़ना नहीं। यह काम पुलिस का है। यदि यह बिल्लू की बात मुँह में दबाकर वापस लाता है, और ऐसा करने के लिए आप इस पर दवाब बनाते हैं, तो जान लीजिए जानवर कानून के अनुसार यह अपराध है।' चश्मे की डंडी से कान खुजलाते हुए डॉक्टर लखटकिया कहे।

डॉक्टर लखटकिया कस्बे में अकेले कुत्तों के डॉक्टर हैं। 'निगाही' कुछ महीना पहले ही गाँव से कस्बे में प्रमोट हुआ है। यह सरकार की गलती है, उसे देखना चाहिए कि यहाँ के आदमी कस्बाई कहलाने के काबिल भी हैं या नहीं। वह अस्पताल खोल देती है, डॉक्टर बाद में आते हैं, थाना खोल देती है, थानेदार साल भर बाद आते हैं, बैंक खोल देती है, मैनेजर का पता नहीं होता है। यह जो गले में तख्ती लटकाने की आदत है, बेहद खतरनाक है। शहर में हर शहरी के पास कुत्ता होता है, बिना कुत्ता के वह अधूरा आदमी है। उस अनुपात में डॉक्टर भी हैं। डॉक्टर लखटकिया का निगाही आना फायदे का फैसला नहीं था। दो हफ्ते से वे खिड़की के रास्ते बाहर झख मारते रहे, कोई कुत्ता पेशेंट नहीं आया। आज आया भी तो तीन टाँग का आया। और उसका मालिक बत्रा, ये वास्तव में कुत्ता होने के काबिल है और कुत्ता आदमी होने की योग्यता रखता है। इसे यह भी पता नहीं है कि हड्डियों के जुड़ने में समय लगता है।

डॉक्टर साहब को विचारमग्न देखकर बत्रा ने टोंका, 'किस सोच के चक्कर में फँस गए साहब?'

डॉक्टर लखटकिया जैसे नींद से उठे हो, चौंकते हुए बोले, 'कु-कुच्छ नहीं, आप फीस जमाकर दें।'

'फीस?'

'तेरह सौ बनती है। तीन सौ मेरी और हजार रुपए प्लास्टर का।'

'ताज्जुब है, इतने पैसे में तो दो लोगों की टांग पर प्लास्टर चढ़ाया जा सकता है। ठीक है, यह चार पैर से चलने लगे तब एक मुश्त भर दूँगा।'

'कुछ तो देते जाइए। शुभ के वास्ते सही, अभी-अभी क्लीनिक खोला हूँ।'

'ये लीजिए साहब, आप नहीं मान रहे हैं तो---' पचास का नोट टेबल पर तुरुप के एक्का की तरह फेंकते हुए बत्रा बोले।

'ये क्या?'

'अधिक मेरे पास नहीं है, अभी कुत्ते की दवाई लेनी है, कार में पेट्रोल भी भरवाना है।'

तीन टाँग के कुत्ते की चैन पकड़कर खड़ी कार की तरफ बत्रा चल पड़े। डॉक्टर लखटकिया दुखी मन से टेबल पर पड़े नोट को देखते कभी कार की तरफ बढ़ते हुए बत्रा और तिनटँगिया मनहूस कुत्ते को। तभी हरचरन आया और टेबल पर पानी भरी बोतल पटककर कर जाने लगा तब डॉक्टर साहब का गुस्सा उस पर फूट पड़ा। वे चीखते हुए बोले, 'हटाओ बोतल यहाँ से।'

बेचारा हरचरन, चुपचाप बोतल उठाकर जाने लगा तब डॉक्टर साहब का मन मुलायम पड़ा, वे उसे मनाने लगे, 'सॉरी, कुत्तों का डॉक्टर हूँ न, इसलिए कभी-कभी कुत्तागीरी हो जाती है। उस समय यह भी नहीं देखता हूँ कि सामने कौन खड़ा है?'

रुआँसा हुआ हरचरन बोला, 'कोई बात नहीं साहब, अपुन की चमड़ी ही ऐसी है, जूता पड़े या जूते की धूल, रंग नहीं बदलती है।'

'अगेन-अगेन सॉरी भाई, तुम्हारे दिल को जोर का धक्का लगा है। मैं डिग्री को प्रोग्रेसिव बनाने की सोच रहा है। तब पचास की जगह पाँच हजार मिलेगें, तुम्हारी तनख्वाह भी जस्ट डबल।'

'समझा नहीं साहब।'

'सीधी से बात है, अब मैं कुत्ते का इलाज नहीं करूँगा, अब मैं उन आदमियों का इलाज करूँगा, जिन्हें कुत्ते ने काटा होगा। नेम प्लेट नई बनवाने का फौरन ऑर्डर करो, उसमें जरा तिरछे अक्षर में स्टाइल से लिखवाना, डॉक्टर एल.एल. लखटकिया---फिर नीचे मझले कोष्टक में 'कुत्ता काटे व्यक्ति का गारंटिहा इलाज यहाँ होता है।'

हरचरन ने सुझाव प्रस्तुत किया, 'गारंटिहा की जगह यदि शर्तिया लिखवा दें तो?'

'तो क्या, दोनो में खास फर्क नहीं, शर्तिया शब्द जबसे गुप्त रोग वाले इस्तेमाल करने लगे हैं तबसे इसका महत्व नहीं रह गया है। मैंने नया शब्द ईजाद किया है, इसे बदला नहीं जा सकता।'

हरचरन, नई नेम प्लेट बनवाने के लिए साइकल में चढ़कर बाजार तरफ चला गया। डॉक्टर साहब नई सोच के प्रकट होने की खुशी में सिर झटकते हुए इधर-उधर टहलने लगे थे। उनके दोनो हाथ पैंट की जेब में थे।

□□□□□

समीक्षा के लिए पुस्तक अनिवार्यतः भेजें :

संपर्क भाषा भारती, 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर विस्तार, नई दिल्ली-110092

झूठी शान में निष्ठुर बनता समाज!

सोनम लववंशी

पिछले दिनों हमारे समाज में दो ऐसी घटनाएं घटित हुई। जिसने आधुनिक होते समाज की कलई खोलकर रख दी। पहली घटना देश के दिल कहलाने वाले मध्यप्रदेश की संस्कारधानी जबलपुर की है। जहां एक हिंदू लड़की ने मुस्लिम लड़के से परिवार के विरुद्ध जाकर शादी की तो घरवालों ने लड़की का माँ नर्मदा नदी के तट पर पिंडदान कर दिया। दूसरी घटना राजस्थान के रतनपुरा में घटी। यहां एक युवती ने अपने ही समाज के एक युवक से भागकर शादी कर ली। तो परिजनों ने आन, बान और शान में पहले तो बेटी की मृत्यु का शोक पत्र छपवाया और फिर मृत्यु भोज करवाकर जीवित बेटी का 12 दिन का शोक मनाया। ये हाल में घटित हुई दो घटनाएं भले हैं, लेकिन हमारे समाज को आईना दिखाने के लिए काफी हैं। ऐसी घटनाएं कोई पहली और आख़िरी नहीं हैं और हम कितना भी आधुनिक होने का दम्भ भर लें। हमारा खान-पान, रहन-सहन और पहनावा कितना भी आधुनिक क्यों ना हो? लेकिन ये आधुनिक होते समाज की सच्चाई है कि प्रेम जैसे मुद्दे पर हमारा समाज आज भी दकियानूसी सोच रखता है।

एक बार मृत्यु हो जाने के बाद व्यक्ति को इस बात का भान नहीं होता कि उसके साथ क्या और कैसे हो रहा? उसके अपने उसके साथ क्या सलूक कर रहे, लेकिन जीते-जी अपनी मौत का आभास अपने लोग ही कराएं तो यह सभ्यता और संस्कृति पर सवालिया निशान खड़े कर रहा है। प्रेम निश्छल होता है। वह तो मात्र एक भाव है, जो किसी के प्रति उमड़ सकता है, लेकिन झूठी शान की ख़ातिर जीते-जी पिंडदान या मौत के घाट उतार देना एक आधुनिक समाज की निशानी कतई नहीं हो सकती है।

किसी लड़की के समाज से इतर जाकर प्रेम करने पर लड़की को मार देना या उसका जीते-जी पिंडदान कर देना। एक खोखले और मूल्यविहीन होते समाज की पहचान है, क्योंकि यह वही समाज है। जहां लड़कों के लिए अक़्सर यह कहते हुए देखा जाता है कि कोई लड़की पसंद आए तो उसे भगा ले जाना या ज़्यादा हुआ तो लड़की के परिजनों को देख लेंगे। अब ऐसे दोयम दर्जे की सोच वाले समाज को देखकर सहसा यही प्रश्न उठता है कि आख़िर सारे आदिम संस्कार और मर्यादाएं महिलाओं के हिस्से में ही क्यों लिख दी जाती हैं? स्त्री समाज ने हमेशा से कुछ न कुछ त्याग और बलिदान दिया है और अगर इक्कीसवीं सदी में भी उसे अपना जीवनसाथी चुनने और प्रेम करने का अधिकार नहीं। फ़िर हम सच पूछिए तो किसी बर्बर युग में ही जी रहे हैं। इसे मानने और समझने में संकोच नहीं करना चाहिए।

परम्पराओं, रीति-रिवाजों और मान के अभिमान में आखिर कब तक महिलाओं-बेटियों का गला दबाया जाता रहेगा? कब तक वो प्रेम करने की सजा पिंडदान के रूप में भुगतती रहेंगी? संविधान गरिमामय जीवन जीने की स्वतंत्रता हर एक नागरिक को देता है और एक निश्चित उम्र के बाद कोई भी अपना स्वतंत्र फैसला ले सकता है। फ़िर किसी से शादी कर लेने मात्र से किसी बहन-बेटी की हत्या कर देना या जीते- जी मृत घोषित कर देना कहीं न कहीं संवैधानिक अधिकारों का हनन है। झूठी शान हेतु की गई हत्या या जीवित को मृत घोषित कर देना भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों के हनन के अंतर्गत आता है। अनुच्छेद-21 जीवित और मृत दोनों परिस्थितियों में व्यक्तियों के मूलभूत अधिकारों की बात करता है। ऐसे में हमारा समाज कहीं न कहीं झूठी शान में इसे भी चुनौती देने का काम कर रहा है।

संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार प्रतिवर्ष मान हत्या से संबंधित 5000 मामले अंतरराष्ट्रीय स्तर पर दर्ज किये जाते हैं। जिनमें से तकरीबन 1000 मान हत्या के मामले भारत से जुड़े होते हैं। ये आंकड़े पहली दृष्टि में कम हो सकते हैं, लेकिन इसमें अधिकतर शिकार होने वाली महिलाएं यानी किसी की बहन-बेटी ही होती है। इतना ही नहीं एक अध्ययन के मुताबिक मान-हत्या में ऐसे अपराधी भी शामिल होते हैं। जो उच्च शिक्षित विश्वविद्यालयी स्नातक होते हैं। विभिन्न सर्वेक्षणों के अनुसार 60 प्रतिशत मान हत्या के अपराधी या तो हाईस्कूल शिक्षित हैं या विश्वविद्यालयी स्नातक है। ऐसे में एक बात तो तय है कि सिर्फ़ किताबी ज्ञान एक सभ्य और तर्कसंगत व्यक्ति पैदा नहीं कर सकती है। इसके लिए धर्म के मर्म और मानवीयता के मूल्यों को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। साथ ही झूठी शान और मान से बहन-बेटियों को बचाने के लिए कठोर क़ानूनी प्रावधान और रूढ़िवादी विचारों को तिलांजलि देने की आवश्यकता है। समाज को यह समझना होगा कि जो बात एक लड़के पर लागू हो सकती है। वही एक लड़की के लिए भी होना चाहिए। लड़का अगर दूसरी जाति में विवाह कर सकता है तो लड़की को वह अधिकार आख़िर क्यों नहीं हो? आख़िर जो लड़का दूसरे जाति-धर्म या समाज की लड़की से शादी कर रहा। वह भी तो किसी की बेटी ही है। फिर एक ही समाज में दो मानदंड कैसे स्वीकृति पा सकते हैं?

प्रेम की भाषा को जानता कवि : प्रवीण कुमार

समीक्षा के लिए पुस्तक अनिवार्यत: भेजें : संपर्क भाषा भारती, 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर विस्तार, नई दिल्ली-110092

नीरज कुमार मिश्र

हिंदी साहित्य की अनेक विधाओं की समृद्धि के लिए अनेक रचनाकार बिना शोर-शराबे के रचनाकर्म में रत हैं। प्रवीण कुमार ऐसे ही कवि,कहानीकार,समीक्षक और आलोचक हैं, जो वकालत के पेशे में होते हुए भी लगातार साहित्यिक कर्म में लगे हुए हैं।उनका मानना है कि रचनाकार या कलाकार को अपने विचारों या भावों को एक आम आदमी की तरह सीधे-सीधे अभिव्यक्त करने की बजाय अपनी रचना या कला के माध्यम से अभिव्यक्त करना चाहिए। इनका यह कथन इस बात का घोतक है कि कोई भी अच्छी रचना, कला के रास्ते से होती हुई सामाजिक सरोकारों से जुड़ती है।इसी से उस रचनाकार और उसकी रचना की महत्ता का भान होता है।कवि प्रवीण कुमार की अन्य विधात्मक पुस्तकों के साथ अब तक दो कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। "नियंता नहीं हो तुम" इनका तीसरा कविता संग्रह है।

इस संग्रह की एक कविता के शीर्षक को संग्रह का नाम दिया गया है।इस कविता में कवि ने तथाकथित विकास की चकाचौध में लगातार भाग रहे और मदांध व्यक्ति के चरित्र का बख़ूबी रेखांकन किया है।आज भूमंडलीकरण के इस दौर में हम अपने को ही नियंता मानने लगे हैं।उनकी शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए-

" कुदरत की हर संरचना

हर जीव पर चाहा उसने

अपना आधिपत्य

मदांध मनुष्य

समझने लगा

स्वयं को नियंता।"

समाज का ऐसा ही एक तबका अपने फायदे के लिए लगातार समाज से दूर होता जा रहा है।समाज का ऐसा व्यक्ति चरित्र अपने को सब कुछ समझने लगता है और वह ईश्वर को भी नहीं जानना चाहता।ऐसे लोग अपनी सुविधानुसार ही ईश्वर को जानना चाहते हैं। यह कवि इस बात की तरफ इशारा करता है कि आने वाले समय के बारे में जब ईश्वर ही ठीक से नहीं जानता,तो उसकी संतान भला क्या जानेंगी।इस संग्रह की कविता " ईश्वर भी नहीं जानता" ईश्वर के कथन के माध्यम से इसी बात की तरफ इशारा कर रही है-

"समय हूँ मैं

सर्वशक्तिमान

सतत प्रवाहमान

इस जगत का नियंता

सब कुछ है मेरे आधीन

मानव है थोड़ा बुद्धिमान

अपनी सुविधा के लिए

वह मानता है मुझे।"

इस कवि ने अपने रोजमर्रा की दिनचर्या के दौरान आसपास के परिवेश में जो देखा, उसे अपनी कविताओं का विषय बनाकर अपने हृदय की भावभूमि में पगाया और उन पगी कविताओं को इस संग्रह का रूप दिया।यही

वजह है कि इस संग्रह की कविताओं में आपको अपने आसपास के परिवेश की सूक्ष्म पड़ताल देखने को मिल जायेगी।इस संग्रह की कविताओं में समाज की विविध छवियाँ और उनके प्रयोग-अनुप्रयोग खूब देखने को मिलेंगे।एक तरफ जहाँ इस संग्रह में आपको मुश्किल क्षणों में भी हँसता हुआ सेमल का वृक्ष मिल जायेगा, कवि के मन में उपजी नई सुबह और हेमंत के स्वागत की चाह मिल जायेगी,उस स्वागत की चाह से निकला वसंत राग आपको सुनाई देगा,खराब समय में बद अच्छा बदनाम बुरा का न रुकने वाला सिलसिला आपको देखने को मिल जायेगा,तो दूसरी तरफ़ इस कवि ने 'हाई राइज सोसायटी','नेम प्लेट','धूल','सफेद बगुला','छीजे हुए मेहमान','मोहनी अवतार' आदि अनेक कविताओं में कवि ने व्यंग्यात्मक शैली में खरी खरी बात को बहुत रोचक ढंग से कहने की कोशिश की है।इस कोशिश का ही प्रतिफलन है कि इस संग्रह की कविताएँ पाठक से संवाद करती हुई सामाजिक जीवन और उसकी स्थितियों को सबके सामने लाती हैं।समाज की अनमोल स्मृतियों को बचाने की चाह रखने वाला कवि अपनी परंपरा और संस्कृति से कितना प्रेम करता है,यह इस संग्रह में संकलित कविताओं में व्यंजित भावों से पता चलता है।लेकिन स्मृतियों का बोझ उठाना एक अलग चीज है और उसको जीवन में सजीवता के साथ लाना दूसरी चीज़।

मनुष्य की मानसिकता से ही किसी व्यक्ति की आंतरिक दृष्टि का सही से विकास होता है।और वह व्यक्ति इसी आंतरिक दृष्टि से पूरे संसार को देखता है।गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में इस बात को रेखांकित किया है कि 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।' यही वह भाव है जो दृश्य और दृष्टा के बीच के अंतर को मिटा देता है।इस संग्रह की कविता " दृश्य और दृष्टा " में इसी अंतर को देखा जा सकता है-

" एक किसान

जो हर रोज जाता है

अपने खेत पर

करता है जुताई,निराई-गुड़ाई

रोपता है बीज

सींचता है उन्हें

अपने श्रम-जल से

उसका अपनी दृष्टि से फसल को देखना

एक वनस्पति शास्त्री

जिसने किया है वर्षों अध्ययन

जाना है वनस्पतियों का

दृश्य-अदृश्य वृहत्त संसार

उसका अपनी दृष्टि से फसल को देखना

या एक व्यापारी

जो कुछ ही मिनटों में

भाँप लेता है

खेत में खड़ी फसल की कीमत

उसका अपनी दृष्टि से फसल को देखना।"

कवि प्रवीण कुमार साहित्य की किसी विचारधारा या वाद से बद्ध कवि नहीं हैं।यही वजह है कि वह किसी ख़ेमेबाजी और विवादों से दूर रहते हैं।फिर भी इनकी कविताओं में समाज में घटित घटनाओं का यथार्थपरक विश्लेषण किया गया है।आम जनता को लगातार सपने दिखाकर बरगलाया जा रहा है।हर तरफ उन पर शोषण जारी है।ऐसे में प्रवीण कुमार जैसा सजग और संवेदनशील कवि बगावत पर उतर आता है।इस संग्रह की कविता "बगावत" समाज की हर उस व्यवस्था को उखाड़ फेंकने का आह्वान करती है,जो शोषणतंत्र में भागीदार है-

" मेरी बगावत नहीं है

सिर्फ राजसत्ता के खिलाफ़

मैं उखाड़ कर फेंक देना चाहता हूँ

ऐसी किसी भी व्यवस्था को

जो धर्म,अर्थ,शिक्षा

या चिकित्सा के नाम पर

चूस लेती है आदमी का खून।"

तभी इस संग्रह में आपको मार्क्स का 'दास कैपिटल', टालस्टाय का 'वार एंड पीस','चाणक्य का 'अर्थशास्त्र',गाँधी का 'हिंदी स्वराज' और साथ ही ईश्वर के मरने वाली नीत्शे की घोषणा अपनी व्यंजनात्मक के साथ उपस्थित है।मध्यकाल में समाज के केंद्र में ईश्वर था,उत्तर आधुनिक युग में ईश्वर के मरने की यह घोषणा इस बात का प्रतीक है कि मनुष्य आत्मनिर्भर बन गया है।उसे खुद पर विश्वास हो गया है।धर्म की जगह कर्म की महत्ता बढ़ गई है।एक अच्छे कवि और उसकी कविता का काम

केवल मनुष्य के सौंदर्य और संवेदना का विश्लेषण करना ही नहीं होता,बल्कि इनका विस्तार करना भी मुख्य काम होता है। इस काम को इस कवि ने बखूबी निभाया है।

आधुनिक युग में भागमभाग और शोरगुल वाले शहरों में पूंजीवाद ने एक तरफ पसरे सन्नाटे को भी पैदा किया।इस सन्नाटे से उपजी शून्यता,अकेलापन,उपेक्षा और सामाजिक-पारिवारिक रिक्तता आज हर तरफ फैली है।एक कवि मनुष्य के अंदर के इस सन्नाटे से पैदा हुई टीस को बखूबी पहचानता है। इस संग्रह की कविता 'इन दिनों' और 'वसुधैव कुटुम्बकम' इसी टीस को बहुत यथार्थवादी नजरिए से सामने लाती हैं।आज बाजारवाद के इस दौर में हर तरफ दुकानें ही दुकानें नज़र आने लगीं हैं।बाजार का दख़ल अब गाँवों में भी हो गया है।आज समूचा समाज बाज़ार में तब्दील हो गया है।इस संग्रह की कविता "दुकान" समाज के बाज़ार में तब्दील होने की गाथा सुनाती है-

" धर्म,राजनीति, समाज सेवा

पत्रकारिता की मौजूद हैं अनगिनत दुकान

कला कृतियों से सजी

कला की दुकान

सौंदर्य हो या सौंदर्यबोध

साहित्य हो या साधना

प्रेम हो या दोस्ती

हर चीज की कीमत तय है।"

इस बाज़ारवाद की ही असर है कि आज मनुष्य की मनुष्यता मर गई है।मनुष्य की मनुष्यता के मरने के साथ ही वह मनुष्य मर ही जाता है।कोरोनाकाल में हमने मनुष्यता को तार-तार होते देखा है।उस समय हमारे देश के लोकतंत्र का हर स्तंभ बहुत लाचार दिखाई देता है।इस संग्रह में कोरोनाकाल की विभीषिका के अनेक चित्र आपको पूरी सजीवता के साथ मिल जायेंगे।और साथ ही भरभराता लोकतंत्र अपनी पूरी विडंबना के साथ इस संग्रह में उपस्थित दिखाई देगा।यह कवि मनुष्य के अंदर की बची हुई मनुष्यता और भरभराते लोकतंत्र को बचाये रखने की जद्दोजहद में लगा है।इस संग्रह की कविताएँ इसकी गवाही देती आपको नज़र आयेंगी।

इस संग्रह में प्रेम पर केंद्रित अनेक कविताएँ हैं।इन कविताओं के माध्यम से प्रेम के अनेक शेड्स आपको देखने को मिल जायेंगे।प्रेम में अहम का विसर्जन बहुत जरूरी है।इस संग्रह की कविता "अबूझ पहेली जैसा है प्रेम" को पढ़कर आपको कबीर,मीरा,बोधा, घनानंद,रहीम,बिहारी,मुक्तिबोध और अज्ञेय आदि कवियों की प्रेम पर लिखी कविताएँ तुरंत जेहन में आ जायेंगी। प्रेम पर इतनी सच्चाई के साथ वही व्यक्ति लिख सकता है,जिसने उस प्रेम को जिया हो। इस संग्रह की प्रेम कविताएँ यह बताती हैं कि कवि प्रवीण कुमार प्रेम की अनुभूति के कवि हैं।इन्होंने इस अनुभूति को कबीर की तरह भोगा है।इस संग्रह की प्रेम विषयक कविताएँ उसी प्रेम की अनुभूति से उपजी हैं।जायसी ने सही कहा था कि मानुष प्रेम भयो बैकुंठी।

आज कवियों की सबसे बड़ी विडंबना है कि उनकी कविताओं में उनका कवि ज्यादा बोलता है कविता कम बोलती है।ऐसे कवि की कविताओं में वक्तव्यबाजी कविता में हावी हो जाती है।तब कविता, कविता नहीं रह जाती,बल्कि वक्तव्य का पुलिंदा बन जाती है।जबकि होना यह चाहिए कि उसकी कविता ज्यादा बोले और कवि शान्त रहे। बड़े कवि की विशेषता है कि वह कविता को स्वतंत्र रखते हैं। किसी कवि का काम कविता में शब्दों के प्रयोग करने से ज्यादा जरूरी है उन शब्दों में निहित अर्थ की संभावनाओं का विस्तार करना।क्योंकि अच्छा कवि शब्दों और उसके अर्थ के बीच के मौन की अभिव्यंजना की सहायता से अच्छी कविता रचता है।अज्ञेय के शब्दों में कहूँ तो कविता शब्दों में नहीं होती-कविता शब्दों के बीच की नीरवताओं में होती है। इसीलिए अज्ञेय मौन को भी अभिव्यक्ति का साधन मानते हैं।इस तरह हम कह सकते हैं कि कविता भाषा में नहीं होती है,कविता शब्दों में भी नहीं है।सही मायने में कविता शब्दों के बीच के शब्दहीन अंतराल में होती है।जिसमें जीवन की समूची विडंबना को उकेरते हुए कुछ अनसुलझे सवाल पाठकों के सामने आते हैं।इन शब्दों के बीच की नीरवता या मौन की सार्थकता पाठक पर निर्भर करती है।ऐसे समय में पाठक की सृजनात्मक सक्रियता बहुत जरूरी है। कवि और उसकी कविताओं के लिए सृजनात्मक कल्पना से परिपूर्ण पाठक का होना बहुत जरूरी है।इन दोनों का आपसी संबंध ही बड़े कवि बनने की सीढ़ी तैयार करता है।इस संग्रह के भाषाई पहलू की बात करें तो पाते हैं कि इस संग्रह की कविताओं में भाषाई शिल्प का न तो पांडित्य प्रदर्शन है और न ही कविताई शिल्प का बोझिलपन।इनकी कविताएँ सहज, सरल और संप्रेषित भाषा के माध्यम से आमजन और उससे जुड़ी घटनाओं को अपनी कविताओं का विषय बनाती।

इस संग्रह का कवि अपनी कविताओं के माध्यम से अधूरी तलाश को पूरी करने निकला है।इसमें संकलित कविताओं को पढ़कर पाठक तय करेंगे कि यह कवि और उसका यह संग्रह इस अधूरी तलाश को पूरा कर पाये हैं या नहीं।यह तो आने वाला समय और पाठकों की प्रतिक्रियाएँ बतायेंगी।इस नए संग्रह के लिए कवि प्रवीण कुमार जी को हार्दिक बधाई और शुभकामनाएं देते हुए यह कहना चाहता हूँ कि आप इसी तरह सृजनात्मक सक्रियता के साथ साहित्यिक कर्म में रत रहें।

आँख में नूर बन उतरती है
ज़िन्दगी जब कभी संवरती है

मैंने माना तेरी मुहब्बत ही
मेरी साँसों में गीत भरती है

उसकी बेवक्त की जुदाई से
रात की तीरगी भी डरती है

हम तो वो हैं कि जिसको छूने से
निक़हते गुल यहाँ बिखरती है

तुझको मुजरिम करार देने से
मेरी दानाई भी मुकरती है

वो तुझे देख कर सरे महफ़िल
आँख कब और पर ठहरती है

मिल ही जाती है हमको बादे सबा
तेरी गलियों से जब गुजरती है

आशा शैली

'नवगीत का स्त्री पक्ष' : सलीबें (डॉ रंजना गुप्ता)

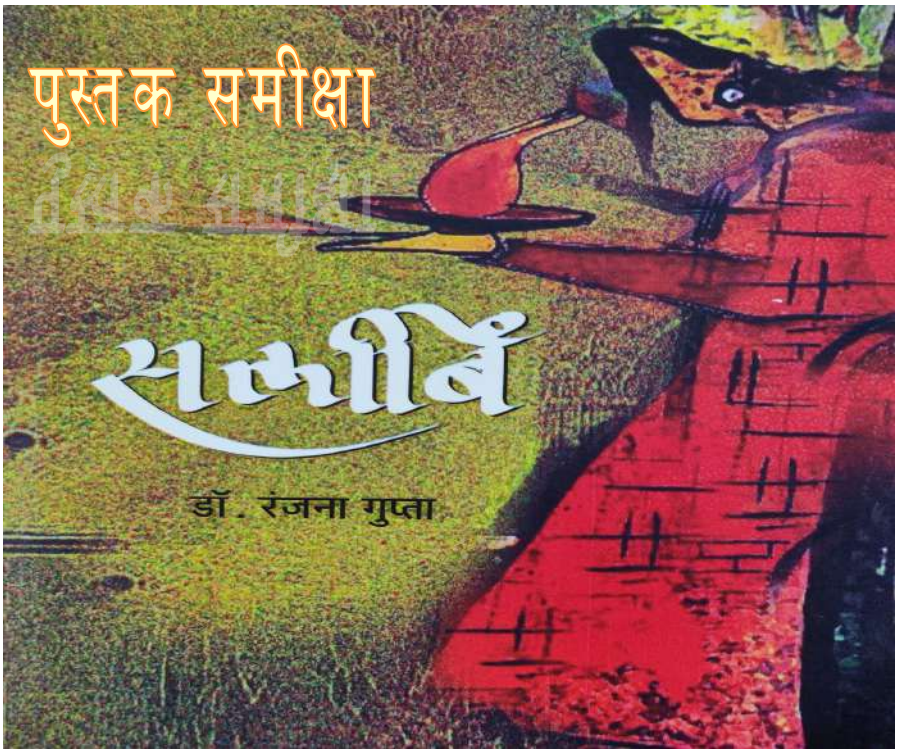

गणेश गम्भीर

इन दिनों हिंदी कविता की गतिविधियों का केंद्र स्त्री विमर्श और दलित विमर्श से हट कर पुन: व्यक्ति की समाज में एक स्वतंत्र इकाई के रूप में अपनी गरिमा और महत्ता के अन्वेषण प्रयासों की ओर खिसकता जा रहा है ।सूचना क्रांति ने सम्वेदना के भौगोलिक प्रत्यय को निष्प्रभावी बना दिया है ।हालाँकि निष्प्रभावी बनाने की यह घोषणा भी भूगोल की परिधि में ही होती है। इस प्रकार वैश्विकता और स्थानिकता का अपरिभाषेय संश्लेषण मानव सम्वेदना को तरह तरह से परिभाषित कर रहा है ।एक समूह के रूप में व्यक्ति समूह के लिए नहीं अपनी पहचान के लिए एकत्रित हो रहा है ।जीवन की इतनी जटिल स्थितियों में अभिव्यक्ति का सरल होना असम्भव है ।कहीं संवेदनाएँ अभिव्यक्ति पाते पाते मर जाती हैं, तो कहीं संवेदनाओं के मारक प्रहारों से अभिव्यक्तियाँ दम तोड़ देती हैं यह स्थिति ऐसी होती है, कि हर व्यक्ति अपनी सलीब अपनी पीठ पर लादे घूमता लगता है ।हर क्षण नए नए समझौते जीवन की अनिवार्यता बनते जा रहे हैं,यंत्र न होते हुए भी आदमी के यंत्र होते जाने की यह आँखों देखी ही, आज की हिंदी कविता का क्रीड़ा क्षेत्र है ।नवगीत एक कविता रूप होने के कारण इन सारे वांछित अवांछित दबाओं से गुज़रते हुए अपनी यात्रा कर रहा है । एक अवसाद का परिदृश्य पर अदृश्य आवरण चढ़ा हुआ है । इसी को डा० रंजना गुप्ता का नवगीत संग्रह' सलीबें' प्रमाणित करता है।

उन्नीस सौ अठ्ठावन में इन्हीं पूर्वाभासों के कारण एक नये गीत प्रारूपों की आवश्यकता महसूस की गयी, और पाँच फ़रवरी उन्नीस सौ अठ्ठावन को 'गीतांगिनी' के के प्रकाशन के साथ ही

नवगीत नामक नई गीत विधा की प्रस्तावना लिखी गयी ।यद्यपि नवगीत के उद्भव और विकास को लेकर हमारे पास अब कई धारणायें हैं, किंतु ये सच है, कि नवगीत ने जीवन की सूक्ष्म मानसिक क्रियाओं को काव्य विषय बनाया, और ऐसा करने के लिए उसने स्थूल शारीरिक क्रियाओं को अपना उपकरण बनाया ।यही कारण है, कि नवगीत में वे सारी बातें भी स्थान पा सकीं जो गीत से बहिष्कृत थीं।इसलिए यह मानना उचित होगा, कि नवगीत एक स्वतंत्र काव्य विधा है, जो नव और गीत का एक जटिल काव्य यौगिक है, जिसमें नव और गीत अपने आधार गुणों को खो चुके हैं ।नवगीत में नव को विशेषण मान कर गीत का नया रूप नहीं माना जा सकता, गीत में इतिवृतात्मकता होती है, और नवगीत में बिम्बधर्मी संकेत।

रंजना गुप्ता के नवगीत संग्रह 'सलीबें'से गुज़रते हुए यह महसूस हुआ, कि उनके मन में अपनी अभिव्यक्ति को लेकर एक आतुरता तो है, किंतु प्रकट करने की विधि को लेकर एक अनिश्चितता भी है।इसका संकेत उनके नवगीत सम्बंधी दृष्टिकोण से जो कुछ कुछ अमूर्त और छाया वादी लगता है मिलता है-' वस्तुतः नवगीत गीत की वह आधुनिक विधा है जो आत्म चेतना और लोक संवेदना के दर्द से सीधा संवाद करती है,जन जीवन के दैनिक संघर्ष और उससे जुड़ी सघन समस्याओं को उनकी वैचारिक बेचैनियों के साथ,प्रतिबद्धता से तादात्म स्थापित कर, संवेदना की क़लम से लिखी जा रही है,एक सधा हुआ शिल्प विधान और दर्द से मुक्ति का यह संधान जब समय के पन्नों पर उतरता है, तो एक मूर्तिकार की तपस्या एक कलाकार की साधना,एक सुगठित नृत्य विधान का संतुलन,एक कवि की आत्मा उसमें साकार हो उठती है,विश्व सुमंगल अवधारणा, पर्यावरण संचेतना, आमजन की पीड़ा, प्राणी जगत की त्रासद स्थितियों,आत्म संघर्ष और लोक संघर्ष की जिजीविषा सब कुछ समाहित कर लेने की अपार सिंधु सी क्षमता आज के नवगीत में

पूरी शिद्दत से मौजूद है।'

इस प्रकार रंजना गुप्ता अपने काव्य आग्रहों को प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर देती हैं, और उनके गीत इसको प्रमाणित भी करते है।

'सलीबें' नामक नवगीत संग्रह में डा० रंजना गुप्ता के क़थ्य और भाषा का द्वन्द हर जगह दिखाई देता है।उनका काव्यानुभव और उनका जीवनानुभव नवगीत को अपना मैत्री स्थल बनाते हैं, वे अपने आत्म क़थ्य में लिखती भी हैं 'लिखना' कभी 'लिखना' नहीं रहा मेरे लिए,व्यवसाय,घर और जीवन के हर कदम पाँवों को उलझाती समस्याओं से संत्रास के बीच, जो किसी भाँति बच पाया उस लेखन,उस रचनात्मकता के विलोड़न से उपजा नवनीत ही नवगीत बन गया है'

'भीगे मन के बैठ किनारे

कब रातों के हुए सबेरे

लिखता कौन ?

लिखाता कोई

यूँ शब्दों ने डाले घेरे'

(पेज नम्बर २६)

संग्रह का प्रारम्भ जिस नवगीत से होता है, उसका शीर्षक है 'नियति'।वर्तमान के खुरदरे जीवन व्यापारों से एक अकेली स्त्री का गरिमापूर्ण आत्मपरिचय इन पंक्तियों से बेहतर और क्या होगा ?

'मैं नियति की

क्रूर लहरों पर सदा से

ही पली हूँ

जेठ का हर ताप

सहकर

बूँद बरखा की चखी है

टूट कर हर बार जुड़ती

वेदना मेरी सखी है

मैं समय की भट्टियों में

स्वर्ण सी पिघली

गली हूँ'

नियति की बात करते हुए भी नवगीतकारा कहीं दीन हीन नहीं प्रतीत होती।हालाँकि वह अपने जीवन संघर्षो का एक काव्य चित्र प्रस्तुत करती है।जो मर्म स्पर्शी तो है, किंतु गौरव बोध से लबरेज़ भी।नवगीत कारा को अपनी जिजीविषा पर पूरा भरोसा है, और वह अपना मूल्य भी जानती है।उपरोक्त पंक्तियाँ बरबस ही महीयसी महादेवी वर्मा की याद दिलाती हैं।संग्रह में अनेक नवगीत स्त्री विमर्श के अनेक अनछुए पहलुओं को स्पर्श करते हैं।एक गीत है जिसका शीर्षक है' मछली'।

यह नवगीत भी उपरोक्त 'नियति' नवगीत से प्रारम्भ हुई, यात्रा का अगला पड़ाव है।इस नवगीत में भी समाज में स्त्री के आत्म बोध को रेखांकित करते हुए, उसे सतर्क रहने का सुझाव दिया जा सकता है। सारे प्रगति शील विचारों,आंदोलनों,और क़ानूनों के बाद भी स्त्री के साथ आदि काल से होता हुआ छल, अभी तक निर्बाध चल रहा है।इस नवगीत में स्त्री को मछली और दुनियादारी को सूखे ताल की प्रतीकात्मक संज्ञा देकर बड़े कोमल ढंग से, स्त्री की सांप्रतिक आशंकाओं का काव्य वर्णन किया गया है।

'मछली' शीर्षक पूर्वोक्त नवगीत की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं--

'सूखे सर

सब सूखे ताल

कह री मछली

क्या है

हाल ?

जल निर्मम है

तू क्यों रोए

तुझे छोड़

वह सबका होय

तेरे सर पर

सौ जंजाल

कह री मछली

क्या है हाल ?'

यद्दपि आजकल स्त्री विमर्श में जिस तरह की भाषा का प्रयोग स्वयं स्त्री रचनाकारों द्वारा किया जा रहा है, उस संदर्भ में डा०रंजना गुप्ता की यह शिल्प मर्यादा हो सकती है, जो अतिरेकवादी ओजस्वी और अराजक स्त्री विमर्श कारों को अधिक न रुचे, किंतु भारतीय काव्य भाषा की शालीनता का अनुरक्षण किए जाने की आवश्यकता, इन दिनों प्रज्ञा सम्पन्न समीक्षकों द्वारा महसूस की जा रही है,और डा० रंजना गुप्ता इस कसौटी पर सम्मानजनक अंक प्राप्त करने में समर्थ हैं।

प्रसिद्ध मराठी स्त्री लेखन अध्येता विद्दुत भागवत ने उन्नीस सौ सड़सठ के बाद मराठी लेखिकाओं के लेखन को 'प्रतिरोध का साहित्य' कहा है और इस बात पर ज़ोर दिया है,कि महिला रचना कारों ने अपनी रचनाओं में जिन चिंताओं और चुनौतियों का उल्लेख किया है, उनका अध्ययन किया जाना चाहिए।स्त्री लेखन में रचनाकारों ने स्त्रियोचित मानसिक और दैहिक आख्यान रचते हुए भी, अपनी सामाजिक और धार्मिक जकड़नों से मुक्त होने की एक ही जैसी ललक नहीं दिखाई है।स्त्री लेखन देह और मन का एक ऐसा तिलिस्म है, जिसमें फँस कर स्त्री रचनाकार भी रह जाती है हिंदी में यह विमर्श उपन्यास और कहानियों में ज़्यादा मुखर हुआ है,किंतु एक विशेष विचार प्रस्तुति के नियंत्रण में।कविता विशेष रूप से नवगीत में यह अक्सर भावनात्मक अतृप्ति के रूप में सामने आता है। संग्रह के 'जंगल' शीर्षक से कुछ पंक्तियाँ उदधृत की जा रही हैं --

'जंगल जंगल घूम घूम कर

बादल पानी माँग रहा है

ठिठक गई है छोटी चिड़िया

और हुआ आवाक् पपीहा

मौसम ने चिट्ठी बाँची है

आने वाला कल गिद्धों का

बीघा बीस तीस तक रेती

हिरणी मन आकण्ठ भरा है'

डा० रंजना गुप्ता का जीवन अनुभव महानगर के जद्दो जहद में रहने वाले एक आर्थिक रूप से,अपेक्षाकृत सुरक्षित किंतु सक्रिय दिनचर्या का प्रति फलन है, समग्रता में जीवन उनकी दृष्टि में तो है, किंतु हर समय अनुभव में नहीं, और यह अस्वाभाविक भी नहीं ।जीवन को समग्रता में देखने की ललक होनी चाहिए, ताकि रचना में अपने अतिरिक्त दूसरों को भी स्थान दिया जा सके ।दूसरों को स्थान देने का मतलब दूसरों के अनुभव को जानकार शब्दाँकित करना है, न कि दूसरों के अनुभव को अपने अनुभव की तरह प्रस्तुत करने का प्रयास।इन दिनों इस तरह के लेखन प्रयासों की बाढ़ आ गई है।इससे बचना ही श्रेयस्कर होगा ।रचना कार को शोषित पीड़ित जनों का पक्षधर होना चाहिए।

किंतु ऐसा करने के लिए किसी छद्म का आश्रय नहीं लेना चाहिए, रचना कार का यह नैतिक दायित्व है, कि वह जीवन समाज व्यवस्था में पाई जाने वाली, हर कुरूपता विद्रूपता और मानव द्रोही स्थितियों का इतने मर्म स्पर्शी ढंग से वर्णन करे,कि पाठक के मन में पहले घृणा का ज्वार उठे,और फिर यह ज्वार उसे आवश्यक और वांछित परिवर्तनों के लिए प्रेरित करे ।नवगीत में दूसरी विधाओं की तुलना में यह एक कठिन कार्य है,और ज़्यादा कुशलता की माँग भी करता है ।नवगीत का कोई शास्त्रीय मानक अभी तय नहीं हुआ है,पर यह एक जीवित और कार्यशील विधा है ।इसकी विधागत विशेषताओं का समेकन इसीलिए अभी तक सम्भव नहीं हो पाया है।इसीलिए किसी विशेष बाट बटखरे से न तो इसे तौला जा सकता है, और न ही इसे किसी स्केल से नापा जा सकता है।शायद यही कारण है कि डा०रंजना गुप्ता कभी कभी अपनी मुखरता छोड़ कर आत्मलाप में लगी दीखती हैं, इस संग्रह के एक नवगीत'पलाश' की पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं--

'धुएँ घुटन से

भरे उजाले

पड़े हुए साँसों के लाले

देह कोठरी है

काजल की

बगुले जैसे मन भी काले

लम्हा लम्हा

जटिल ककहरा

एक एक अक्षर पर अटकूँ'

बाह्य स्थितियाँ जब असंतुष्टि और असहमति देतीं हैं, और रचनाकार अपनी अभिव्यक्ति को साफ़ साफ़ प्रस्तुत करने में किन्ही कारणों से संकोच महसूस कर रहा हो,तो उसे इसी तरह एक एक अक्षर पर अटकना पड़ता है ।बहुत कुछ कहना है लेकिन कहने की अपनी मर्यादा है, ऐसे में यह सापेक्षिक संकोच की स्थिति पैदा होती है।जो कुछ महसूस होता है,वह इसी स्थिति संकोच के चलते अस्पष्ट अमूर्त और असमंजस पूर्ण हो जाता है,अपने प्रकटी करण में।फिर घुमा फिरा के कहने की शैली का आश्रय लिया जाता है, ताकि मर्यादा भी बनी रहे और जो कहने लायक़ है, कहा भी जा सके।'वर्ष'नवगीत की निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य है --

'जनम जनम हम

जिनको सहते

स्वजन उन्हें ही

कहते रहते

लोग पराए रहे पराए

पीर हृदय की

किससे कहते ?

सहमी सहमी सी

भयभीता

वन की हिरणी

बनी है सीता'

स्त्री विमर्श का यह जाना पहचाना किंतु अस्थायी अध्याय है, ।बार बार स्त्रियाँ अपनी सामाजिक,आर्थिक और वैयक्तिक चिंताओं से साहित्य को परिचित कराती रहीं,किंतु साहित्य यहाँ अधिक प्रभाव शाली नहीं दीखता।होता यह है, कि स्त्री रचना कार अपनी नियति को अलग अलग कारणों से स्वीकार कर कभी अमृता प्रीतम बन जाती है,तो कभी क़मला दास।कुछ ज़्यादा स्पष्ट हुई तो मृदुला गर्ग या प्रभा खेतान बन जाती है ।जबकि ज़रूरत है,कि स्त्री लेखिकाएँ तसलीमा नसरीन बनें ।और अपनी मुक्ति का युद्ध स्वयं लड़े,शत्रु और समय की सारी साज़िशों का मुँह तोड़ जवाब देते हुए।जैसी स्थितियाँ वर्तमान में हिंदी या यूँ कहें, कि पूरे भारतीय साहित्य में बन रहीं हैं, उनमें तो किसी भी तसलीमा नसरीन को निर्वासन और पलायन का हर क्षण आक्रमण झेलना ही पड़ेगा। अधिकतर स्त्री लेखिकाएँ बेचारगी को अपना हथियार बनाती हैं।डा०रंजना गुप्ता के इस संग्रह में एक गीत है 'कंदील'।जिसमें स्त्री मन अपनी शक्ति हीनता के स्थान पर अपनी शक्तिमयता का परिचय दे रहा है --

'गढ़ लेती हैं परिभाषाएँ

पढ़ लेती

मन की भाषायें

उन्मीलित दीप शिखा

जल जल

कीलित करती हर बाधाएँ

दीपो भव

'अप्प' भवो दीपो'

हर पल हर पल

निर्मल निर्मल'

अपने आस पास की घटनाओं पर टिप्पणी करते डा०रंजना गुप्ता मिथकीय पदों की शरण में चली जाती हैं, और दार्शनिक होने का प्रयास करती दीखती हैं ।अभिव्यक्ति का यह एक ऐसा क्षण होता है,जब विचारों के आवेग में सब कुछ गडमड हो जाता है -शब्द संयोजन,शिल्प अनुशासन,यथार्थ की धुँधली प्रस्तुति सब एक साथ प्रस्तुत होने के लिए, धक्का मुक्की करने लगते हैं ।संग्रह की एक रचना 'आवर्तन' इसका उचित उदाहरण है- अनुवीक्षण,दर्शन,व्यवहार,विश्वास, लोकाचार और अंत में आस्था के प्रति प्रतिबद्ध समर्पण ।एक कुशल और कुछ अलग क़िस्म का नवगीत।पूरी रचना में कभी कभी एक तर्क से उपजी अनिश्चितता दिखाई पड़ती है।जो कहना है वह कहना चाहिए कि नहीं का संकेत भले बहुत ही हल्का लेकिन मिलता है --

'आँखों देखा मिथ्या करती नास्तिकता
लाचारी है लोक हृदय की अस्तिकता

पल पल दृश्य मान सत्य का वह गर्जन

जल समाधि में भी जीवित इतिहास रहा
न्याय पृष्ठ पर थर्राता परिहास रहा

धीमें धीमें गहन शोध का नव अर्चन

क्यों उदास है राम सिया का 'रामचरित'
जन मन का सैलाब नमन कर रहा मुदित

भावों के ही राम भाव का ही अर्पण '

रंजना गुप्ता के नवगीतों में शालीनता इतनी गाढ़ी है,कि कभी कभी संवाद भी आत्मालाप लगते हैं, लेकिन उमड़ती घुमड़ती बेचैनियाँ बाहर आ ही जाती हैं,और उनका स्पर्श पाठकों को भी बेचैन कर देता है।संग्रह के' आँसू' 'पीड़ा''सिलवटें''रूप'और 'मछेरे'शीर्षक के नवगीत रचना कार के मानस के प्रवेश द्वार हैं ।पूरे संग्रह में कहीं भी भद्र लोक की निर्धारित मर्यादा का उल्लंघन नहीं हुआ है।यह एक बड़ी बात है।इन दिनों मुखर और अनुशासन हीन वार्ता शैली का लेखन में प्रचलन है।कहा जाता है कि जो सामान्य जीवन में है, वही लेखन में भी होना चाहिए। सरसरी तौर पर ऐसा सही लग सकता है,किंतु लेखन सिर्फ़ संवादों और घटनाओं का शब्द चित्र ही है,तो तो वह वांछित सांस्कृतिक़ता का त्याग कर देता है और अपने बृहत्तर सामाजिक सरोकारों से मुँह चुरा कर आत्मकेंद्रित होने के लिए अभिशप्त हो जाता है।लेखन सामान्य अर्थ में एक शब्द रचना है,किंतु इस रचना को सृजन बनने के लिए सांस्कृतिक होना पड़ेगा। हमें याद रखना चाहिए,कि हममें जो है, वह सभ्यता है,और हममें जो होना चाहिए वह संस्कृति है।साहित्य विशेष रूप से कविता और वर्तमान में नवगीत,सभ्यता के इसी सांस्कृतिक होने की इच्छा है ।मोटे तौर पर नवगीत इसी स्थान पर आकर अन्य काव्य विधाओं से अलग हो जाता है ।'आँधी'नवगीत से कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं--

'प्रतिमानों को गढ़ने वाले
रणभूमि में ध्वस्त पड़े हैं
नैतिकता के मानक सारे
छल प्रपंच के साथ खड़े हैं

डूब गया दिन में ही सूरज
अभिमन्यु का समर अभी है '

संस्कृति एक तरह से सभ्यता का अतृप्ति पर्व भी है ।सदा महसूस होता है, कि जो है,उसके अलावा भी कुछ होना चाहिए था जो नहीं है।'यह जो नहीं है' की ओर यात्रा ही एक सांस्कृतिक उपक्रम है।साहित्य और कलाओं की जननी।यह बात दूसरी है,कि कौन कैसे यह यात्रा करता है ? रंजना गुप्ता की यह नवगीत यात्रा भी उसी 'जो नहीं है'की खोज है, और अपने चरित्र में पूरी तरह सांस्कृतिक।यह'जो नहीं है' इसका एक पाठ यदि भविष्य से सम्बंधित है,तो दूसरा पाठ भूतकाल से भी सम्बंधित है।'दीप देहरी' नवगीत में यह भूतकालिक 'जो नहीं है' उपस्थित हुआ है--

' कुछ कमल विलग थे
जल से और
कुछ जल का भी मन टूट गया
बदरंग समय की स्याही थी
कुछ नाम पता भी छूट गया
उन खुले अधखुले नयनों से
अनजाने पावस झर आया '

समय की माँग है, कि हर क़दम पूरी सावधानी के साथ फूँक फूँक कर रखा जाय नहीं, तो कुछ भी अन्यथा घट सकता है ।चारो तरफ़ अविश्वास और अनिश्चय का जो फैलाव है,उसमें कुछ भी असम्भव नहीं है।बेलगाम दुर्घनाओं का समय है,हमारा वर्तमान।एक षड्यंत्र में सब लिप्त दिखते हैं।'समय'शीर्षक नवगीत में रंजना गुप्ता ने समय के इस रूप को इस तरह से प्रस्तुत किया है---

'त्रासदी है
वंचना के शस्त्र हैं
परख पैमाने सभी
के ध्वस्त हैं
झूठ का तम
घिर रहा घनघोर है'

अनुवीक्षण का सत्य कभी कभी परिचित वस्तुओं के अपरिचित गुणों का उदघाटन करता है ।और जो समझा जा रहा था, उसको न समझने का मन होने लगता है,एक साथ कई तरह की प्रतीतियाँ होने लगती हैं, जिन्हें व्यक्त कर पाना बहुत कठिन होता है।संग्रह का एक गीत 'कर्ण'इसकी गवाही देता है--

‘छल भरे इस युद्ध में
वह जी रहा संत्रास अपना
बाँसुरी चुप है
नहीं कुछ बोलती
सुन रही है
शंख की उद्घोषणा
स्वर्ण रथ से सूर्य भी
उतरा थका सा
हार कर
पाण्डुवंशी न्याय का
ध्वज झुक गया है ‘

रंजना गुप्ता के नवगीत अपने आग्रहों में जितने आधुनिक हैं, उतने उपकरण चयन में नहीं ।सम्वेदनात्मक आवेग और नये बिम्ब संधान से रचना में एक मौलिकता पैदा होती है, और यदि प्रस्तुति के उपकरण अर्थात भाषिक मुद्राऐं आधुनिक हों,तो एक आकर्षक और संतृप्त करने वाली ताज़गी रचना में आती है।यह लिखने की आवश्यकता नहीं है,कि पुराने हथियार से नया युद्ध नहीं लड़ा जा सकता।तेज़ी से डिजिटलाइज्ड होती दुनिया हमारी आत्मीयता को बड़ी तेज़ी से औपचारिकता में बदल रही है ।अब आभासी वास्तविक से ज़्यादा समर्थ और सक्रिय है, जो कि दिख रहा होता है, कभी कभी वह होता ही नहीं।व्यक्ति बदल रहा है क्योंकि उसका मन बदल रहा है।बदला व्यक्ति मन समाज की सामूहिकता को अजब आकार दे रहा है।परिभाषित सम्बंध भी अपरिभाषेय होने लगे हैं।ऐसे में शब्द की लय से ज़्यादा अर्थ की लय महत्वपूर्ण हो गई है ।इन सारी जटिलताओं का मतलब अपने सामाजिक दायित्वों से मुँह फेरना नहीं है, भले स्थिति का निर्णयात्मक और निर्विवाद आकलन करना मुश्किल हो। समाज में रहते हुए हम तटस्थ और असंपृक्त नहीं रह सकते।सारी ऊहापोह को छोड़ कर जो समझ में आए,वैसा हस्तक्षेप हमें सामाजिक क्रियाओं में करना चाहिए।चाहे यह एक कटु टिप्पणी ही क्यों न हो ।यह एक असहज कर देने वाली स्थिति होती है ।’खिड़की’ शीर्षक नवगीत में इसी ऊहापोह और असहजता पर टिप्पणी की गई है --

‘छाँव पर छेनी चलाती हैं
हवाएँ
कस रहीं है तंज
शाख़ों पर दिशाएँ
उड़ सके नन्हें परों से
फिर गगन में
क़ैद से इन तितलियों को
छोड़ देते ‘

स्पष्ट है कि रचना कार तितलियों के क़ैद में होने से व्यथित है, और अफ़सोस व्यक्त कर रहा है,कि काश उन्हें छोड़ दिया जाता ।पूरे संग्रह में आम आदमी की जीवन चर्या से जुड़े अनेक विषयों जैसे-राजनीति,सामाजिक संक्रमण,रोज़गार,ग़रीबी,असमानता पर नवगीत हैं। यह संग्रह आत्मनिष्ठता और वस्तुनिष्ठता के द्वन्द की परिणिति होने का परिचय देता है।

सारे युग बोध के बाद भी रूमान सदा से एक काव्य मूल्य रहा है,और रहेगा,क्योंकि यदि रुमान न होता, तो कोई कविता सम्भव ही नहीं थी।जीवन के हर क्रिया बोध का निस्पंद सिर्फ़ और सिर्फ़ रुमान है।कुछ लोग जीवन की साम्प्रतिक़ता को जिसे वे यथार्थ कहते हैं रुमान से अलग मानते हैं, जबकि जीवन में जो कुछ भी हो रहा है,उसका संचालन तत्व रुमान ही है ।डा० रंजना गुप्ता भी यथार्थ की तपती धूप में चल रही गर्म हवा में नमी की तरह,अपने प्रेम राग का गायन करती हैं।संग्रह के ‘स्त्री’ शीर्षक गीत में उनके मनोभाव कुछ इस तरह से व्यक्त हुए हैं--

‘तुम पुरुष नहीं हो सकते
मेरे स्त्री हुए बिना

गर्म रेत पर चली
स्त्री सदियों से
चुप चाप गुज़रती रही
अंधेरी गलियों से
तुम धूप नहीं हो सकते
मेरे छाया हुए बिना’

इन पंक्तियों को प्रेम का स्त्री पक्ष कहा जा सकता है।किंतु इससे प्रेम के स्वाभाविक रूप से स्वीकार्य होने की पुष्टि भी होती है।संग्रह में अनेक गीत जैसे ‘बसंती राग’ ‘रतजगे’’बसंत’’फागुन’ और ‘प्यार तुम्हारा’ आदि इस बात को स्थापित करते हैं कि कितनी ही विषम और जटिल परिस्थिति क्यों न हो रुमान का पौधा कभी नहीं सूख सकता ।

संग्रह की भूमिका में प्रसिद्ध नवगीत कार मधुकर अस्थाना रंजना गुप्ता के नवगीतों पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं, कि ‘’ अनुभूतियों में संवेदनात्मक ताज़गी,मौलिकता और बहुश्रुत प्रतीकों के माध्यम से कथ्य का संप्रेषण, उन्हें प्रथम संग्रह से ही महत्व पूर्ण बनाने में सफल है।रागात्मक अंत:चेतना से उपजी यथार्थ मार्मिकता करुणा का विस्तार करती है।उनकी रचनाओं में वायलिन का दर्द भरा सुर है, या प्रिय को टेरती वंशी की धुन है जिसे हम समझ तो नहीं पाते पर मन के भीतर एक टीस जगा देती है कुछ अनबूझी,अनजानी सी।’’

कोमल कमनीय शब्दों वाले इस गीत संग्रह की अर्थ व्याप्ति कहीं कहीं इतनी खुरदरी है, कि पाठक के मर्म को स्पर्श ही नही करती बल्कि उसे छील देती है।बिना क्रुद्ध हुए शालीन और सौम्य मुद्राओं वाले,इन नवगीतों के सृजन के लिए डा०रंजना गुप्ता की जितनी प्रशंसा की जाय कम है।आशा है, यह संग्रह सिर्फ़ नवगीत संग्रह के रूप में ही नहीं बल्कि नवगीत के प्रांजल,शालीन स्त्री हस्तक्षेप के लिए भी उचित सत्कार प्राप्त करेगा।

गणेश गम्भीर,

घास की गली वासली गंज ---
मीरजापुर 231001

जयंती (16 जुलाई) पर विशेष

1942 की स्वतन्त्रता सेनानी : अरुणा आसफ अली

आकांक्षा यादव,
पोस्टमास्टर जनरल आवास,
वाराणसी

देश की आजादी में महिलाओं ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया। कईयों ने तो अपनी जान भी गँवा दी, फिर भी महिलाओं के हौसले कम नहीं हुए। रानी चेनम्मा और रानी लक्ष्मीबाई जैसी वीरांगनाओं का उदाहरण हमारे सामने है, पर जब आजादी का ज्वार तेजी से फैला तो तमाम महिलाएं भी इसमें शामिल होती गईं। इन्हीं में से एक हैं- अरुणा आसफ अली। उनका जन्म **16** जुलाई **1909** को तत्कालीन पंजाब (अब हरियाणा) के कालका में हुआ था। लाहौर और नैनीताल से पढ़ाई पूरी करने के बाद वह शिक्षिका बन गईं और कोलकाता के गोखले मेमोरियल कॉलेज में अध्यापन कार्य करने लगीं। अध्यापन के साथ-साथ वे स्वाधीनता सम्बन्धी गतिविधियों पर भी निगाह रखती थीं और प्रेरित होती थीं।

1928 में कांग्रेसी नेता और स्वतंत्रता सेनानी आसफ अली से शादी करने के बाद अरुणा गांगुली भी पार्टी सम्बन्धी गतिविधियों और स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लेने लगीं। शादी के बाद उनका नाम अरुणा आसफ अली हो गया। अरुणा आरंभ से ही तेज-तर्रार थीं, अतः उनसे अंग्रेजी हुकूमत को शीघ्र ही खतरा महसूस होने लगा। अरुणा आसफ अली 'नमक कानून तोड़ो आन्दोलन' के दौरान जेल भी गयीं। **1931** में जब गाँधी-इरविन समझौते के तहत सभी राजनीतिक बंदियों को छोड़ दिया गया, लेकिन अरुणा आसफ अली को नहीं छोड़ा गया। इस पर महिला कैदियों ने उनकी रिहाई न होने तक जेल परिसर छोड़ने से इंकार कर दिया। अंततः अरुणा की लोकप्रियता को देखते हुए ज्यादा माहौल न बिगड़े, अंग्रेजों ने अरुणा को भी रिहा कर दिया। अपने तीखे तेवरों के लिए

मशहूर अरुणा ने अंग्रेजों के विरुद्ध कोई भी मौका हाथ से न जाने दिया। **1932** में उन्हें फिर से गिरफ्तार कर लिया गया और तिहाड़ जेल, दिल्ली में रखा गया। पर अरुणा आसफ अली कहाँ शांति से बैठने वाली थीं, वहाँ उन्होंने राजनीतिक कैदियों के साथ होने वाले दुव्र्यवहार के खिलाफ भूख हड़ताल आरंभ कर दी, जिसके चलते अंग्रेजी हुकूमत को जेल के हालात सुधारने को मजबूर होना पड़ा। रिहाई के बाद भी अरुणा आजादी के आन्दोलन में सक्रिय बनी रहीं।

8 अगस्त **1942** को जब बम्बई अधिवेशन में गाँधी जी ने भारत छोड़ो आंदोलन की उद्घोषणा करते हुए करो या मरो का नारा दिया तो अरुणा आसफ अली ने भी इसे उसी अंदाज में ग्रहण किया। अंग्रेजी हुकूमत ने इस आन्दोलन से डर कर सभी प्रमुख नेताओं को तुरंत गिरफ्तार कर लिया। पर अरुणा आसफ अली तो गजब की दिलेर निकलीं, वे अंग्रेजों के हाथ तक नहीं आईं। अगले दिन नौ अगस्त **1942** को उन्होंने अंग्रेजों के सभी इंतजामों को धता बताते हुए शेष अधिवेशन की अध्यक्षता की और मुम्बई के ग्वालिया टैंक मैदान में तिरंगा झंडा फहरा कर भारत छोड़ो आन्दोलन का शंखनाद कर अंग्रेजी हुकूमत को बड़ी चुनौती दी। अंग्रेजी हुकूमत ने अधिवेशन में शामिल लोगों पर गोलियां तक बरसाइंर्, पर अरुणा तो मानो जान हथेली पर लेकर निकली थीं। इस घटना से वे **1942** के आन्दोलन में एक नायिका के रूप में उभर कर सामने आईं। अरुणा आसफ अली की इस दिलेरी और **1942** में उनकी सक्रिय भूमिका के कारण 'दैनिक ट्रिब्यून' ने उन्हें '1942 की रानी झाँसी' नाम दिया। गौरतलब है कि इस आन्दोलन के दौरान जब सभी शीर्ष नेता गिरफ्तार या नजरबन्द हो चुके थे, अरुणा आसफ अली व सुचेता कृपलानी ने अन्य आन्दोलनकारियों के साथ भूमिगत होकर आन्दोलन को आगे बढ़ाया तो ऊषा मेहता ने इस दौर में भूमिगत रहकर कांग्रेस-रेडियो से प्रसारण किया। अंग्रेजी हुकूमत अरुणा आसफ अली से इतनी भयग्रस्त चुकी थी कि उन्हें पकड़वाने वाले को पाँच हजार रुपए का इनाम देने की घोषणा की। उनकी सम्पति को जब्त कर नीलाम तक कर दिया गया। इसके बावजूद अरुणा ने हिम्मत नहीं हारी। इस दौरान उन्होंने राम मनोहर लोहिया के साथ मिलकर कांग्रेस पार्टी की मासिक पत्रिका 'इन्कलाब' का संपादन भी किया। **1944** के संस्करण में उन्होंने युवाओं का आह्वान किया

आजादी के बाद भी अरुणा आसफ अली राजनीति और समाज-सेवा में सक्रिय रहीं। **1948** में वे कांग्रेस छोड़कर नए दल सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हुईं तो बाद में भाकपा में शामिल हो गईं। **1956** में वे भाकपा से भी अलग हो गईं। अपनी लोकप्रियता की बदौलत **1958** में वे दिल्ली की प्रथम महापौर निर्वाचित हुईं।

कि वे हिंसा और अहिंसा के वाद-विवाद में न पड़कर क्रांति में शामिल हों और देश को आजाद कराएँ। इस बीच उनका स्वास्थ्य भी खराब हो गया तो गाँधी जी ने उन्हें एक पत्र लिखा कि वह समर्पण कर दें ताकि इनाम की राशि को हरिजनों के कल्याण के लिए इस्तेमाल किया जा सके। अरुणा को गाँधी जी का यह प्रस्ताव तात्कालिक रूप से ठीक नहीं लगा और उन्होंने समर्पण करने से मना कर दिया। अंततः अंग्रेजी हुकूमत द्वारा **1946** में गिरफ्तारी वारंट वापस लिए जाने के बाद ही वह लोगों के सामने आईं।

आजादी के बाद भी अरुणा आसफ अली राजनीति और समाज-सेवा में सक्रिय रहीं। **1948** में वे कांग्रेस छोड़कर नए दल सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हुईं तो बाद में भाकपा में शामिल हो गईं। **1956** में वे भाकपा से भी अलग हो गईं। अपनी लोकप्रियता की बदौलत **1958** में वे दिल्ली की प्रथम महापौर निर्वाचित हुईं। **1964** में वे पुनः कांग्रेस में शामिल हुईं, पर सक्रिय राजनीति से किनारा करना आरंभ कर दिया। **1964** में ही उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय लेनिन शांति पुरस्कार भी मिला। राष्ट्र निर्माण में जीवनपर्यन्त योगदान के लिए उन्हें **1992** में भारत के दूसरे सर्वोच्च नागरिक सम्मान पद्म विभूषण से भी सम्मानित किया गया। अरुणा आसफ अली की जीवनशैली काफी अलग थी। वे जनता से जुड़े मुद्दों पर काफी संवेदनशील थीं। यहाँ तक कि अपनी उम्र के आठवें दशक में भी उन्होंने सार्वजनिक परिवहन से सफर जारी रखा। इस सम्बन्ध में एक घटना को उद्धरित करना उचित होगा। एक बार अरुणा आसफ अली दिल्ली में यात्रियों से ठसाठस भरी बस में सवार थीं। बस में कोई सीट खाली नहीं थी। उसी बस में आधुनिक जीवनशैली की एक युवा महिला भी सवार थी। एक आदमी ने युवा महिला की नजरों में चढ़ने के लिए अपनी सीट उसे दे दी लेकिन उस महिला ने अपनी सीट अरुणा को दे दी। ऐसे में वह व्यक्ति भड़क गया गया और युवा महिला से कहा यह सीट मैंने आपके लिए खाली की थी बहन। इसके जवाब में अरुणा आसफ अली तुरंत बोलीं- "माँ को कभी न भूलो क्योंकि माँ का हक बहन से पहले होता है।" इस बात को सुनकर वह व्यक्ति काफी शर्मसार हो गया। जीवन को अपने ही अंदाज में भरपूर जीने वालीं अरुणा आसफ अली नारी-सशक्तिकरण के क्षेत्र में एक मील का पत्थर हैं, जिनके योगदान को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि **29** जुलाई **1996** को उनके निधन पश्चात् अगले वर्ष ही **1997** में उन्हें मरणोपरांत भारत के सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' से सम्मानित किया गया और उसके अगले वर्ष **1998** में उनकी स्मृति में एक स्मारक डाक टिकट जारी किया गया। आज अरुणा आसफ अली भले ही हमारे बीच नहीं हैं, पर उनके कार्य और उनका अंदाज आने वाली पीढ़ियों को सदैव रास्ता दिखाते रहेंगें। उन्हें यूँ ही स्वतंत्रता संग्राम की "ग्रैंड ओल्ड लेडी" नहीं कहा जाता है।

सुरेन्द्र सुकुमार विशेषांक

सुरेन्द्र सुकुमार...

श्री सुरेंद्र सुकुमार को कुछ माह पहले, कई दिनों से फेसबुक पर पढ़ रहा था। कुछ हल्का-फुल्का रोचक था तो कुछ बहुत ही गंभीर। कुछ तो नित्तान्त सतही जिसे देखते ही भाग खड़े होने का मन करता। किन्तु, इन सब के बीच कोई एक ऐसा तन्तु भी था जो मुझे उनसे जुड़े रहने को मजबूर भी करता था। और वह तन्तु, था नहीं बल्कि है, उनका लेखन विधान, शिल्प।

सुरेन्द्र सुकुमार लिखते नियमित हैं। उन्हों ने गुजरे समय के अपने कवि सम्मेलनों का जिक्र किया तो मुझे सोचना पड़ा कि आखिर यह सुरेंद्र सुकुमार है कौन जिसे मैं सुन नहीं पाया था क्योंकि अस्सी के दशक में राजधानी के हर

परिचय

यात्रा

धरती

● सुरेश शर्मा

जनसत्ता में 1990 में प्रकाशित समीक्षा

कवि सम्मेलन को रात–रात जाग कर सुना था पर उसमें तो कोई सुरेंद्र सुकुमार न था।

अस्सी का दौर हमारे स्कूल–कॉलेज का था और नव लेखन का भी।

1977 तक हम फुल पैंट कम ही पहनते थे। इसी साल दसवीं पास की थी। 1979 में बारहवीं पूरी की, फिर दिल्ली यूनिवर्सिटी।

मजाल है हमसे कोई कवि सम्मेलन बच जाय।

रामलीला मैदान पर गोपाल प्रसाद व्यास का कवि सम्मेलन हो या फिर दरियागंज की श्री महावीर वाटिका का आयोजन हम अपने दोस्तों के साथ इन आयोजनों में पूरी पूरी रात बैठे रहते।

वीरेंद्र मिश्र, बालकवि बैरागी, रवीन्द्र जैन, शैल चतुर्वेदी, हुल्लड़, काका हाथरसी, हरि ओम पवार, सोलंकी, सुरेन्द्र शर्मा, अशोक चक्रधर, नीरज, अवस्थी......एक फहरिष्ट थी कवियों की, अब तो बस यादें हैं।

लेखन की शुरुआत हो चली थी।

लक्ष्मी नारायण लाल, जैनेंद्र जैन, भवानी प्रसाद मिश्र, यशपाल जैन, संतोषानंद के साक्षात्कार पर परिचर्चा नवभारत टाइम्स में प्रकाशित हो चुकी थी।

कवि संतोषानंद से घनिष्ठता बढ़ गई थी। गाहे ब गाहे उनके मिंटो रोड के सरकारी निवास पर जाना होता था।

वे दिल्ली सरकार के एक विद्यालय में अध्यापन करते थे और मिंटो रोड पर रहते थे।अपनी पत्नी को "राजू बेटा" कह कर पुकारते थे।

दिल्ली में जिस कवि सम्मेलन में वे जाते मैं उनके साथ रहता।

एक ऐसा ही आयोजन साप्ताहिक हिंदुस्तान का मंडी हाउस के एक सभागार में था।

वहां रोचक किस्सा हुआ।

आदरणीय नीरज जी कविता पाठ के लिए आए।

उनका एक शेर था जिसे वे हर कवि सम्मेलन में अवश्य पढ़ते थे।

इस आयोजन में भी उन्हों ने पढ़ा "न पीने का सलीका, न पिलाने का शऊर ऐसे भी लोग चले आए हैं मयखाने में"

हुआ यह कि अंतिम पंक्ति कहते– कहते वे संतोषानंद की तरफ घूम गए।

संतोषानंद को लगा कि उन्हों ने उनके ऊपर व्यंग्य किया है। वे वहीं झगड़ने लगे।

उन्हें बड़ी मुश्किल से मनाया जा सका।

कवि सम्मेलन फिर शुरू हुआ तो नीरज जी के बाद रमानाथ अवस्थी जी को बुलाया गया। उन्हों ने नीरज जी की सारी कविता को ही खारिज करते हुए कहा कि "हिंदी कवि सम्मेलन अब शुरू होता है।" उन्हों ने "चाहे मसान का हो चाहे मकान का हो धुएं का रंग

संपर्क भाषा भारती के लिए राजीव गांधी जी का पत्र

एक है।" गीत पढ़ा।

यहीं से मुझे मंचीय कवियों की गुटबाजी का पता चला।

ऐसा ही एक आयोजन दूरदर्शन के गोल्डन जुबली का भी था।

कवि सम्मेलन का संचालन गीतकार वीरेंद्र मिश्र कर रहे थे और आयोजन की अध्यक्षता हरिवंश राय बच्चन जी कर रहे थे।

कवि सम्मेलन के संचालक वीरेंद्र मिश्र जी ने अपने लंबे और उबाऊ गीत "नदी के बंध

कटेंगे तो नदी रोएगी।" को पढ़ा और माइक बच्चन जी को दे दिया। बच्चन जी भी ऊब गए थे उन्हों ने झट कार्यक्रम समाप्त होने की घोषणा कर दी, लोग अपनी सीटों से उठने लगे। मुझ से न रहा गया। मैं अगली सीट पर ही था, मैंने ऊंचे स्वर में कहा कि जब तक कवि सम्मेलन के अध्यक्ष कविता नहीं सुनाएंगे कार्यक्रम संपन्न नहीं हो सकता। कार्यक्रम का दूरदर्शन पर सीधा प्रसारण चल रहा था, कैमरा मेरे ऊपर फोकस था।

लोग सीटों पर ठहर गए।

बच्चन जी ने फिर माइक ले लिया तो मेरा हौसला बढ़ा।

मैं ने कहा बिना मधुशाला के पाठ के कवि सम्मेलन समाप्त नहीं होगा।

बच्चन जी मुस्कुराए और कहा "मुझ से मधुशाला सुननी होती तो 1933 में सुनते।"

मैं ने तुरंत उत्तर दिया "इसमें मेरा क्या दोष, तब मैं पैदा ही नहीं हुआ था।" बहुत जोर का ठहाका लगा कर फिर उन्हों ने सस्वर मधुशाला का पाठ किया।

हां तो मैं कह रहा था कि मैं सुरेंद्र सुकुमार कवि से अनभिज्ञ रह गया था।

फिर एक दिन उनके धर्मवीर भारती और कमलेश्वर पर संक्षिप्त संस्मरण पढ़े तो जिज्ञासा और बढ़ी कि यह सुरेंद्र कुमार कौन है?

इसी जिज्ञासा में मैंने कादम्बिनी के पूर्व मित्र कवि धनंजय सिंह से बात की तो उन्हों ने हंस कर उनके बारे में बताया। राम अरोरा और विनोद क्वात्रा से भी चर्चा की। विनोद क्वात्रा जी ने बताया कि वह तो "हमारे एटा जिले का ही है और फक्कड़ तबीयत इंसान है। इसकी एक कहानी सारिका में छपी थी। कहानी का नाम अगिहाने है और यह कहानी बहुत चर्चित हुई थी।"

इतना सुनने के बाद सुरेंद्र सुकुमार में मेरी जिज्ञासा और बढ़ गई।

मैंने सुरेंद्र सुकुमार से फोन नंबर मांगा और बात की। पता चला कि वे अलीगढ़ रहते हैं।

अब सुरेंद्र से मिलने की मेरी बेचैनी और बढ़

श्री महेंद्र महर्षि सर

गई।

मैंने तुरंत 22 फरवरी का दिल्ली से अलीगढ़ का लखनऊ शताब्दी का टिकट कटाया और उन्हें बताया कि में 22 फरवरी की प्रातः अलीगढ़ पहुंच रहा हूं।

उन्हों ने कहा आएं, मैं घर पर ही रहता हूं।

यह सब हो ही चुका था कि एक सुबह सारिका वाले कथाकार रमेश बत्रा जी की पत्नी जया का फोन आया, उनसे जिक्र किया कि अलीगढ़ सुरेंद्र सुकुमार से मिलने

संडे ड्रीम

चाबहार के आगे चित

क्या है चीन-पाकिस्तान इकोनॉमिक कॉरीडोर

जा रहा हूं।

वे जिद् करने लगीं कि वे भी अलीगढ़ चलेंगी।

"मैं भी सुरेंद्र से मिलूंगी। उसने मुझ से कहा था कि उसकी अब तक इक्यावन प्रेमिकाएं हो चुकी हैं। वो हमारे यहां लारेंस रोड वाले घर भी आया करता था। और रमेश ने मुझे जिंदगी का पहला झापड़ भी उसकी वजह से ही मारा था। मैं झन्ना कर रह गई थी।" जया ने यह भी बताया कि सुरेंद्र की एक बेटी है जो गुरुग्राम में रहती है।

टिकट इत्यादि के चलते जया का मेरे साथ अलीगढ़ जाना संभव न हो पाया पर उनसे मिली जानकारी ने आग में घी का काम किया।

अब मैं इस सुरेंद्र सुकुमार से हर हालत में मिलना चाहता था।

फिर फरवरी में एक दिन ऐसा आया कि मैं सुबह-सुबह नई डिल्ले से शताब्दी ट्रेन पकड़ कर अलीगढ़ पहुँच गया।

चूंकि, सुरेन्द्र जी को बता कर यह यात्रा कर रहा था सो ट्रेन में सफर के दौरान कई बार उनका फोन मेरे पास आया

उस दिन शताब्दी कुछ देर से, लगभग सवा नौ बजे सुबह उसने मुझे अलीगढ़ स्टेशन पर उतारा।

सुरेन्द्र सुकुमार अलीगढ़ का अपना पुराना आवास बेच कर अब ओज़ोन सिटी के रेसिडेंशियल कॉलोनी में शिफ्ट कर गए हैं। ओज़ोन सिटी, अलीगढ़ रेलवे स्टेशन से लगभग 7 किलो मीटर दूर है।

स्टेशन से बाहर आते ही मुझे चाइनीज़ बैटरी रिक्शा मिल गया। उसने दो सौ रुपए में मुझे वहाँ पहुंचाने की बात की किन्तु, गंतव्य पर पहुँच कर ढाई सौ रुपये लेकर मान।

जाड़े की उस सुबह सुरेन्द्र सुकुमार अपने मकान के बाहर ही टहलते हुए मिल गए।

यह मेरी उनसे पहली मुलाक़ात थी, सो फेसबुक पर उनकी फोटो ही पहचान सिद्ध करने में सहायक हुई।

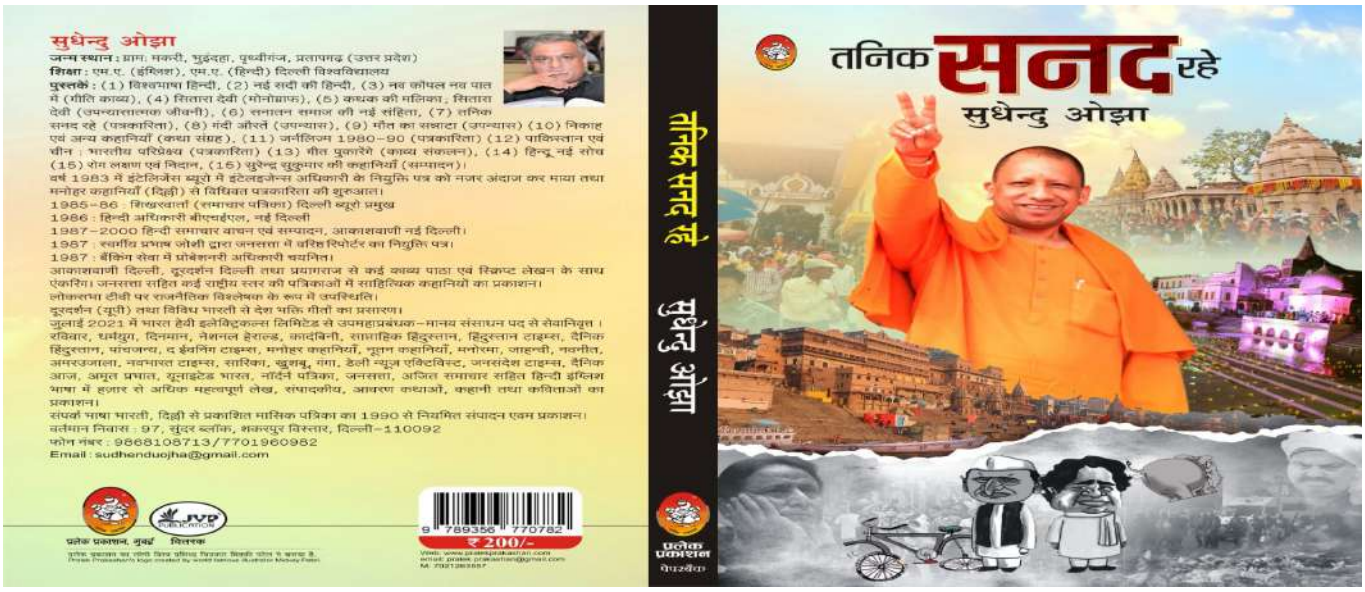

आगामी कई पुस्तकों में से एक

अब हम उनके कमरे में थे। यह तीन कमरे का नीचे का फ्लैट है। जो कि अकेले सुकुमार के लिए पर्याप्त है।

उनकी पत्नी सुधा का देहावसान कुछ समय पहले हो चुका है। उनकी एक ही पुत्री हैं जो अपने पति के साथ गुरुग्राम में रहती हैं।

नौकर चाय बना कर दे गया और हमारा बातचीत का सिलसिला शुरू हो गया। मैं अपने साथ एक छोटा ट्रॉली बैग ले गया था।

हमारे यहाँ, पूर्वी उत्तर प्रदेश में रिवाज है, श्रद्धेय के यहाँ पहली बार जा रहे हैं तो.....सो मैं, दिल्ली से मिठाई लेकर पहुंचा था। सुकुमार ने मुझे पहले ही बता दिया था कि उन्हें मिठाई से गुरेज नहीं है।

और अब आपकी पुस्तक आलोकित करने केलिए सौभाग्य प्रकाशन

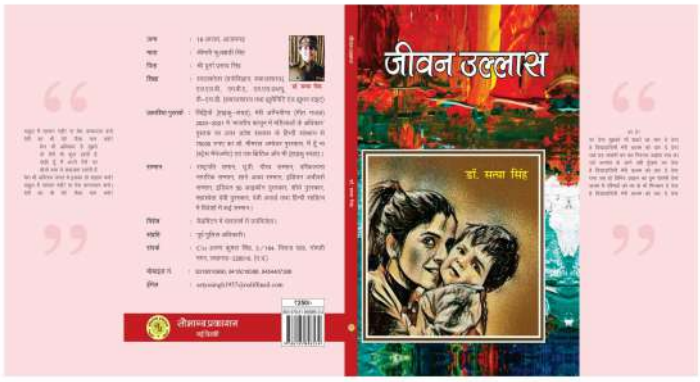

सुरेन्द्र सुकुमार की चाल सहज और सामान्य नहीं थी, उन्हों ने स्वयं बताया कि कुछ दिनों पहले उन्हें दायीं तरफ पक्षाघात पड़ा था।

अब वे अपना अधिकांश काम बाएँ हाथ से ही करते हैं।

यहाँ तक कि फेसबुक पर भी केवल अंगूठे से ही टाइप करते हैं।

हम ड्राइंग रूम से निकल कर दूसरे कमरे में आ गए।

यहाँ बड़ी सी इस्पाती अलमारी में उनकी पुरानी पुस्तकें इत्यादि पड़ी थीं।

सुरेन्द्र अधिक समय बैठ नहीं सकते हैं सो, वे बिस्तर पर लेट गए।

और अब आपकी पुस्तक आलोकित करने केलिए सौभाग्य प्रकाशन

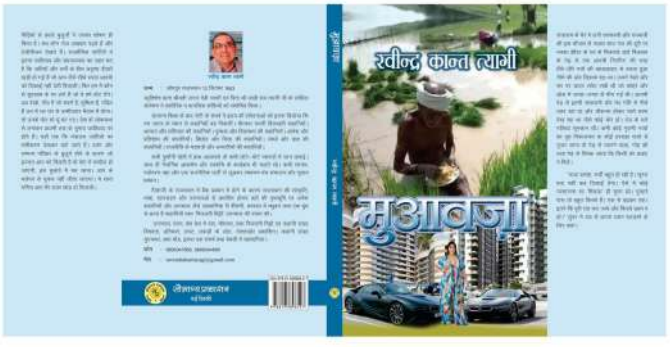

और अब आपकी पुस्तक आलोकित करने केलिए सौभाग्य प्रकाशन

डॉ शेरजंग गर्ग, गोपाल दास सक्सेना 'नीरज' और सुधेन्दु ओझा

मैं उन्हें पुरानी पुस्तकों का बंडल पकड़ाता जाता और उनमें से वे कुछ को चिहनितककार अलग रखते जाते।

काफी समय लगा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपी उनकी कहानियाँ अब एकत्रित हो गई थीं।

इसी दरम्यान उन्हों ने नौकर को खाना बनाने को कह दिया था।

उड़द की दाल, आलू-गोभी की सब्जी। लाजवाब।

मेरे दिल्ली चलाने से पहले उन्हों ने पूछ लिया था।

'कुछ लेते हो?' मैंने इंकार किया।

आकाशवाणी से समाचार वाचन...

इंकार किया तो यही खाना उन्हों ने भी मजबूरी में खाया।

सुरेन्द्र 69 वर्ष के हो गए हैं।

रोज नॉन-वेज और शाम को तीन-चार पैग अच्छी शराब आज भी उनकी रुचि में सर्वोपरि है।

उनके अनुसार रात को सात-साढ़े सात भोजन करने के बाद तीन पैग लेकर वे सो जाते हैं। उनकी सुबह साढ़े तीन-चार बजे हो जाती है।

दोपहर का भोजन करने के बाद एक बार फिर हम उनकी पुरानी रचनाओं में उलझ गए।

उनकी सारी प्रकाशित कृतियों को जो कि

डॉ लक्ष्मी नारायण लाल के सुपुत्र श्री आनंद वर्धन से डॉ लाल का समग्र साहित्य पुनर्प्रकाशन के लिए प्राप्त करते हुए।

'अच्छा तो नॉन-वेज बनवाएँ?' मैंने उससे

यहाँ भी छप जाया करते थे

भी

धर्मयुग, सारिका, हंस, रविवार इत्यादि में थीं मैंने सहेज कर ट्रॉली बैग में रख लिया। और लगभग ढाई बजे उनका नौकर मुझे मोटर साइकिल से ओज़ोन सिटी के बाहर तक छोड़ आए।

अलीगढ़ से दिल्ली का ट्रेन आरक्षण मैंने नहीं करवाया था और सोचा था बस से वापस आ जाऊंगा, यही मेरी भूल सिद्ध हुई।

खैर, उस रात नौ बजे कष्टकारी बस यात्रा के बाद मैं दिल्ली पहुंचा।

इस धर्म यात्रा की वापसी के बाद से श्री सुरेन्द्र सुकुमार से मेरा संबंध अब प्रतिदिन का हो गया है। प्रातः साढ़े तीन बजे ही उनका

आवरण कथा पांचजन्य

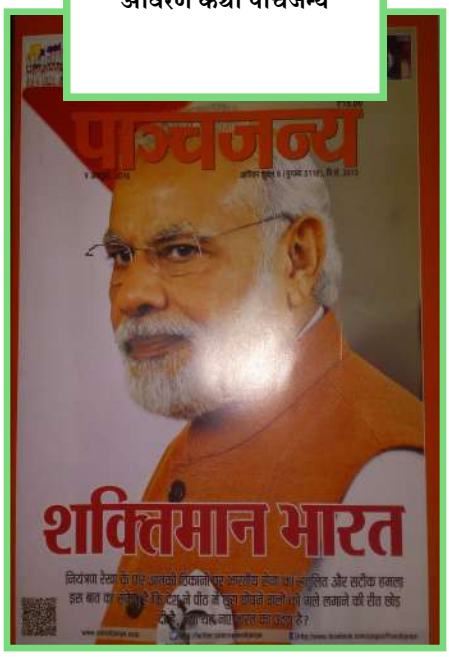

शुभकामना संदेश मुझे प्राप्त हो जाता है। इस क्रम में सर्व श्री त्रिलोकदीप जी, डॉ धनंजय सिंह जी, श्रीयुत श्री राम अरोड़ा जी भी शामिल हैं।

फेसबुक पर उनके आलेखों/स्मृतियों को पढ़ना उन्हें एक स्थान पर संकलित करना अब रुचि का ही विषय नहीं रह गया है बल्कि एक पवित्र आश्वासन से बंधी ज़िम्मेदारी भी बन गया है।

सुरेन्द्र जी की तमाम प्रकाशित कहानियों को तीन संकलनों में संपादित करने का जिम्मा है मेरे ऊपर।

इस दिशा में काम शुरू हो गया है। उनकी कुल जमा 38 कहानियों में से 35 कहानियाँ प्राप्त हो गई हैं। जो नहीं मिली हैं उनमें चुटकी भर सुख, कोका बुआ और छोटी मछली बड़ी मछली हैं।

इन्हें तलाशने का प्रयास जारी है।

इधर, मई अंतिम सप्ताह में सुरेंद्र सुकुमार जी से फोन पर बात हो रही थी तो उन्हों ने आग्रहपूर्वक कहा 'आ क्यों नहीं जाते?'

उनके इस आग्रह को टालने का साहस न हुआ।

दस दिन था।

आवरण कथा पांचजन्य

बाद, 4 जून का ट्रेन से टिकट उपलब्ध हुआ।

जाने के लिए, नीलांचल एक्सप्रेस से और वापसी उसी दिन कानपुर–आनंदविहार एक्सप्रेस से।

3 जून का दोपहर उन्हों ने फोन कर के आने का कार्यक्रम पूछा तो मैंने 4 जून को आने की बात बता दी।

सुरेंद्र जी से बात करने के एक घंटे बाद रेल विभाग से सूचना आई कि ओडिशा में ट्रेन दुर्घटना के चलते, 4 जून की नीलांचल निरस्त कर दी गई है।

अब, अलीगढ़ से आनंदविहार का रिजर्वेशन तो था पर दिल्ली से जाने का आरक्षण नहीं

आवरण कथा पांचजन्य

आवरण कथा पांचजन्य

तुरंत 'तत्काल' के विकल्प को देखते हुए, सीमांचल एक्सप्रेस का रिजर्वेशन कराया।

सुबह घर से निकला तो दिल्ली में रिमझिम बरसात थी।

ट्रेन निश्चित समय 8.10 पर चल पड़ी।

ट्रेन में बैठते ही रेलवे से एसएमएस मिला कि नीलांचल बहाल कर दी गई है, पर अब क्या फायदा होता।

अलीगढ़ की मेरी यात्रा प्रारम्भ हो चुकी थी।

10.10 पर मैं अलीगढ़ था।

वहीं रेलवे का फिर एसएमएस मिला कि नीलांचल आनंदविहार से अपराहन 12.00 बजे चलेगी।

मैंने स्टेशन से ओज़ोन सिटी केलिए बैट्री रिक्शा किया।

वह 150 रुपये पर सहमत हुआ, यह बात अलग है कि दो सौ देने के बाद उसने मुझे 20 रुपये ही वापस किए। यह रिक्शा पिछली बार से सस्ता पड़ा।

10.50 पर मैं उनके साथ मौजूद था। यात्रा के दौरान सुकुमार जी दो बार मेरी लोकेशन ले चुके थे।

मुझे

आवरण कथा ग्रुएट

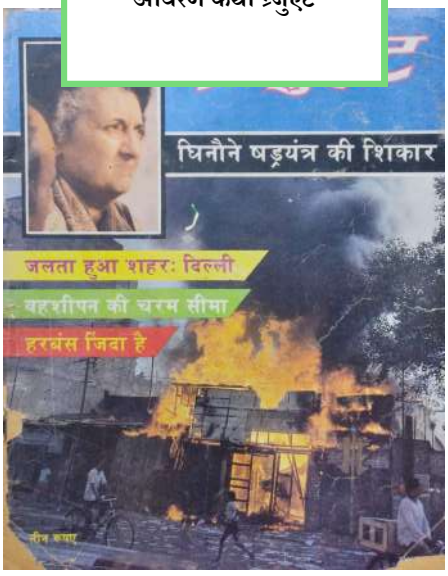

पता नहीं है कि मैंने आप को पहले बताया है अथवा नहीं, सुरेन्द्र सुकुमार बहु प्रतिभा के धनी हैं। उत्तम कथाकार जिनकी हर कहानी सारिका, धर्मयुग, रविवार पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही।

उत्तम, व्यंग्य के स्थापित मंचीय कवि।

उत्तम आरएसएस कार्यकर्ता, उत्तम चरम वाम पंथी यहाँ तक की नक्सल समर्थक, उत्तम सनातनी, पंच मकारी, उत्तम ओशोवादी, ऋषि परंपरा में संतों की सोहबत में उत्तम सत्य के शोधार्थी, चिलम, गाँजा, अफीम, मद्य तमाम हलाहल को कंठ में पहुँचा कर अमृत में ढाल देने वाले, और इस वय में वास्को डिगामा की तरह प्रेम की तलाश में निकल पड़ने वाले सुकुमार में जीवन के प्रति उत्कट मोह है।

हालांकि, कुछ समय पहले उनपर दायीं तरफ पक्षाघात का हमला हुआ था किन्तु उसको धता बताते हुए अभी भी उनका स्वच्छंद जीवन जारी है।

अभी उनकी आयु मात्र 69 वर्ष की ही है किन्तु अभिलाशाएँ किशोरावस्था की दहलीज पर कसमसाती हैं।

मुलाक़ात बहुत आत्मीय रही। उनका, चरण स्पर्श करके अभिनंदन किया।

उनके बहुत सारे पुराने चित्रों को मोबाइल पर

एकमात्र दिल्ली ब्यूरो चीफ
शिखरवार्ता 1985

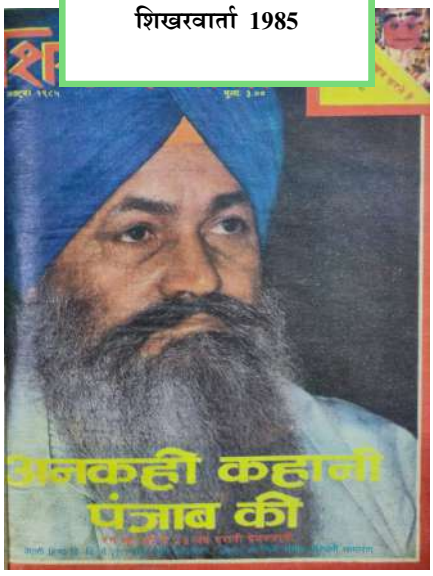

लिया।

उन्हों ने अपने घर पर काम करने वाले अनुज को बुला लिया, उसने बहुत अच्छी चाय बनाई।

हम फिर बातचीत में उलझ गए।

एक बजे के लगभग उन्हों ने दोपहर का खाना बनाने केलिए फिर अनुज को फोन लगाया। वह अपने घर गया ही नहीं था, बगल के कमरे में ही सो रहा था। उठ कर आया तो सुरेन्द्र जी ने उसे खाना बनाने केलिए कहा।

धुली हुई उरद की दाल और बैंगन का भर्ता उसपर (हथपोई) जिसे पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पानी रोटी कहते हैं, अनुज ने बनाई।

बहुत ही स्वादिष्ट भोजन के उपरांत हम फिर बातचीत में लग गए।

मैंने उन्हें अपना उपन्यास मौत का सन्नाटा प्रदान किया।

सौभाग्य प्रकाशन से गत माह प्रकाशित उपन्यास 'मुआवजा' - लेखक श्री रवीन्द्र कान्त त्यागी, कथा संग्रह 'मेरा कोना' लेखिका सुश्री इन्दु सिन्हा 'इन्दु', कविता संग्रह 'जीवन उल्लास' कवयित्री सुश्री डॉक्टर सत्या सिंह की प्रतियाँ भी उन्हें पढ़ने केलिए प्रदान कीं।

ढाई

एकमात्र दिल्ली ब्यूरो चीफ
शिखरवार्ता 1985

बजे

अनुज, मोटरसाइकिल से मुझे छजारसी चौराहे पर छोड़ गए जहां से मैं अलीगढ़ रेलवे स्टेशन पहुँच गया।

अपराहन साढ़े तीन बजे आनंद विहार से चली नीलांचल, अलीगढ़ स्टेशन पर आ लगी थी।

कानपुर से आनंदविहार की ट्रेन का सही समय शाम 4.10 का था किन्तु अलीगढ़ से 15 किलोमीटर पहले ही ट्रेन 2 घंटे किसी बाधा के चलते खड़ी रही।

रात सवा आठ बजे आनंद विहार स्टेशन सकुशल पहुंचे।

सुरेंद्र सुकुमार के समस्त कथा संसार को तीन खंडों तथा अनुभवों की शृंखला आत्मकथ्य शैली में सौभाग्य प्रकाशन शीघ्र पाठकों तक ले कर आएगा। कुछ कहानियाँ टाइप हो गई हैं, कुछ पर काम चल रहा है।

कुछ कहानियाँ उनकी पुत्री के पास गुरुग्राम में हैं जिसे उन्हों ने मुझे कूरियर करवाने का आश्वासन दिया है।

श्री सुरेन्द्र सुकुमार दीर्घजीवी हों, स्वस्थ रहें ऐसी शुभकामना है।

अग्निहाने

जो बात मैं कहने जा रहा हूँ आप भले ही उसे कहानी समझें पर कहानी नहीं है एक सत्य घटना है अब स्वाभाविक है आप पूँछेंगे कि सत्य घटना मैं क्यों सुना रहा हूँ ?

तो इसके उत्तर में मैं क्या कहूँ ?

यों समझ लीजिए कि अपने मन का बोझ हल्का कर रहा हूँ आप सुन लें तो कृपा होगी और किसी को तो सुना भी नहीं सकता डर लगता है मैं ही क्या उनसे तो सभी डरते हैं मेरे गाँव के ही क्या शहर के भी प्रभाव भी तो बहुत है उनका सत्ता में भी उनका प्रभाव है इसीलिए कल जब शहर के स्थानीय समाचार पत्र में यह घटना प्रकाशित कराने गया तो उसने साफ इनकार कर दिया कहने लगा " भाई क्या पेपर बंद हो बाओगे "

वैसे तो वो घटना मेरे गाँव के अधिकतर व्यक्तियों ने देखी है पर किसी ने किसी से उसकी चर्चा नहीं की है आप भी किसी से नहीं कहें कहीं उनके कानों में भनक पड़ गई तो- बाप रे बाप सड़ाक सड़ाक कोड़े पड़ेंगे पीठ पर जैसे दुल्लन की पीठ पर पड़े थे

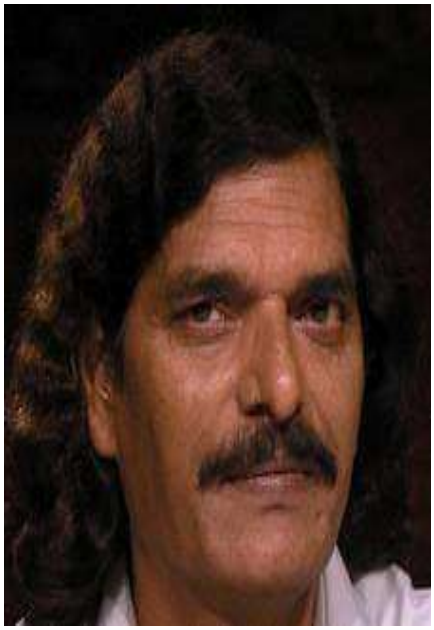

आप सोच रहे होंगे कि मैं क्या बके जा रहा हूँ ? अनेक प्रश्न आपके मस्तिष्क में उभर रहे होंगे

जैसे ....

दुल्लन कौन है ? उसकी पीठ पर कोड़े क्यों पड़े ? किसने मारे ?

वह कौन है जिनका इतना भय व्याप्त है ?

वह घटना क्या है जिसे मैं सुनाना चाहता हूँ ?

अच्छा तो पहले मैं यह बता दूँ कि दुल्लन कौन है ? उसकी पीठ पर कोड़े क्यों पड़े ? नहीं यदि पहले मैं यह बता दूँ कि वो कौन हैं जिनका भय इतना व्याप्त है तो ठीक रहेगा

तो सुनिए वो हैं मेरे गाँव के भूतपूर्व ज़िमीदार साहब के वारिस नाम नहीं लूँगा वैसे सब उन्हें कुंवर साहब कहते हैं दो भाई हैं बड़े को बड़े कुंवर साहब छोटे को छोटे कुंवर साहब कहते हैं उनके बारे में कुछ भी बताऊँ उससे पहले

मेरे गाँव की सही सही स्थिति के बारे में सुनिए

मेरा गाँव शहर से पाँच किलोमीटर दूर एक मेन रोड पर स्थित है गाँव की आबादी मुश्किल से एक हजार होगी गाँव के अधिकतर मकान कच्चे हैं बीच में कुंवर साहब की पक्की हवेली गरीबी की उपहास उड़ाती सी खड़ी है इस गाँव में पहले एक ज़िमीदार थे करीब दो हजार बीघे खेती के मालिक अंग्रेजों की कृपा से रायबहादुर का घिताब मिला सब राजा साहब कहने लगे ये सब बातें में संछेप में सुना रहा हूँ क्योंकि मुझे पूरी घटना भी सुनानी है सम्भवतः आपके पास समय कम होगा

हाँ दुर्भाग्य से राजा साहब के कोई संतान नहीं हुई तो उन्होंने अपना वारिस अपने दूर के भतीजों को घोषित किया और चल बसे

भतीजों ने इतनी बड़ी जागीर पहले कभी नहीं देखी थी पर मेरे विचार से उन्होंने ज़िमीदार टाइप के पिक्चर अवश्य देखे होंगे एवं उसी टाइप के उपन्यास पढ़े होंगे

जागीर मिलने पर कुंवर साहब कहलाने लगे छोटे कुंवर साहब घर पर ही रहते हैं और बड़े कुंवर साहब सत्ता दल से सम्बंधित होने के कारण कभी लखनऊ कभी दिल्ली रहते हैं कभी कभी आते हैं

मैं कह रहा था कि उन्होंने ज़िमीदार टाइप के पिक्चर देखे होंगे उपन्यास पढ़े होंगे यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि उनके कार्यकलापों से ऐसा प्रतीत होता है जब कुंवर साहब व उनके घरों की कन्याएं कोई भी शाम को घोड़े पर बैठ कर हाथ में बंदूक लेकर निकला करते हैं तो उनकी आँखों में वही चमक होती है जैसी मैंने पिक्चरों में ज़िमीदारों की आँखों में देखी है उनकी आवाज़ में भी वही कड़क होती है जैसी ज़िमीदार टाइप के पिक्चर या उपन्यास के हीरो की आवाज़ में होती है वो स्वयं को उसी ढंग से निभाने की कोशिश करते हैं अत्याचार भी वैसा ही करते हैं उनकी पहुंच बहुत दूर तक है इसलिए सामान्य व्यक्ति उनसे डरते हैं

अब मैं आपको दुल्लन वाली बात बताऊँ दुल्लन हमारे गाँव का एक मात्र धोबी है सभी के कपड़े वही धोता है कुंवर साहब के कपड़े भी सालाना कुछ नाज के एवज में धोता है चार बच्चे हैं एक औरत एक बूढ़ा बाप है है नहीं था

जिस दिन यह घटना घटी जो मैं आपको सुनाऊंगा उसके तीन दिन पहले दुल्लन की बकरी कुंवर साहब के खेत में चली गई थोड़ा नुकसान भी कर दिया फिर क्या था कुंवर साहब ने दुल्लन को बुलबा भेजा दुल्लन का बाप भी साथ में गया

दुल्लन के बाप ने लाख कहा साहब मारिए नहीं जुर्माना कर दीजिए पर उसकी एक न सुनी उसी के सामने दुल्लन की पीठ पर कोड़े बरसने लगे सड़ाक एक .. सड़ाक दो ...सड़ाक तीन ... चार पाँच और न जाने कितने ?

दुल्लन के बाप से न देखा गया और वो उसी

दिन गाँव छोड़ कर चला गया आज तक नहीं आया

किसी ने भी दुल्लन को यह सलाह नहीं दी कि थाने में रिपोर्ट कर दे क्योंकि सभी जानते हैं कि दरोगा एस पी का अक्सर उनके यहाँ आना जाना खाना पीना होता है

मैंने दबी ज़ुवान से कहा था कि कुंवर साहब के कपड़े धोना बंद कर दे तो उसने कहा " भइया क्या कह रहे हो ताल पर कपड़े धोना भी बंद करवा देंगे " मैं यह भूल गया था कि गाँव का एक मात्र तालाब भी उनके अधिकार में है अब आप ही बताइए है न उनका भय स्वाभाविक ?

हाँ तो अब मैं असली घटना पर आऊँ यह घटना दुल्लन वाली घटना के तीन दिन बाद घटी

घटना से पहले मैं यह बताऊँ कि यह घटना किसके साथ घटी ? वो कौन थे ? कहाँ से प्रारंभ करूँ ?

पंचायत घर से ? या अगिहाने से ?

अगिहाने से ही प्रारंभ करता हूँ

अगिहाने को आपके यहाँ क्या कहते हैं ? नहीं जानता पर हमारे यहाँ अगिहाना ही कहते हैं हाँ कहीं कहीं अलाव भी कहते हैं पर इतना बताऊँ कि अगिहाना गड्ढा खोद कर बनाया जाता है और उसमें आग जलाई जाती है सर्दी की रात्रि में काफ़ी काफ़ी देर रात गए तक उस जलती आग के पास बैठते हैं और तापते हैं

जिस दिन दुल्लन वाली घटना घटी उसी दिन रात्रि में हम कई लोग अगिहाने के पास बैठ कर ताप रहे थे शाम का झुटपुटा हो गया था दुल्लन वाली घटना से सभी दुखी बैठे थे तभी दूर से कुछ व्यक्ति आते दिखाई दिए नज़दीक आने पर देखा उनमें एक बूढ़ा था उसके साथ करीब अठारह वर्ष की एक लड़की एक ज़वान लड़का एक ज़वान औरत एक करीब बारह वर्ष का लड़का था कुल मिलाकर पाँच प्राणी थे सामान के नाम पर उनके पास कुछ पोटलियाँ थीं बस वेशभूषा से वो मुसलमान लग रहे थे

वे लोग अगिहाने के पास खड़े हो गए

भइया कहीं रात में रुकने को जगह मिल सकती है ? बूढ़े ने प्रश्न किया वे लोग सर्दी से ठिठुर रहे थे

कुछ उत्तर देने से पहले मैंने कहा - अगिहाने पर बैठ लो ठंड लग रही होगी वे लोग जैसे इस प्रतीक्षा में ही थे हम लोगों ने स्थान बनाया और वे बैठ गए

वार्तालाप के दौरान पता चला कि वे लोग गरीबी से परेशान होकर अपना गाँव छोड़ कर मजदूरी करने निकले हैं

ज़वान लड़का बूढ़े का बड़ा पुत्र ज़वान औरत लड़के की पत्नी ज़वान लड़की बूढ़े की पुत्री और वो छोटा लड़का बूढ़े का छोटा पुत्र था

रात को कहीं सर छुपाने की जगह मिल जाती सरकार ? बूढ़े की आँखों में प्रश्न चिह्न था मुझे उनकी स्थिति देख कर दया आ गई मैंने उन्हें अपनी रिस्क पर पंचायत घर के बरामदे में रुकने को कह दिया

पंचायत घर में छोड़ कर जब मैं चलने को

हुआ तो इंसानियत के नाते पूछा - खाने का सामान है आपके पास ?

बूढ़ा तत्काल बोला - है सरकार सब है रोटियां पड़ीं हैं खा लेंगे

मुझे उसकी आवाज़ कहीं दूर से आती सी लगी तभी छोटा लड़का बोला - नहीं अब्बा झूठ बोल रहे हैं हमारे पास कोई रोटियां बोटियां नहीं हैं हम लोगों ने कल से खाना नहीं खाया है

चुप रह हरामजादे मुझे खाले बूढ़े ने अकड़ कर बच्चे को डाटा

मैंने कहा " बाबा क्यों डांटते हो बच्चा भूखा है तो कहेगा नहीं " चलो बेटा मेरे साथ चलो मैं तुम्हें खाना खिलाऊंगा यह जानते हुए भी कि पूरा परिवार भूखा है मैंने उस बच्चे से ही कहा

मैं बच्चे को बुला लाया और खाना खिलाया यह जानते हुए भी कि पूरा परिवार भूखा सोएगा पर क्या करता मैं तो खुद ही ....?

मुझे पूरी रात छटपटाहट रही न जाने कब आँख लग गई प्रातः देर से उठा उठते ही पंचायत घर गया वे वहाँ नहीं थे लोगों के द्वारा पता चला कि कुंवर साहब की हवेली पर काम से लग गए हैं

काम क्या था ?

पुरानी हवेली की एक कच्ची दीबार को खसाना और उसकी मिट्टी को आधा फर्लांग दूर एक गड्ढे में डालना

शाम को उन्हें पंचायत घर में स्थान नहीं मिला मैंने उन्हें अपने कमरे के दालान में रुकने को कह दिया वही उन्होंने ईंटों का चूल्हा बना कर रोटी बनाने का कार्य प्रारंभ कर दिया तभी मेरा वार्तालाप प्रारंभ हो गया मुझे ज्ञात हुआ कि कुंवर साहब का काम ठेके पर तय हुआ है उतना सब काम पचास रुपये में तय हुआ है मैं चौंका यह काम तो कम से कम दोसो रुपये का था इन बेचारों को तो काफ़ी दिन लग जाएंगे

मुझे न जाने क्यों उस परिवार से सहानुभूति होने लगी

दोपहर खाना खाया था ? मैंने प्रश्न किया

नहीं सरकार हम लोग तीन साल से दिन में एक टेम ही खाते हैं पहले जरूर कुछ गुड़गुड़ी लगती थी पेट में पर अब आदत हो गई है बूढ़े ने कहा

मुझे अपने गले में कुछ फंसा फंसा सा लगा मैं अकारण खखारने लगा

रात्रि में प्रकाश के लिए मैंने उन लोगों को मिट्टी के तेल की एक ढिबरी देदी और मैं कमरे में सोने चला गया

मेरे कमरे की खिड़की उसी दालान में खुलती है जिसमें वे ठहरे थे काफ़ी रात तक मैं उनके विषय में सोचता रहा तभी मुझे कुछ कुनमुनाहट सुनाई दी मैं अपनी जिज्ञासा न रोक सका खिड़की खोल कर उसके सहारे खड़ा हो गया मैंने देखा बूढ़े की लड़की और छोटा बेटा पास पास सो रहे थे बूढ़ा अलग एक कोने में टखनों को पेट में छुपाए पड़ा था ज़वान लड़का और उसकी पत्नी कुछ फासले से अलग अलग लेटे थे तभी मैंने सुना छोटा लड़का अपनी बहन से कह रहा था - आपा थोड़ा चुपट जाओ न ठंड लग रही है

लड़की ने उसको चिपटा लिया

थोड़ा और कसके चिपटो न - लड़का फिर बोला

लड़की ने और कस के चिपटा लिया

थोड़ा और कस के बहुत ठंड लग रही है

लड़का फिर घिघयाया अब क्या करूँ जा अगिहाने के पास लेट जा लड़की ने कहा और जैसे यह प्रस्ताव लड़के को जंचा वो उठा और अगिहाने के पास लेट गया कुछ चीथड़े अपने ऊपर डाल लिए अगिहना अब भी सुलग रहा

था मैंने देखा अगिहाने के पास कुछ कुत्ते लेटे हुए थे पहले तो वो गुर्राए फिर चुप हो गए सम्भवतः समझ गए होंगे उन्हीं की बिरादरी का है

तभी मेरी दृष्टि लड़के की बहू पर पड़ी उसकी अंगिया लगभग फ़टी थी वो प्रायः अर्धनग्न पड़ी थी उसे देख कर मुझे कुछ भी महसूस नहीं हुआ जबकि छोटे कुंवर साहब की पत्नी का बड़े गले का ब्लाउज देख कर शरीर में एक लकीर सी खिंच जाती है

बहुत देर हो गई बकते बकते सम्भवतः आप बोर हो गए होंगे इसलिए घटना पर आता हूँ

हुआ यह कि वो काम कर के सो गए उसी रात कुंवर साहब की घोड़ी खो गई दिन भर तलाश किया नहीं मिली तब कुंवर साहब ने यह परिणाम निकाला हो न हो यही लोग चोर हैं इन्हीं लोगों ने किसी तरह घोड़ी गायब करबाई है

फिर तो कुंवर साहब ने बूढ़े को उसके लड़के को बच्चे को यानिकि पूरे परिवार को बुरी तरह पीटा और रात भर हवेली में कैद रखा

दूसरे दिन कुंवर साहब ने पुलिस बुलाई दारोगा जी पूरे परिवार को थाने यह कह कर ले गया कि " पूछताछ " करेंगे

हवेली से जब वह परिवार निकल कर जा रहा था तो दृश्य देख कर मेरे रोंगटे खड़े हो गए बूढ़ा और उसका लड़का लगड़ा रहे थे लड़के की बहू और छोटा लड़का रो रहे थे पर लड़की चुप थी एकदम चुप चाल में कुछ लड़खड़ाहट थी पूरे परिवार ने भरे नेत्रों से मुझे देखा पर लड़की ने एक बार भी नहीं

मैं सबकुछ समझ गया था

एक हूक सी मेरे मन में उठी वहाँ खड़ा रहना मुझे दुष्कर कार्य जान पड़ा और मैं वहाँ से हट गया

दूसरे दिन कुंवर साहब की घोड़ी पास के गाँव में मिल गई किसी तरह अपने आप खुल गई थी उसी दिन वो पूरा परिवार थाने से लौटा अपनी पोटलियाँ लेने

वह दृश्य दिल दहलाने वाला था गाँव के बहुत से लोग एकत्रित थे बूढ़े का परिवार लड़खड़ाता हुआ फटेहाल आ रहा था सभी के चेहरे पर आंसुओं की खुश्क लकीरें थीं पूरे गाँव में मुर्दानी छाई हुई थी किसी का साहस उनसे कुछ भी पूछने का नहीं हुआ पूरा परिवार थाने में हुई " पूछताछ " के बाद लौटा था

वह और नज़दीक आए

मैंने देखा गौर से देखा लड़की के गालों पर खरोंच के निशान थे आँखें सूजी हुई थीं दोनों आँखें लाल थीं एकदम लाल मुझे लगा ये आँखें नहीं दहकते हुए अगिहाने हैं आज किसी को भी ठंड नहीं लगेगी मैं फुसफुसा उठा

वे लोग नज़दीक आए दालान से अपनी पोटलियाँ उठाईं और चल दिए जिधर से आए थे उधर ही

- सलाम सरकार ! बूढ़े ने चलते समय कहा

इस बार उसका सरकार कहना चुभ गया

- सरकार मैं नहीं हूँ सरकार कुंवर साहब हैं सरकार दरोगा जी हैं मैं बड़बड़ाया

चलते समय मैंने एक बार फिर उस लड़की की ओर देखा - उसकी आँखें अब भी मुझे अगिहना लग रही थीं

और उसकी गर्माहट से मेरा रोयां - रोयां झुलसा जा रहा था .

□□ **सुरेन्द्र सुकुमार**

सुरेन्द्र

सुकुमार

खरेपन का ठसकदार व्यक्तित्व- श्री सुरेन्द्र सुकुमार जी

डॉ कीर्ति काले

जहाँ तक मुझे याद है श्री सुरेन्द्र सुकुमार जी के प्रथम दर्शन सन्1991- 1992 में सतना मध्यप्रदेश में आयोजित कवि सम्मेलन में हुए थे। मैं तब नवोदित कवयित्री थी। ग्वालियर की साहित्यिक गोष्ठियों की भट्टियों में तपकर निकलने वाली।कवि सम्मेलनों के खुले रंगमंच पर काव्यपाठ करने के लिए उस समय आमंत्रण आने लगे थे।इन आमंत्रणों में अधिकांशतः ग्वालियर के गोष्ठीजीवी कवियों की अनुशंसा रहती थी। ग्वालियर साहित्य एवं संगीत की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध नगर रहा है।

सतना में वहाँ के राजघराने से सम्बंधित श्रेष्ठ कवि श्री सुमेर सिंह शैलेश जी कवि सम्मेलन आयोजित कराया करते थे। ग्वालियर के

वरिष्ठ हास्य कवि श्री साजन ग्वालियरी जी ने मुझे इस कवि सम्मेलन के लिए आमंत्रित किया। मैं अपने पूज्य पिताजी (श्री सुधाकर रामकृष्ण भागवत जी)के साथ सतना पहुँची।उस समय कवि सम्मेलनों का संसार मेरे लिए लगभग अपरिचित ही था।मेरे परिवार में दूर दूर तक कोई कवि नहीं था। मैं केवल ग्वालियर के कवियों को जानती थी और वो भी केवल औपचारिक तौर पर।गोष्ठी में जाना,सबकी कविता सुनना,अपनी सुनाना और चुपचाप घर वापस आ जाना।इतना ही सम्बन्ध था।

सतना में बहुत से कवि पहली बार दिखे। जैसे श्री गुरू सक्सेना जी,श्री मनोहर मनोज जी और श्री सुरेन्द्र सुकुमार जी आदि।हाँ श्री सुनील जोगी को भी सबसे पहले सतना के

इस कवि सम्मेलन के दौरान ही देखा।उसके बारे में कभी और लिखूँगी।आज श्री सुरेन्द्र सुकुमार जी के बारे में बताती हूँ।

ऊँचा कद,छरहरा बदन, घुंघराले लम्बे बाल।अजीब सी बेचैनी से भरा व्यक्तित्व।जहाँ तक मुझे याद है परिधान में बड़ी मोहरी वाला बैलबॉटम और चैक की शर्ट।अत्यन्त वाचाल।मंच पर कवियों के लिए गाव तकिये की बैठक व्यवस्था थी।सभी यथोचित स्थान पर बैठे थे लेकिन श्री सुरेन्द्र सुकुमार जी निरन्तर पहलू बदल रहे थे।कभी दाँई झुककर बैठते कभी बाँई ओर।कभी मूंछों पर हाथ फेरते,कभी घुंघराले बालों की लटों को ऊंगली से और अधिक गोलगोल करने की कवायद करते।चेहरे पर तनाव, होंठों पर शरारत भरी मुस्कुराहट।बार बार मंच से उठकर जाना फिर आकर बैठ जाना। कुल मिलाकर व्यग्रता,बेचैनी,अन्यमनस्कता का साकार समुच्चय।उस कवि सम्मेलन में एक कहानीनुमा कविता सुनाई "सर्फोकेशन"। कविता अच्छी जमी। श्रोताओं द्वारा पसंद की गई।मुझे भी अच्छी लगी। कार्यक्रम के उपरान्त अगले दिन शैलेश जी के घर सभी कवि जलपान ग्रहण करने एवं ससम्मान बिदाई लेने पहुँचे। मैं भी पिताजी के साथ गई।वहाँ श्री सुरेन्द्र सुकुमार जी लूंगी बनियान पहने दिखाई दिए। उंगलियों में सिगरेट दबी थी।बात बात पर उनके श्रीमुख से असली वाली गालियाँ बेतकल्लुफी से झर झरकर वातावरण में प्रसारित हो रही थीं। उन्हें कोई फरक नहीं पड़ रहा था कि आसपास कौन लोग हैं।वे तो बस धाराप्रवाह बोलते जा रहे थे और समूचे वातावरण को धन्य किए जा रहे थे।।ये प्रथम दर्शन थे।मेरी आदत है कि मैं तुरन्त किसी के बारे में कोई धारणा नहीं बनाती। न तब, न अब।वैसे भी एक व्यक्ति में अनेक व्यक्तित्व समाहित होते हैं। प्रथम दृष्टया ही सुकुमार जी अन्य कवियों से भिन्न लगे। फिर तो अक्सर मंचों पर दर्शन हो जाया करते थे।

कुछ लोग बहुत सोफेस्टीकेटेड होते हैं लेकिन मूल उद्देश्य उनका अत्यन्त घृणित होता है।कुछ सामान्य दिखते हैं और सामान्य होते भी हैं परन्तु कुछ इनसे इतर असामान्य होते हैं।ऊपर से उग्र,अशिष्ट, वाचाल, बेचैन,फक्कड़ और मुँहफट। लेकिन इन पर्तों के भीतर संवेदनशील,जीवन और जगत की अनावृत सच्चाई को जानने वाले,समाज में तेजी से पसरते ढकोसलों के प्रति रुष्ट होते हैं।श्री सुरेन्द्र सुकुमार जी मुझे इन्हीं में से एक लगते हैं।अपने बारे में कोई मुगालता नहीं रखते और न ही अन्य किसी को मुगालते में रहने देते हैं। कौड़ियागंज अलीगढ़ के निवासी हैं। अलीगढ़ तालों के लिए प्रसिद्ध है। तालों की नगरी में रहते हैं परन्तु फिर भी अपने मुँह पर ताला नहीं लगाते।जो मन में आता है वो मन भरकर बोल देते हैं इसकी परवाह किए बिना कि किसी को कैसा लगेगा? लाग-लपेट इनके व्यक्तित्व में है ही नहीं।इस खरी प्रजाति के लोग अब दुनिया में दुर्लभतम हैं।

*

अलीगढ़ में एक बार विशुद्ध गीतों का कवि सम्मेलन आयोजित किया था सुकुमार जी ने। मुझे भी आमंत्रित किया था। मैं नई दिल्ली से गोमती एक्सप्रेस द्वारा अलीगढ़ पहुँचने वाली थी लेकिन उस दिन गोमती एक्सप्रेस आठ घंटे लेट हो गई। उसके बाद कोई ट्रेन नहीं थी। मैंने आदरणीय को वस्तुस्थिति बताई तो उत्तर मिला - "किसी भी साधन से आ जाओ। रात बारह बजे भी पहुँचो तो भी चलेगा लेकिन आना आवश्यक है।"

*

अलीगढ़ में एक बार विशुद्ध गीतों का कवि सम्मेलन आयोजित किया था सुकुमार जी ने।मुझे भी आमंत्रित किया था। मैं नई दिल्ली से गोमती एक्सप्रेस द्वारा अलीगढ़ पहुँचने वाली थी लेकिन उस दिन गोमती एक्सप्रेस आठ घंटे लेट हो गई।उसके बाद कोई ट्रेन नहीं थी।मैंने आदरणीय को वस्तुस्थिति बताई तो उत्तर मिला - "किसी भी साधन से आ जाओ।रात बारह बजे भी पहुँचो तो भी चलेगा लेकिन आना आवश्यक है।"

तभी नई दिल्ली अलीगढ़ शटल ट्रेन आने की उद्घोषणा हुई। मैंने फटाफट टिकट लिया और शटल में बेठ गई। नॉन एसी, अनरिजर्व सिटिंग ट्रेन थी। दिल्ली से तो भीड़ नहीं थी लेकिन रास्ते में डिब्बा ठसाठस भर गया। प्रत्येक छोटे से छोटे स्टेशन पर ट्रेन रुक रही थी। फिर भी रात को ग्यारह बजे मैं अलीगढ़ पहुँच गई। तैयार होकर सीधे मंच पर आ गई। कवि सम्मेलन तब चल रहा था। सुकुमार जी स्वयं हास्य रस के कवि हैं। उनके द्वारा गीतों का कार्यक्रम आयोजित करवाना बहुत मायने रखता है।

फिर तो अलीगढ़ नुमाइश और शाम ए बच्चन सहित अनेक महत्वपूर्ण कवि सम्मेलनों में आमंत्रित किया।

पिछले दिनों स्वास्थ्य कारणों से कष्ट में रहे हैं। सहधर्मिणी के स्वर्गवास के कारण दुखी भी हैं। बहुत दिनों से भेंट नहीं हो सकी है लेकिन सोशल मीडिया की पोस्टों से पता चलता है कि खरेपन की ठसक अभी भी बरकरार है।

ईश्वर आपको ऐसा ही जुझारू बनाए रखे।आप हैं तो बहुतों की बुराईयाँ खोल के भीतर दुबकी रहती हैं। मैं आपके स्वस्थ और दीर्घ जीवन की कामना करते हुए प्रणाम करती हूँ।

डॉ कीर्ति काले, बी,702,न्यू ज्योति अपार्टमेंट सैक्टर 4 प्लॉट नंबर 27 द्वारका, नई दिल्ली पिन 110078 मोबाइल 9868269259

ई-मेल एड्रेस kirti_kale@yahoo.com

सुरेन्द्र सुकुमार - एक प्रभंजन, एक पारावार

- डा. शिव ओम अम्बर

प्रभंजन का अर्थ होता है विध्वंसक वायु-विवर्त और पारावार का अर्थ है सभी दिशाओं से आने वाली धाराओं का सौहार्दमय स्वागत और समाहार। इन दोनों ही विरोधी शक्तियों का समन्वय-बिन्दु है सुरेन्द्र सुकुमार। व्यंग्यकार होने के नाते समाज में जो भी विरूपता है, राजनीतिक परिक्षेत्र में जो भी विडम्बनाएँ हैं उन पर तीक्ष्ण प्रहार करना उसका कर्तव्य भी है और अधिकार भी। दूसरी ओर, एक संवेदनशील कथाकार, एक सक्षम ग़ज़लगो और एक अभिनव अभिव्यंजनाओं वाले गीतकार के रूप में वह भावनाओं का प्रशान्त महासागर है जिसमें सत्यं शिवं सुन्दरम् के पूर्ण चन्द्र को देखकर आह्लाद का

ज्वार जागता है। जब तक आप उसके बहुत निकट न हों, उसके इन सभी रूपों से परिचित नहीं हो सकते। सामान्य रूप से वह काव्य-मंच पर अपने रस के एक अधिनायक कवि के रूप में जाना जाता है जो संगोष्ठियों से लेकर प्रदर्शनियों तक के जनसमूह को सम्मोहित करने की क्षमता रखता है, करतल ध्वनियों को उत्पन्न कराने का बीज-मंत्र है और किसी भी काव्य-मंच की सफलता की प्रतिश्रुति है। न जाने कितनी बार उसे काव्य-पाठ के लिए आवाज़ देते हुए मैंने कहा है - मैं आपके सामने उस व्यक्तित्व को बुला रहा हूँ जो अपने आप में हास्य की मखमली म्यान में रखी हुई व्यंग्य की धारदार कटार है, जो कथानकों से जुड़े कहकहों का कोषागार है, जो व्यंग्य के विश्वविद्यालय का मूलाधार है, जो सुरेन्द्र है, जो सुकुमार है।

मेरी कुछ डायरीज़ प्रकाशित हुई हैं, उनमें से एक है - अनुष्टुप्। उसमें मैंने कभी-कभी अपने कुछ मित्रों के विषय में बिन्दु-बिन्दु रूप में लिखा है। सुरेन्द्र सुकुमार से सम्बन्धित बिन्दु यहाँ दे रहा हूँ -

1. सुरेन्द्र तब बी.एस.सी. कर रहे थे जब मैं गंजडुण्डवारा से बी. एड्. कर रहा था। उस दौरान उनसे कोई परिचय नहीं हुआ। पहला परिचय तब हुआ जब मैं कासगंज की एक कवि-गोष्ठी में गया हुआ था।

2. धीरे-धीरे यह परिचय मित्रता और घनिष्ठता में बदला। कवि-सम्मेलनी शब्दों में कहूँ तो वह मेरे अनन्य, वन्य और जघन्य मित्र हैं। मेरे बच्चों के सामने मेरी कमियाँ बताने का, मुझे प्यारभरी गाली देने का उन्हीं को अधिकार है।

3. मंच पर वह एक हास्य-व्यंग्य के कवि के रूप में नायक की भूमिका में रहे हैं, अपार लोकप्रियता प्राप्त की है किन्तु वस्तुतः वह एक बहुत समर्थ कहानीकार और ग़ज़ल-गीत लेखक भी हैं।

4. उनकी कहानियाँ ''धर्मयुग'' में और उनकी ग़ज़लें ''सारिका'' में बहुत सम्मान के साथ प्रकाशित होती रही हैं। वह ओशो के समय में उनके आश्रम में काव्य-पाठ करने गये हैं, उनके साथ चित्र खिंचवाये हैं।

5. बच्चन जी की स्मृति में हुए पहले कवि-सम्मेलन में वह मुझसे संचालन करवाना चाहते थे किन्तु मैं उन दिनों गीतू की शादी में जयपुर में था। उनके पास कार्यक्रम में उपस्थित अमिताभ बच्चन का सराहना भरा पत्र आया था। उन्होंने वस्तुतः एक नायक की भूमिका जी है।

6. जब उनकी एक व्यंग्य-कविता पर विक्षुब्ध होकर एक अंध जड़वादी मुस्लिम युवक ने उनके घर आकर धोखे से उन्हें बाहर बुलाकर उन पर गोली चला दी थी, उन्होंने अपने होशहवास सुरक्षित रखते हुए स्वयं अस्पताल तक जाने की हिम्मत जुटाई थी। उसके बाद तो सारा प्रशासन और साहित्य जगत् सक्रिय हो गया था और ईश्वर की कृपा से वह सकुशल पुनः जीवन में आ गये।

7. उस समय चिक्कू अलीगढ़ में ही था। मैं और अलका सुकुमार को देखने उनके घर गये

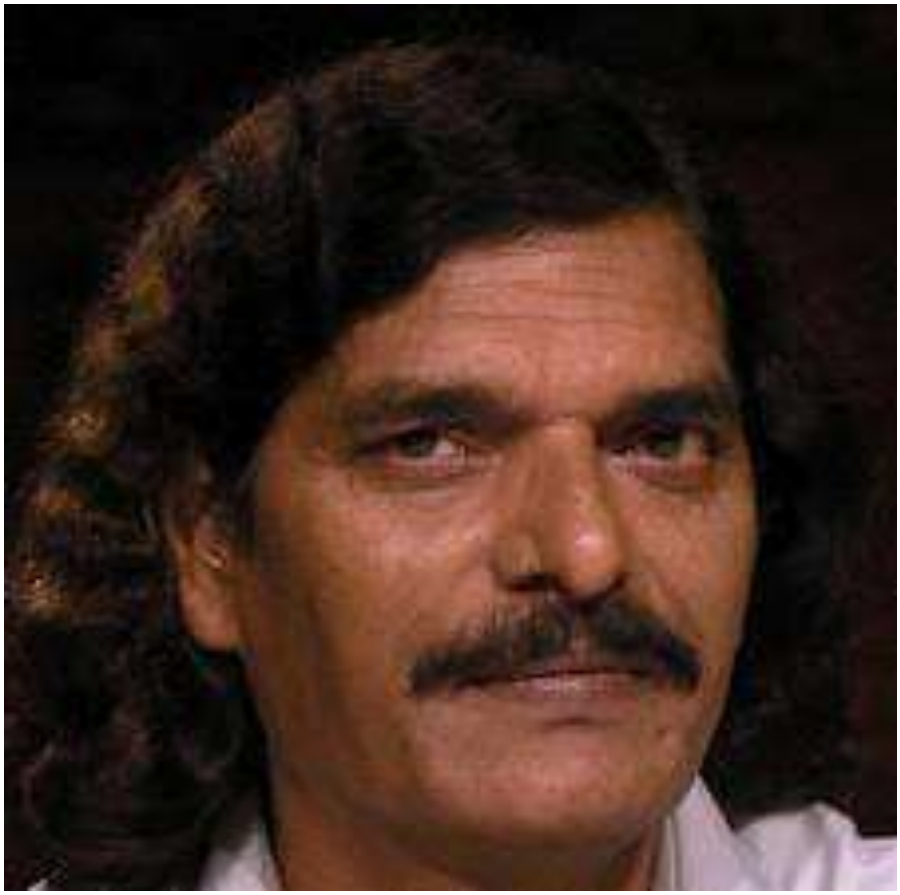

थे। वह मृत्यु के क़रीब से गुज़रने के इस वाकये को पूरे आनन्द से बयान कर रहे थे और बिल्कुल भी विचलित नहीं थे।

8. उनके एक ही पुत्री है। पुत्र नहीं है किन्तु इसका उन्होंने कभी भी उदास भाव से ज़िक्र नहीं किया। पत्नी की मृत्यु के बाद वह एकदम टूट गये और पक्षाघातग्रस्त हो गये। उस समय उनकी पुत्री और दामाद ने उनकी बड़ी सेवा की।

9. धीरे-धीरे स्वस्थ होकर वह पुनः अलीगढ़ आ गये और अब मंचों पर तथा चैनलों पर भी सक्रिय हो उठे हैं। उत्कर्ष बताता है कि वह फ़ेसबुक पर भी अबाध रूप से आते रहे हैं, आते रहते हैं। मुझसे उन्होंने कई बार इस दिशा में सक्रिय होने के लिए कहा किन्तु मैंने कहा कि मुझे अब एकान्त ही अच्छा लगता है। शायद अब वह मेरी प्रकृति को समझ लेने के कारण आग्रह नहीं करते। मेरे एक दूसरे मित्र डा॰ रोहिताश्व अस्थाना ने अपने घर का नाम ''ऐकान्तिका'' रख रखा है, मैं अपने कक्ष में उसी संज्ञा की स्वस्ति को जीता रहता हूँ।

10. उनकी कुछ पंक्तियाँ -

(1.)

जब अक्षरों के बोझ को ढोया नहीं गया,

तब हाशिये पे आ गये पृष्ठों को छोड़कर।

(2.)

माँग लेगा रंग सूरज एक दिन अपने सभी,

एक तितली रात भर इस खौफ़ से सोती नहीं।

आदमी ही सिर्फ़ मुस्तक़बिल के पीछे भागता,

कोई चिड़िया कल की चिंता में कभी रोती नहीं।

मेरी डायरी का उपर्युक्त पृष्ठ सुरेन्द्र के बहुआयामी व्यक्तित्व का एक अतिसंक्षिप्त निरूपण मात्र है। उनके कवि, कथाकार, व्यंग्यकार रूपों को विस्तृत चर्चा की अपेक्षा है। उन पर अनेक पुस्तकें लिखी जा सकती हैं, लिखी जानी चाहिए। यहाँ इस संक्षिप्त लेख में मैं उनकी ऊपर उद्धृत कविता-पंक्तियों पर एक टिप्पणी करना समीचीन समझता हूँ।

अपने पहले शे'र में वह जिस दृश्य को रूपायित करते हैं वह मुझे हिन्दी की वाचिक कविता के मंच का परिदृश्य याद दिलाता है। कवि का कर्तव्य है कि वह अक्षरों की पताका को लहराते हुए मंच पर सकारात्मकता की सर्जना करे किन्तु जब

(1.)

जब अक्षरों के बोझ को
ढोया नहीं गया,

तब हाशिये पे आ गये पृष्ठों
को छोड़कर।

(2.)

माँग लेगा रंग सूरज एक
दिन अपने सभी,

एक तितली रात भर इस
खौफ़ से सोती नहीं।

आदमी ही सिर्फ़
मुस्तक़बिल के पीछे
भागता,

कोई चिड़िया कल की
चिंता में कभी रोती नहीं।

व्यक्तित्व कमजोर पड़ जाता है तो पताका बोझ लगने लगती है। कुछ लोग अपने समस्त आत्मबल को संचित करके उसे उठाये रखते हैं किन्तु अधिकांश सुविधाभोगी प्रकृति को जीते हुए स्वयं रणक्षेत्र के मध्य भाग से दूरी बनाकर सुरक्षित किनारे पर आ जाते हैं और किसी तरह अपनी उपस्थिति बनाये नहीं रखते, बचाये भर रखते हैं। सुरेन्द्र सुकुमार की पंक्तियाँ उन्हें आईना दिखाती हैं। उनके पास शब्दों की चमक मात्र होती है, व्यक्तित्व की दमक नहीं।

सुरेन्द्र सुकुमार के ऊपर उद्धृत दूसरे अशआर शाश्वत जीवन-दर्शन के ज्योतिषमन्त सूत्रों को प्रस्तुत करते हैं। समय का सूर्य चेतना की तितली को इन्द्रधनुष के रंग देता भी है और एक दिन ले भी लेता है। जीवन के प्रति अनासक्त भाव सामान्य व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं होता अतः वह जो प्राप्त है उसके भविष्य में छिन जाने की आशंका में वर्तमान को भी जागरणरहित कर लेता है। सुरेन्द्र की पंक्ति व्यक्ति को अपने वर्तमान को पूरी सक्षमता के साथ जीने का संदेश देती है। यही ओशो की देशना भी है।

अगर गंभीरतापूर्वक चिंतन किया जाये तो वास्तविक समय केवल वर्तमान है। अतीत और भविष्य हमारी स्मृति और स्वप्न के अंश हैं जिनसे जुड़े रहकर हम वर्तमान को कभी जी ही नहीं पाते। यहाँ कवि का संकेत है कि जिसके पास आकाश में उड़ान भरने की सामर्थ्य वाले पंख हैं वह धरती के विद्रूप भाव से कभी भी ऊपर उठ सकता है, चिंताएँ उसे पराभूत नहीं कर सकतीं। आदमी के पास भी अंतःशक्ति के पंख हैं किन्तु वह उनसे अनजान है और इसी कारण तनावग्रस्त तथा हर पल बेकल। हर श्रेष्ठ रचनाकार की तरह कवि सुरेन्द्र सुकुमार भी सत्यं शिवं सुन्दरम् का उद्गाता है और अनायास उसकी अभिव्यक्तियों में व्यक्ति में अन्तर्निहित ऊर्जा के जागरण की पुकार समाहित हो जाती है।

सुरेन्द्र सुकुमार के साथ अनेक यात्राएँ हुई हैं। घर पे अति आत्मीय क्षणों में उसके साथ सुख -दुःख की चर्चा हुई है।

मैं उसकी मंचीय सफलताओं पर आनन्दित होता हूँ, उसकी कथाओं में डूबता हूँ, उसकी कविताओं के प्रति श्रद्धानत हूँ, उसके व्यक्तित्व की कुछ मानवीय कमज़ोरियों के बावजूद उसकी आध्यात्मिक दृष्टि और उसकी संवेग-सृष्टि का उन्मुक्त उच्चारण भी हूँ और स्नेहक्रीत चारण भी।

एक बिंदास बेलौस फ़क्कड़ इंसान सुरेन्द्र सुकुमार

सोम ठाकुर

सुरेन्द्र सुकुमार से हमारी पहली मुलाक़ात सन 1973 में सिकन्दराराऊ में हुई थी तब वो बमुश्किल तमाम 19 वर्ष के थे।

6 फिट लंबे इकहरा वदन काले लंबे घुंघराले बाल कुल मिलाकर प्रभावशाली व्यतित्व उन्होंने मंच पर एक कबीराना अंदाज़ का गीत सुनाया था हमें गीत बहुत ही अच्छा लगा था हमने उनसे एक और गीत सुनाने का आग्रह किया उन्होंने एक गीत और सुनाया वो भी सूफ़ियाना अंदाज़ का गीत था, हम उनसे मिलना चाहते थे पर कवि सम्मेलन के बाद वो चले गए हमें भी आगरा जाना था सो हम स्टेशन पर आ गए स्टेशन पर हमने देखा कि कुछ कुली आग के पास बैठ कर ताप रहे थे

6 फिट लंबे इकहरा वदन काले लंबे घुंघराले बाल कुल मिलाकर प्रभावशाली व्यतित्व उन्होंने मंच पर एक कबीराना अंदाज़ का गीत सुनाया था हमें गीत बहुत ही अच्छा लगा था हमने उनसे एक और गीत सुनाने का आग्रह किया उन्होंने एक गीत और सुनाया वो भी सूफ़ियाना अंदाज़ का गीत था, हम उनसे मिलना चाहते थे पर कवि सम्मेलन के बाद वो चले गए

सर्दी के दिन थे हम भी वहाँ पहुंच गए हमने देखा कि सुरेन्द्र सुकुमार पहले से वहाँ बैठे थे और बहुत बेतकल्लुफ होकर उन लोगों से बात कर रहे थे हम भी एक ईंट पर वहीं बैठ गए उन्हें भी कासगंज जाना था और हमें आगरा दोनों की ट्रेन आने में समय था सो हम लोग बातचीत करने लगे और उस दिन जो बातचीत हुई वो आत्मीयता में बदल गई जो आजतक बरक़रार है हमने उन्हें आगरा घर पर आने का आमंत्रण दिया और एक दिन वो आ ही गए तब हमारी माँ भी जीवित थीं।

घर में चार बेटियाँ दो पुत्र थे उन्होंने कुछ ही समय में सबका मन मोह लिया उस रात वो घर पर ही रुके।

सुबह जाते समय अम्मा के हमारी पत्नी के हमारे पैर छुए हमारी पत्नी ने कहा कि "लाला

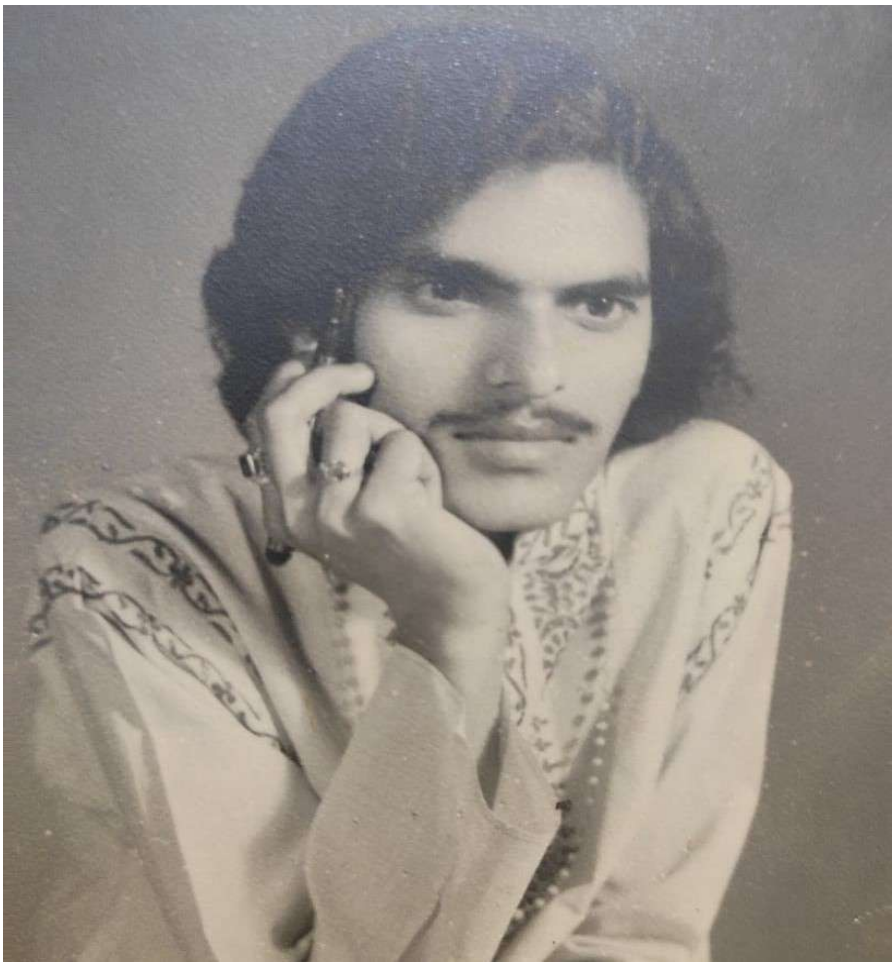

फिर जल्दी आना"।

फिर एक दिन पता चला कि सुरेन्द्र मंच हास्यव्यंग्य पढ़ने लगे हैं और बहुत ही जमने लगे हैं।

उनके हास्यव्यंग्य इतने जबरदस्त हैं कि सत्ता तक तिलमिला उठे उनकी कविताएँ आम आदमी के पक्ष में और शोषक के विरोध में होती हैं वो स्वभावतः विचारधारा से कम्युनिस्ट हैं फिर तो सुरेन्द्र हमें कवि सम्मेलनों में खूब मिलने लगे हम भी उन्हें खूब रिकमेंड करने लगे।

फिर तो यह हुआ कि श्री उदयप्रताप जी हम और सुरेन्द्र की एक तिकड़ी बन गई और पूरे देश में खूब ही जाने लगे।

धीरे धीरे सुरेन्द्र हमारे घर के सदस्य बन गए हम भी उनके घर जाने लगे और सुरेन्द्र भी हमारे घर आने लगे।

इस बीच सुरेन्द्र ने लव मैरिज कर ली उनकी पत्नी सुधा बहुत ही सुशील संस्कारवान कर्मठ लड़की थी थी हम इसलिए लिख रहे हैं क्योंकि अब वो इस दुनियाँ में नहीं हैं।

सुरेन्द्र स्वभाव से बेहद स्वाभिमानी हैं किसी भी लाभ के लिए समझौता करना तो उन्हें आता ही नहीं है।

अक्खड़, मुंहफट, बेलाग, बेलौस हैं मुलायम सिंह जी के परिवार से मधुर सम्बंध होते हुए भी उन्होंने कभी भी कोई लाभ नहीं लिया।

धीरे धीरे सुरेन्द्र की लोकप्रियता इतनी बढ़ गई कि उन्हें विदेशों में भी बुलाया जाने लगा।

एक बार तो हम और सुरेन्द्र साथ साथ अमेरिका गए थे सुरेन्द्र ने कभी कोई नौकरी नहीं की लेखन और कवि सम्मेलनों से पर्याप्त धन मिल जाता है सन 1975 में उनकी कहानी "अगिहाने " सारिका में प्रकाशित हुई उस पर स्थानीय ज़िमीदार ने सम्पादक कमलेश्वर मुद्रक श्री कृष्ण गोविंद जोशी को भी शामिल किया गया उस कहानी से सुरेन्द्र रातोंरात स्टार बन गए फिर तो उनकी कहानियाँ धर्मयुग, सारिका, रविवार, इंडिया टुडे, हंस में निरंतर प्रकाशित होने लगीं वो बहुत ही चर्चा में आ गए।

सुरेन्द्र ने आगरा विश्वविद्यालय से एमए प्रथम श्रेणी में स्वर्ण पदक के साथ किया एलएलबी किया पर न कभी वकालत की ओर न ही प्राध्यापकी की।

शराब पीते हैं 40 साल भाँग, चरस, गाँजे का सेवन किया शराब के विषय में उनका तर्क है कि ये तो हमारा खानदानी शौक़ है और भाँग, चरस, गाँजा श्री बलवीर सिंह रंग जी की देन है रंग जी उनके ही इलाके के थे तो सुरेन्द्र को रंग जी की सौहवत खूब मिली सुधा की मृत्यु के बाद सुरेन्द्र ने भाँग, चरस, गाँजे से तौबा

कर ली है।

बीड़ी सिगरेट पीना भी उनका फन है हम भी सुरेन्द्र के साथ साथ सिगरेट का लुत्फ़ उठा लेते हैं।

सुरेन्द्र ने कवि सम्मेलन भी कभी भी पूरे मन से नहीं किए जबकि वो बहुत ही जमने वाले कवि हैं यदि उन्होंने पूरे मन से कवि सम्मेलन किए होते तो काव्य मंच के सुपर स्टार होते।

अभी लगभग बारह वर्ष पहले उनकी एक व्यंग्य कविता," रैट कमीशन " के कारण दो मुस्लिम युवकों ने उन्हें 315 बोर की रायफल से गोली मार दी भगवान की कृपा से वो बच गए पर उन्होंने किसी के खिलाफ रिपोर्ट नहीं की मीडिया ने जब उनसे पूछा कि गोली किसने मारी तो बोले जिसने मरवाई उसने गलतफहमी के कारण मरवाई जिन्होंने मारी उनका तो कोई दोष नहीं है क्योंकि वो तो व्यवसायिक शूटर थे जबकि सुरेन्द्र जानते थे कि किसने मरवाई है वो समाजवादी पार्टी का विधायक था और उस समय मुलायम सिंह जी की ही सरकार थी यदि वो उसका नाम लेले ते तो सत्ता में उथल पुथल हो जाती।

पहले तो सुरेन्द्र से बहुत ही मिलना होता था पर अब हमारी भी उम्र ज्यादा हो गई है और सुरेन्द्र ने कवि सम्मेलनों में आना जाना लगभग बंद कर दिया है सो मिलना जुलना तो बंद सा ही है पर फोन पर बातचीत होती रहती है।

पर हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि सुरेन्द्र जैसे इंसान अब पैदा होना बंद सा ही हो गया

एक अद्भुत व्यक्तित्व के मालिक सुरेन्द्र सुकुमार

डॉक्टर कुंदनलाल उप्रेती

सुरेन्द्र से मेरी पहली मुलाकात तब हुई थी जब मैं श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय में हिंदी के अध्यक्ष पद पर था

यों उनकी कहानियाँ पढ़ रखी थीं और सोचता था कि अलीगढ़ जनपद के ही कस्बा कौड़ियागंज में रहने के बाद भी मेरी मुलाकात अबतक क्यों नहीं हो पाई है जबकि सुरेन्द्र सुकुमार ने मेरे ही विद्यालय से एल - एल . बी किया था उनका कोई भी बैकग्राउंड हिंदी का नहीं था उन्होंने बी . एस . सी करने के बाद लॉ किया था

उनकी पहली कहानी "अगिहाने " सारिका में प्रकाशित हुई थी जिस पर उन पर सम्पादक कमलेश्वर मुद्रक पर एक स्थानीय ज़िमीदार ने मानहानि का मुकदमा दायर कर दिया

था इस कहानी से ही वो साहित्य क्षेत्र में चर्चा में आ गए थे

उनका परिचय मेरे ही विद्यालय के मेरे सहकर्मी राजेन्द्र गढ़वालिया से थी सो एक दिन उन्हीं के माध्यम से मेरी मुलाकात सुरेन्द्र से हुई उनके व्यक्तित्व में ऐसा कुछ था जो प्रभावित करता था छ फुट लम्बाई गेहुंआ रंग काले लंबे घुंघराले बाल मुंहफट बेलौस मैं उन दिनों तम्बाकू का पान हर समय खाया करता था मैंने उनसे पूछा कि पान खाओगे तो बोले पान क्या गुरू हम तो सबकुछ खा लेते हैं मुझको शुरू से ही सब मित्र गुरू ही कहते हैं

सुरेन्द्र कहने को तो कम्युनिस्ट थे पर आध्यात्म पर भी उनकी समान पकड़ थी साधू सन्यासियों की बहुत ही सोहवत उठाई थी और उठाते भी रहते थे इसी कारण भाँग का सेवन करना और चरस गाँजे की चिलम पीना उनके लिए आम बात थी इसके साथ साथ शराब का भी सेवन करते थे और कहते थे कि गुरू कायस्थ होने के नाते शराब तो हमारा खानदानी शौक़ है उनकी कहानियाँ निरंतर सारिका, धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुतान में प्रकाशित होकर चर्चित हो रही थीं उनके अनुवाद हो रहे थे हमारे एम.ए. हिंदी के कोर्स में कहानी की एक पुस्तक चलती थी

" कथा कौमुदी " उसकी भूमिका में सुरेन्द्र सुकुमार की कहानियों पर पाँच छ पेज लिखे थे तो मैंने और गढ़वालिया ने कहा कि तुम्हारी कहानियों पर कथा कौमुदी तक में चर्चा है तो क्यों न तुम एम .ए . हिंदी से करलो

वो बोले ठीक है कर लेते हैं पर प्राइवेट करेंगे क्योंकि हमें कवि सम्मेलनों में भी जाना होता है उन दिनों सुरेन्द्र सुकुमार काव्य मंच पर हास्यव्यंग्य कवि के रूप में खूब लोकप्रिय और स्थापित हो चुके थे हम लोगों ने कहा ठीक है और उनका फार्म भरवा दिया थोड़ा बहुत मेडइजी से पढ़ कर सुरेन्द्र अस्सी फीसदी अंकों से पास हुए

सुरेन्द्र का बचपन कासगंज में बीता था सो वहाँ भी उनका बहुत बड़ा सर्किल और सम्मान था कासगंज डिग्री कॉलेज के हिंदी विभाग के अध्यक्ष डॉक्टर नरेश वंसल भी उन्हें बहुत स्नेह करते थे जब उन्होंने सुना कि सुरेन्द्र अस्सी फीसदी अंक से एम. ए . प्रथम वर्ष में पास हुए हैं तो उन्होंने उन पर दवाब डाला कि वो उनके कॉलेज में एडमिशन लेलें सुरेन्द्र ने अपनी शर्त रखीं कि एक तो हम आवश्यक नहीं कि रोज कॉलेज ताएँ और फीस भी नहीं देंगे

वो मान गए और एडमिशन ले लिया गढ़वालिया ने सब्जेक्ट चयन कर दिए फार्म भी भर दिया गया एक विषय पाली भी रखा गया इस तर्क के साथ इसमें नम्बर बहुत अच्छे आते हैं पर जब सुरेन्द्र ने देखा कि पाली तो बेहद कठिन है तो गढ़वालिया से कहा कि भाई साहब अब हम एम ए नहीं कर सकते हैं क्योंकि पाली तो हमारी समझ से परे है तब गढ़वालिया ने विश्वविद्यालय जाकर जुगाड़ से फॉर्म निकलवा कर पाली के स्थान पर लोक साहित्य करवा दिया लोक साहित्य पर सुरेन्द्र की पकड़ बहुत ही मजबूत थी क्योंकि उन्होंने नौटंकी , भगत , रसिया, रासलीला पर बहुत काम किया था और इस विषय के लेख धर्मयुग में प्रकाशित भी हुए थे

जैसा सुरेन्द्र सुकुमार ने चाहा था वैसा ही हुआ

सुरेन्द्र ने बताया कि जब वायवा हुआ तो वायवा लेने के लिए गोरखपुर विश्वविद्यालय से एक प्रोफेसर आए जब उन्होंने सुरेन्द्र सुकुमार का नाम सुना तो उठ कर खड़े हो गए और बोले आपसे क्या पूछना हम तो आपकी कहानियों के प्रशंशक हैं और उन्होंने कुछ भी नहीं पूछा बस यह कहा कि आप शाम को विजय लॉज में मिलने आइए जब सुरेन्द्र शाम को उनसे मिलने पहुंचे तो उन्होंने बताया कि कई बार कासगंज कॉलेज के मैनेजर आकर कह चुके हैं कि उनकी बेटी को सर्वाधिक नम्बर दें पर हमने साफ मना कर दिया कि सुरेन्द्र सुकुमार से अधिक नम्बर तो किसी को भी नहीं दे सकते हैं और यही हुआ उन्होंने हमें वायवा में 92 नम्बर दिए जब परिणाम आया तो पता चला कि हमने आगरा विश्वविद्यालय में प्रथम श्रेणी के उत्तीर्ण हुए हैं हमें स्वर्ण पदक भी दिया गया

सुरेन्द्र ने बताया कि जब वायवा हुआ तो वायवा लेने के लिए गोरखपुर विश्वविद्यालय से एक प्रोफेसर आए जब उन्होंने सुरेन्द्र सुकुमार का नाम सुना तो उठ कर खड़े हो गए और बोले आपसे क्या पूछना हम तो आपकी कहानियों के प्रशंशक हैं और उन्होंने कुछ भी नहीं पूछा बस यह कहा कि आप शाम को विजय लॉज में मिलने आइए जब सुरेन्द्र शाम को उनसे मिलने पहुंचे तो उन्होंने बताया कि कई बार कासगंज कॉलेज के मैनेजर आकर कह चुके हैं कि उनकी बेटी को सर्वाधिक नम्बर दें पर हमने साफ मना कर दिया कि सुरेन्द्र सुकुमार से अधिक नम्बर तो किसी को भी नहीं दे सकते हैं और यही हुआ उन्होंने हमें वायवा में 92 नम्बर दिए जब परिणाम आया तो पता चला कि हमने आगरा विश्वविद्यालय में प्रथम श्रेणी के उत्तीर्ण हुए हैं हमें स्वर्ण पदक भी दिया गया

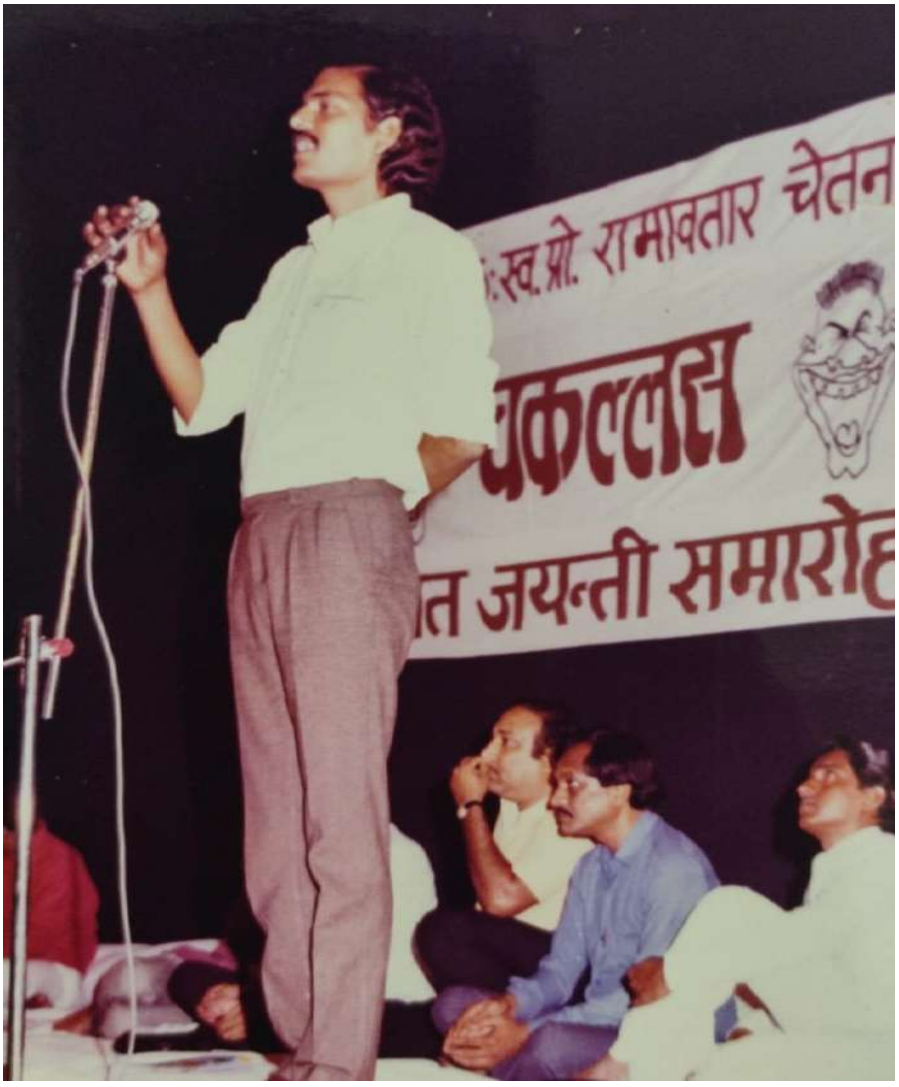

इस तरह से वो पास हो गए

इससे पहले की एक घटना हम और बताएँ सुरेन्द्र अपनी एक दूर की रिश्ते की बहन से प्यार करते थे पर घर के लोग तय्यार नहीं थे उन्हीं दिनों सुरेन्द्र की शादी शुदा बड़ी बहन गढ़वालिया के अंडर में पी एच डी कर रही थीं तो इसमें उन्होंने और लड़की का बड़ा भाई इस शादी के समर्थन में थे तो दोनों गवाह बने और सुरेन्द्र सुकुमार और सुधा की 6 फरवरी 82 को कोर्ट मैरिज हो गई

और सन 84 में ही उन्होंने एम ए कर लिया उसी वर्ष उनके एक बेटी भी हो गई

डॉक्टर नरेश वंसल ने बहुत कहा कि वो शोधकार्य करने के लिए रजिस्ट्रेशन करा लें शोध के बाद कासगंज कॉलेज में ही हिंदी प्रवक्ता के तौर पर रख लेंगे उस समय वंसल जी कासगंज कॉलेज के प्रिंसिपल हो गए थे

अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के केपी सिंह और नामवर सिंह ने भी उनसे उनके अंडर में पीएचडी करने की पेशकश की पर सुरेन्द्र ने विनम्रता पूर्वक मना कर दिया क्योंकि उनकी कवि सम्मेलनों की व्यस्तता बहुत ही बढ़ गई थी

इधर सुरेन्द्र सुकुमार कौड़ियागंज छोड़ कर अलीगढ़ स्थाई रूप से रहने के लिए आ गए

अलीगढ़ के ही डॉक्टर राकेश गुप्त प्रति वर्ष उस वर्ष की श्रेष्ठ कहानियों का संकलन निकालते थे जिसमें लगभग प्रति वर्ष सुरेन्द्र सुकुमार की कहानी होती थी

उधर मुंबई के देवेश ठाकुर भी प्रति वर्ष उस वर्ष की श्रेष्ठ कहानियों का संग्रह प्रकाशित करते थे उसमें भी सुरेंद्र की कहानी होती ही थी सुरेन्द्र सुकुमार की कहानियों के अनुवाद भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त विदेशी भाषा में भी होती रही थीं उनके कहानी के नाट्य रूपांतरण भी खूब हुए और उनका मंचन भी देश के विभिन्न शहरों में हुए एक कहानी " उऋण " जो धर्मयुग के ग्रामकथा विशेषांक में प्रकाशित हुई थी उसका इलाहाबाद रेडियो स्टेशन के निदेशक विनोद रस्तोगी ने किया जो अखिल भारतीय रेडियो स्टेशन की प्रतियोगिता में प्रथम आया फिर उसका प्रसारण देश के सभी रेडियो स्टेशन से प्रसारण हुआ जिसकी धनराशि उनके पास वर्षों आती रही

एक खास बात और एक समय मैं आगरा विश्वविद्यालय के कथा साहित्य के चयन समिति में मेरा चयन हो गया था तो मैंने सुरेन्द्र सुकुमार की कहानी " लैंस के आर पार " जो धर्मयुग में प्रकाशित हुई थी उसका नाम प्रस्तावित की और लगभग तय था कि उक्त कहानी एमए हिंदी के कोर्स में अवश्य आएगी पर एक और कथा लेखिका जो अलीगढ़ के पास ही रहती थीं और उनके पतिदेव एक बड़े अधिकारी थे एन टाइम पर उनकी कहानी का चयन कर लिया गया पर सुरेन्द्र के चेहरे पर शिकिन तक नहीं आई

इधर उनकी व्यस्तता कवि सम्मेलन में इतनी बढ़ गई कि वो विदेशों से भी बुलाए जाने लगे धीरे धीरे उनका कहानी लेखन कम होता गया और केवल कवि सम्मेलन ही उनकी नियति बन कर रह गई

हम सब उनके इस परिवर्तन से दुखी होते थे पर वो यही कहते कि गुरू कहानी लेखन से अबतक क्या मिला है और कवि सम्मेलन से लोकप्रियता भरपूर धन देश विदेश की काव्य यात्राएँ सबकुछ भरपूर मिला है

अब सुरेन्द्र से मेरी बढ़ती हुई आयु के कारण मिलना जुलना तो कम हो गया है पर महीने एक दो बार फोन पर बातचीत हो जाती है

मैं उनके स्वस्थ मस्त और उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ

□□□

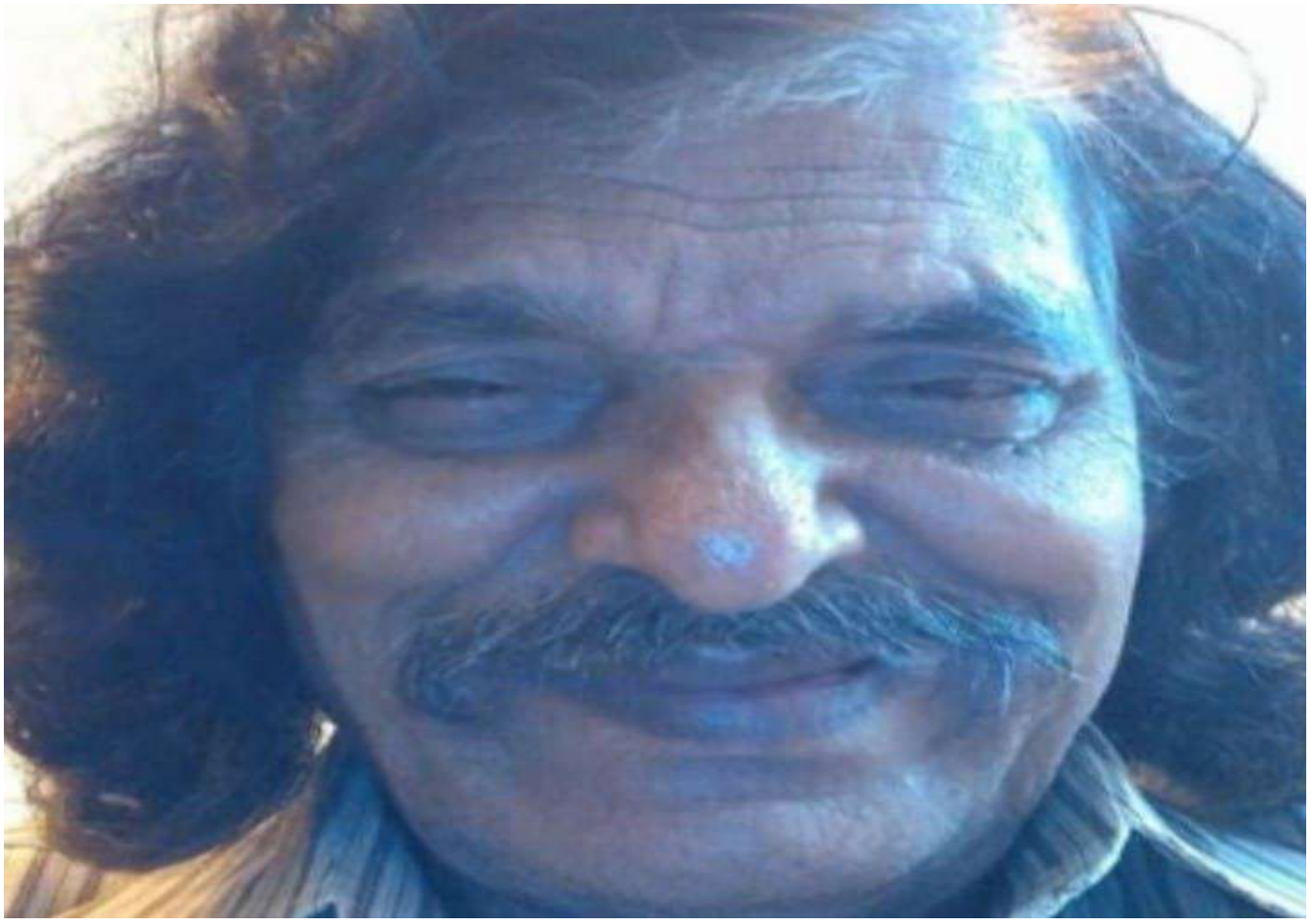

अद्भुत! भाई सुरेंद्र कुमार

रमेश पंडित

भाई सुरेंद्र कुमार की रचनाधर्मिता यानी उनका कृतित्व और व्यक्तित्व। वैसे तो भाई सुरेंद्र कुमार ने हिंदी की कई विधाओं पर अपनी कलम चलाई लेकिन उनकी पहचान बनी उनकी कहानियों के द्वारा और एक व्यंग्य के सफल मंचीय कवि के रूप में।

गीतों पर भी उनके कलम चली है लेकिन हिंदुस्तान में एक व्यंग्य कवि के रूप में ही कहीं अधिक प्रसिद्धि मिली है। उनके व्यंग्य लेखन में भारी भरकम तंज तो होते ही थे। उनके पढ़ने और कहने की शैली ने उन्हें बहुत जल्दी ही हिंदुस्तान में चर्चित कर दिया। वे उन दिनों के बड़े-बड़े कवियों के साथ मंच साझा करने लगे। नीरज जी, उदय प्रताप जी, बलवीर सिंह रंग, देवेंद्र स्वरूप राही, बुद्धिनाथ मिश्र, आत्मप्रकाश शुक्ल और सोम ठाकुर आदि; एक लंबी फेहरिस्त है ऐसे कवियों की जिनके साथ उन्होंने मंच साझा किया है।

रही उनके बिंदास व्यक्तित्व की बात। जीवन में कोई कैसा भी निर्णय करना हो, तमाम व्यक्तिगत और सामाजिक विरोध के बावजूद उन्होंने उस पर अमल किया। आगरा में श्याम की बैठक उनकी असर रंगीन हुआ करती थी इसलिए उनका ठिकाना भी अक्सर वहीं होता था जहां की शामें रंगीनियत हों। वह शराब और शबाब दोनों के ही शौकीन रहे। यद्यपि इसकी चर्चा सार्वजनिक नहीं करनी चाहिए लेकिन इन दिनों जो हुए संस्मरण फेसबुक पर लगातार लिख रहे हैं नीरज जी और उदयप्रताप को लेकर इसमें उन्होंने सार्वजनिक रूप से स्वीकारोक्ति की है। आज भी उनकी शैली ऐसी ही है शाम 6:30 बजे सो जाना मित्र लोगों को पता है। कभी किसी को रात 9:00 फोन कर लें तो आश्चर्य होता है कि भाई सुरेंद्र अभी जाग रहे हैं। जो भी हो जब मित्रों होते हैं तो इन सब चीजों को नहीं जाता। वैसे भी समान विचार के लोगों की समस्त प्रवृतियाँ किसी मित्र से पूरी तरह मिलें, यह असंभव है। वह मेरे से वरिष्ठ हैं, बावजूद इसके हमारे उनके बीच बहुत आत्मीयता है। मेरी हार्दिक कामना है कि वे स्वस्थ रहें और सक्रिय बने रहें।

कविवर सुरेन्द्र सुकुमार का जीवन

मनजीत सिंह

कविवर सुरेन्द्र सुकुमार का जीवन उस फिल्म की तरह है जिसमें कौतूहल,रहस्य,रोमांच,रोमांस और इसके अलावा भी बहुत कुछ है। लेकिन जैसे फ़िल्म रिलीज़ होने से पहले सेंसर बोर्ड की कैंची उसमें कांट-छांट करती है, कुछ उसी प्रकार की कांट-छांट करने के बाद मेरी स्मृति से जो निकला है आपसे साझा कर रहा हूँ।

सुरेन्द्र सुकुमार से मिलने के बाद आप तय नहीं कर पाते हैं कि यह व्यक्ति कवि है या कथाकार, सरल है या विषम, स्वाभिमानी है या अहंकारी, स्पष्टवादी है या बड़बोला, मस्तमौला है या विलासप्रिय। यदि कोई किसी व्यक्ति से प्रभावित होता है तो उसमें स्वयं भी वे गुण या अवगुण कम या अधिक मात्रा में अवश्य होते हैं।

सुरेन्द्र सुकुमार से मिलने के बाद आप तय नहीं कर पाते हैं कि यह व्यक्ति कवि है या कथाकार, सरल है या विषम, स्वाभिमानी है या अहंकारी, स्पष्टवादी है या बड़बोला, मस्तमौला है या विलासप्रिय।

सुरेन्द्र सुकुमार जी से मेरी निकटता उनकी स्पष्टवादिता के कारण रही है। जो मन में आया सो कह दिया। सामने वाले को अच्छा लगे तो ठीक, न अच्छा लगे तो और ज्यादा ठीक। जिस काल खंड में मेरी सुकुमार जी से मुलाक़ात हुई उस समय कुछ ऐसे कवि मंच पर स्थापित हो चुके थे जिनकी लोकप्रियता उस समय के आसमान को छू रही थी। ज़्यादातर मंचीय कविगण उनकी विरदावली गाते नहीं थकते थे।कुछ को अपने काव्य पाठ की बजाय उनकी कृपा के प्रसाद पर ज़्यादा विश्वास था। सुकुमार जी ऐसे समय में उनकी कविता और चरित्र का चीरफाड़ निडर हो कर कर दिया करते थे।

आजकल क्रिकेट में टी-20 का ज़माना है जिसमें मैदान पर चौकों-छक्कों की बरसात

होती रहती है। आजकल काव्य मंच भी टी-20 सरीखा हो गया है जिसमें आप कितना भी घटिया और गैर पारम्परिक काव्य पाठ करो बस तालियों के चौके-छक्कों की बरसात अवश्य होती रहनी चाहिए। मेरे विचार में सुरेन्द्र सुकुमार कविता के टेस्ट मैच शैली के पारंपरिक बल्लेबाज़ रहे हैं। अपनी कहानीनुमा कविताओं से सहज भाव से श्रोताओं के दिलों पर दस्तक देना उनकी ख़ासियत रही है।

अलीगढ़ से संबंध होने की वजह से हिन्दी और उर्दू पर उनकी समान पकड़ रही है। मिर्ज़ा खालिद उनकी रचनाओं के प्रमुख पात्र रहे हैं। चूहे के माध्यम से व्यंग्य करती उनकी कविता सभी राजनैतिक दलों और उनकी संकीर्ण विचारधारा को नंगा करके रख देती है।

सुरेन्द्र सुकुमार से लगाव के चलते ही मैंने उनके साथ तीन विदेश यात्राएं की। दुबई के गणतंत्र दिवस कविसम्मेलन के आयोजक स्वर्गीय श्री भरत भाई शाह केवल उन कवियों को ही टीम में फाइनल करते थे जिन्हें उन्होंने स्वयं सुन रखा हो या फिर उनकी सी डी देखी हो। मेरे आग्रह पर बिना कोई वीडियो देखे उन्होंने सुरेंद्र सुकुमार का नाम फाइनल कर दिया। उस कार्यक्रम में वे इतने जमे कि अगले साल भी उन्हें रिपीट किया गया।

किसी व्यक्ति को भले ही आप कितने वर्षों से जानते हों लेकिन जब तक आप लगातार चौबीस घंटे उस व्यक्ति के साथ न गुजारें आप उसे पूरी तरह से नहीं पहचान पाते। अमेरिका यात्रा के दौरान मैं और सुकुमार जी पूरा एक महीना चौबीसों घंटे साथ रहे । स्कूल से ले कर युवावस्था तथा प्रौढ़ावस्था तक पहुंचने के सारे किस्से उन्होंने बेलौस मुझे सुनाए। सामन्यतः अधिकतर लोग खुद को महान बताने के चक्कर में अपने बारे में सामाजिक तौर पर अच्छा-अच्छा ही बताते हैं।उनके साथ रह कर मुझे देसी,अंग्रेजी तथा कच्ची शराब एवं विभिन्न प्रकार के नशों का ज्ञान प्राप्त हुआ। ऐसे ही विभिन्न प्रकार की महिला मित्रों के बारे में ज्ञान दे कर उन्होंने मेरी जानकारी में अभिवृद्धि की।

एक बार एक कवि जी के जीवन पर लेख लिखे जाने थे जिन्हें पुस्तक के आकार के रूप में प्रकाशित किया जाना था। मुझे बताया गया कि मैं इसका संपादक रहूंगा।मैंने सुकुमार जी को अन्य लोगों की तरह पत्र द्वारा सूचित किया। फिर फोन भी किए जो उस समय महंगे होते थे। वे उन कविराज पर नहीं लिखना चाहते थे। मेरे आग्रह पर वे इस शर्त पर तैयार हो गए कि लेख में कोई कांट-छांट नहीं कि जाएगी। जब पुस्तक तैयार हुई तो मेरी सहमति और मुझे सूचित किये बिना उसमें से कुछ अंश हटा दिए गए जिसका मुझे आज तक अफ़सोस है।

जीवनसंगिनी के दुनिया से विदा लेने के बाद तथा कुछ बीमारियों से घिरने के बाद सुकुमार जी को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। लेकिन अब वे पूर्णतः स्वस्थ एवं जीवट से भरपूर हैं। परमात्मा उन्हें दीर्घायु करे।

मनजीत सिंह, फरीदाबाद, मोबाइल 9810372543, ईमेल kavimanjit@yahoo.com

लोकप्रिय सुरेन्द्र !!!

डॉ सुरेश अवस्थी

हिंदी काव्य साहित्य की वाचिक परम्परा की लोकप्रिय विधा कवि सम्मेलन सौ सालों की यात्रा पूरी कर चुका है। इस साहित्यिक सांस्कृतिक व सामाजिक ललितकला को लोकप्रिय बनाने में काव्य की सभी विधाओं के साथ सभी रसों की महती भूमिका है। हास्य व व्यंग्य की विस्तृत पैठ व पहुंच ने कवि सम्मेलनों की।लोकप्रियता को उत्कर्ष तक पहुंचाया। इस विधा के जिन रचनाकारों को श्रोता समूह का भरपूर प्यार मिला और मिल रहा है उनमें से नाम अलीगढ़ के भाई सुरेंद्र सुकुमार का है। मंच पर व्यंग्य पाठ के साथ साथ पत्र पत्रिकाओं व व्यंग्य संकलनों में उनकी रचनाओं ने रेखांकित करने वाली जो उपस्थिति दर्ज कराई है उसका मैं प्रत्यक्षदर्शी गवाह हूं। तमाम मंचों पर सुकुमार के साथ हुई साझेदारी आनन्ददायी तो रहती हैं है, प्रेरक और प्रसन्नतादायी भी होती है। उनकी हास्य व्यंग्य प्रस्तुतियों पर श्रोता समूह का उल्लास, वाह वाह, तालियों की गड़गड़ाहट कवि सम्मेलन को उत्सव बना देती है।

सर्व विदित है कि हास्य विद्रूपताओं से और व्यंग्य विसंगतियों से जन्मता है। मेरी दृष्टि में अच्छा और सार्थक व्यंग्य वही होता है जो किसी व्यक्ति पर नहीं बल्कि नकारात्मक प्रवत्ति पर किया गया हो।अच्छा व्यंग्य विसंगतियों, विकृतियों और नकारात्मक प्रवृत्तियों पर प्रहार करते हुए उनके समाधान भी सुझाता है। या यूं कहूँ की सार्थक व्यंग्य किसी व्यक्ति या व्यवस्था का उपहास नहीं करता बल्कि समाज सुधारक की भूमिका भी निभाता है। व्यंग्य की भाषा पाठक के मन में चुभन करती है और नकारात्मकता के विरुध्द वितृष्णा उत्तपन्न करने के साथ आनंद की भी अनुभूति कराती है।

आत्मीय मित्र सुरेंद्र सुकुमार की हास्य व्यंग्य रचनाएं इसी श्रेणी में आती हैं। उनकी

रैट कमीशन,

मिर्ज़ा ख़ालिद,

सफोकेशन,

हसन का पजामा,

डार्विन का सिद्धांत आदि रचनाओं की प्रस्तुतियों का प्रत्यक्षदर्शी व प्रशंशक होने के नाते मैं पूरे आत्मविस्वास व प्रामाणिक तौर से कह सकता हूँ किन उनका

जादू श्रोताओं व पाठकों के सिर चढ़ कर बोलता है। रचनाओं में निहित सहज हास्य व धारदार तथा सलीकेदार व्यंग्य मनमोहक और मुग्ध करने वाला होता।

हालांकि हिंदी साहित्य के समालोचकों व संपादको ने काव्यात्मक शैली की व्यंग्य विधा को अभी तक पत्र पत्रिकाओं में वह प्यार-दुलार नहीं दिया जिसकी कि वह हकदार है परन्तु पद्ययात्मक व्यंग्यों में सुरेंद्र सुकुमार की व्यंग्य चेतना का जो महीन और मुखर स्वरूप मिलता है उससे उनकी प्रशंसा अपरिहार्य हो जाती है।

मैं दावे से कह सकता हूँ कि कोई भी तटषत आलोचक सुरेन्द्र सुकुमार की इन जैसी

छोटी व्यंग्य कविताओं को नकारने का साहस नहीं कर सकता -

दैनिक हिंदुस्तान समाचार पत्र को

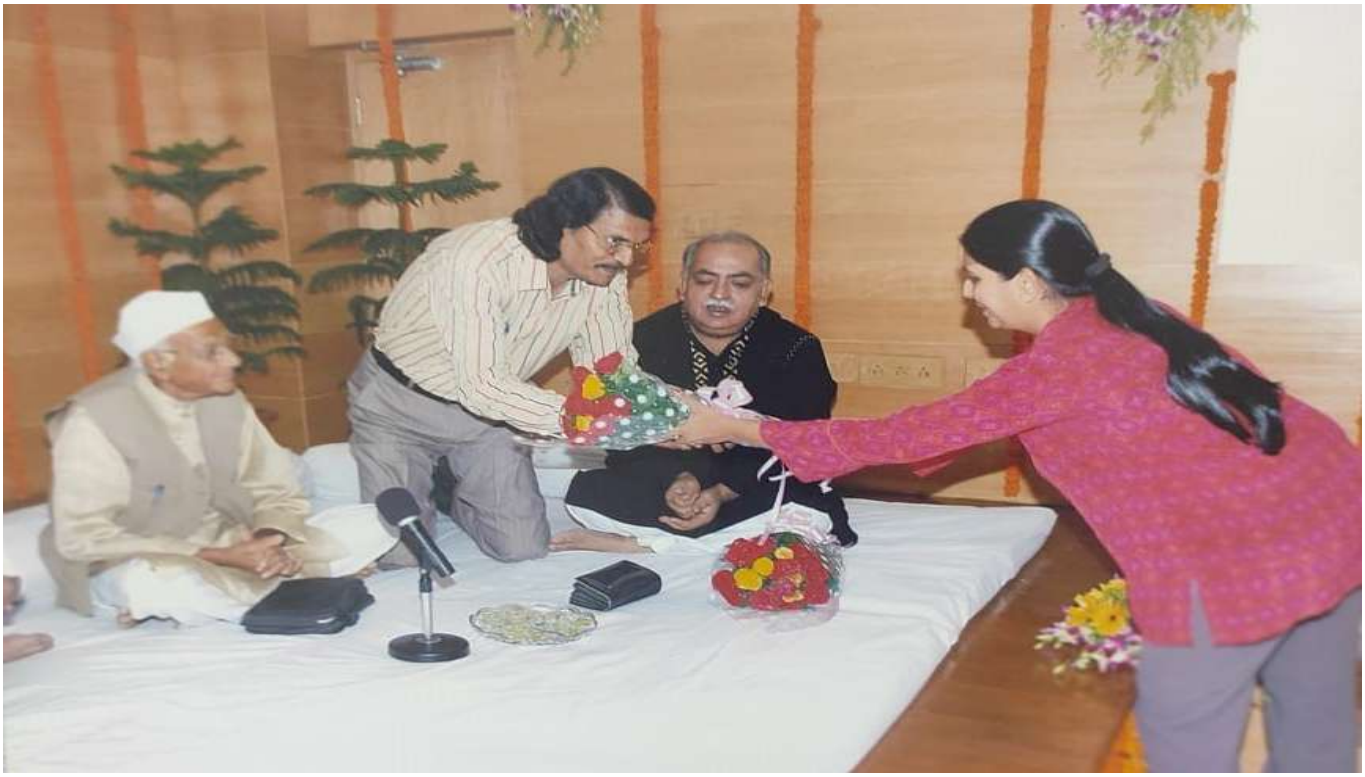

हाथ में लिए हुए,

नेताजी का छोटा सा बच्चा रसोई घर से चीखा

पापा हिंदुस्तान को चूहे खा रहे हैं

नेताजी भड़के

जोर से कड़के

गधे के बच्चे

अक्ल के कच्चे

उसी घर की दीवार गिराता है

जिस घर में रहता है

शर्म नहीं आती

अपने बाप दादों को

चूहा कहता है

**

श्री राम यूरिया खाद बनके खेतों में खाद लगा रहे हैं

तुलसी , गोपाल , रत्ना तम्बाकू बन के

लोगों को तम्बाकू खिला रहे हैं

दुर्गा वाइन स्टोर पर दुर्गा जी लोगों को दारू पिला रही हैं

गंगा साबुन की टिकिया बन के घर घर नहलाने जा रही हैं

ये सब हमारी श्रद्धा के चरम बिंदू हैं

गर्व से कहो हम हिंदू हैं

**

समाजवाद में

पहले हम

समाज बाद में

*

भोर मिले तब भूरे रंग में

साँझ मिले तब पीले रंग में

मौसम जैसा रंग ले लेता

का सखि गिरगिट

ना सखि नेता

किसी भी व्यंग्यकार की भाषा की सामर्थ्य इसी से आंकी जाती है कि वह किसी विसंगति पर कम शब्दों में कितनी बड़ी चोट करता है। व्यंग्य की श्रोताओं तक पहुंच रचनाकार द्वारा व्यंग्य के शब्दों को उनके परिवेश को आत्मिक सामर्थ्य के साथ जीते हुए मोहक भाषाई शक्तमत्ता के साथ प्रस्तुति से होती है। इसी माध्यम से वह श्रोताओं को आकर्षित, चमत्कृत व संमोहित कर सकता है। या यूं कहें कि यह सामर्थ्य ' एक ही सेनेटाइजड ब्लेड से कई फोड़े फुंसियों का सफल ऑपरेशन' करने जैसी होती है। सुरेंद्र सुकुमार को ये चेतना सहज ही प्राप्त है। जिस रचनाकाल का अनुभव संसार जितना विस्तृत होता है, उसके पास विषयों की विविधता की पूंजी भी उतनी ही अधिक होती है। उस पर यदि उसकी अनुभूतियां सघन तथा संवेदना गहन हो तो उसके द्वारा रचित रचना पाठकों के मन में गहराई से प्रभाव डालती है। मित्रवर सुकुमार भाई के पास यह पूंजी भी सहज संचित है।

यारों के यार, मस्तमौला, हरदिल अज़ीज़ सुरेंद्र सुकुमार के साथ एक सामर्थ्यवान हास्य व व्यंग्य कवि हैं जिनके तमाम आनन्द और प्रेरणादायी संस्मरण मित्रों के पास संचित हैं। मुझे विस्वास है कि पत्रिका उन पर केंद्रित यह अंक जिज्ञासुयों को रचनाकार के समग्र व्यक्तित्व से साक्षात्कार कराने की सफल भूमिका निभायेगा।

अशेष शुभकामनाओं सहित,

डॉ सुरेश अवस्थी, कानपुर, drsureshawas-thi@gmail.com

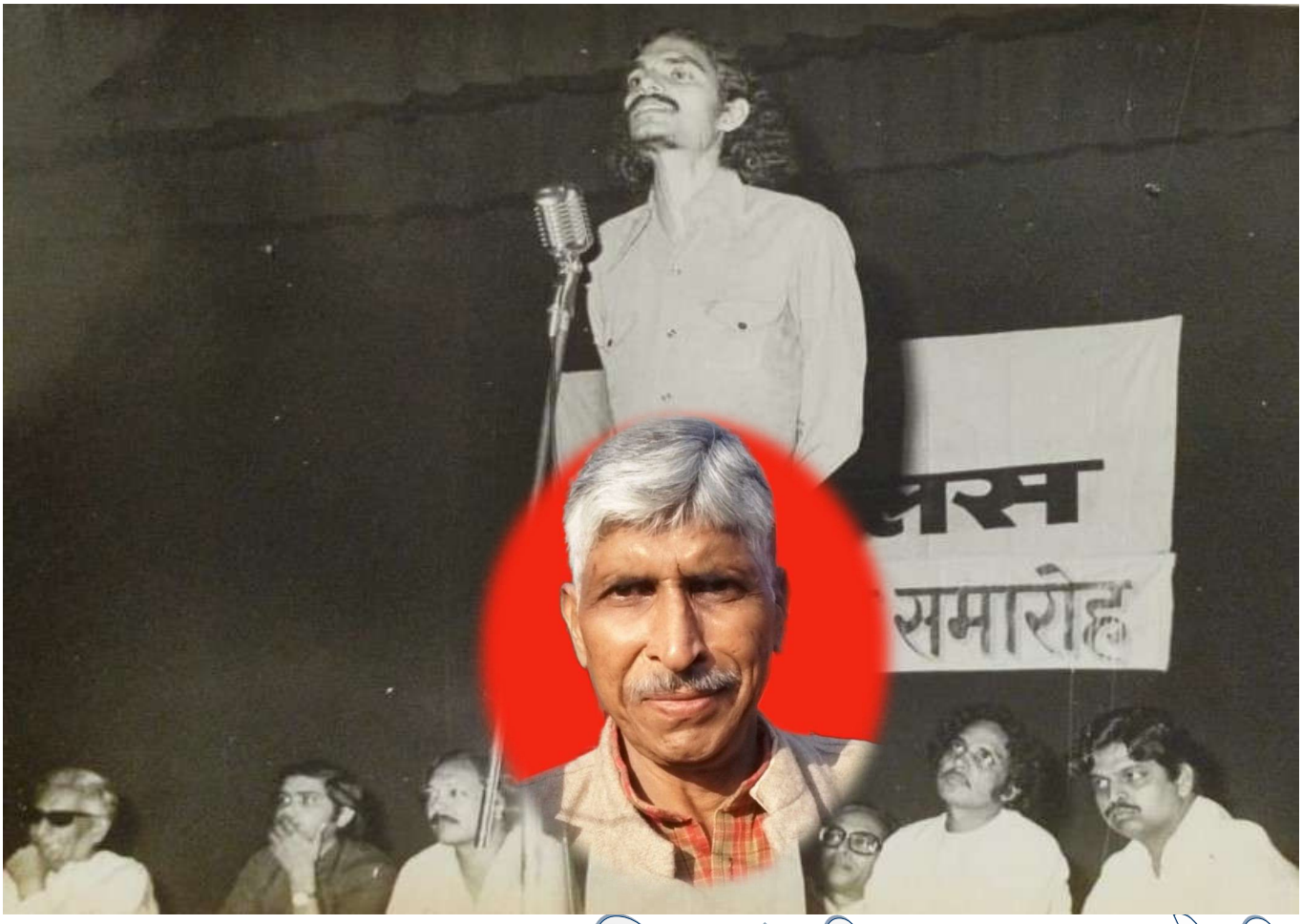

एक कथाकार की जंगी लव स्टोरी

अनिल शुक्ल

वह तब आज की तरह के कवि नहीं थे कहानीकार बनने के दौर में थे, जब सुरेंद्र सुकुमार से मेरी पहली मुलाक़ात हुई। यह 1977 का युग था। गर्मियां चढ़ान पर थीं। केंद्र में श्रीमती इंदिरा गाँधी की सरकार को पूरी तरह ध्वस्त करके तमाम राज्यों में भी जनता पार्टी की सरकारों का गठन हो चुका था। हम लोगों ने आगरा में सभी राजनीतिक बंदियों की रिहाई के लिए एक बड़ी आम सभा का आयोजन किया था। आम सभा 'आगरा कॉलेज' के एक बड़े सभागार में हुई । डॉ० सत्यनारायण दुबे आगरा कॉलेज के प्रिंसिपल हुआ करते थे। यूं आपातकाल में अपनी छात्र विरोधी सख्तियों और 'छात्र संघ' के प्रबल विरोधी होने के चलते उत्तर प्रदेश के शैक्षिक हलकों में उनकी पहचान एक अलोकतांत्रिक प्रशासक की बन गयी थी लेकिन वह भीतर से आपातकाल के सख्त विरोधी थे और उन्होंने हम लोगों को न सिर्फ़ इस सभा की परमीशन दी बल्कि उस सभा में स्वयं शामिल भी हुए थे।

सभा को सम्बोधित करने वाले प्रमुख वक्ताओं में मेरे पिता डॉ० बीपी शुक्ला भी शामिल थे जो जन्मजात कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी थे और आपातकाल के एकदम शुरू में 'मीसा' में गिरफ़्तारी के कुछ ही दिनों बाद पुलिस हिरासत से भाग जाने के बाद पूरे आपातकाल में फरार रहे थे और वारंट ख़त्म होने पर हाल ही में 'ओवर ग्राउंड' होकर लौटे थे।

आपातकाल की ज़्यादतियों को लेकर वहां मैंने एक धुंआधार कविता पढ़ी। मैं तब उन्नीस बरस का एक नया नाकोरा युवा था, समाज में वर्गीय एका का हिमायती और सामाजिक-राजनीतिक साफ़-सफाई का प्रबल समर्थक। मैं तब फुलटाइम थियेटर करता था और समाज परिवर्तन के सपने देखा करता था। पत्रकारिता का मेरा शगल तब तक शुरू नहीं हुआ था। मेरी कविता ने वहां मौजूद जिन लोगों को अभिभूत कर दिया, उनमें सुरेंद्र भी शामिल थे। सभा के बाद हम बहुत से नौजवान राजा की मंडी चौराहे पर स्थित जैन साब के चाय के ढाबे पर जमा हुए। मेरे और सुरेंद्र के अलावा इनमें हरिनारायण और विभांशु दिव्याल थे (जो आगे चलकर क्रमशः कहानी पत्रिका 'कथादेश' और 'राष्ट्रीय सहारा' के संपादक बने), इनमें वरिष्ठ पत्रकार हर्षदेव, दिनेश संन्यासी, ओउम ठाकुर, कवि देव राजेंद्र और रमेश पंडित तथा दूसरे कई लोग शामिल थे।

सुरेंद्र सुकुमार से यह मेरी पहली मुलाक़ात थी। 6 फुट के आसपास का लंबा जिस्म, गेहुंआ रंग, तंदुरुस्त सी मूंछें और लंबे-लम्बे घुंघराले बाल। पहली नज़र में ही उनका व्यक्तित्व मुझे आकर्षक लगा। वह मुझसे पुराने मुलाक़ाती जैसी प्रगाढ़ता के साथ मिले। उन्होंने अपना परिचय 'जनवादी विचारों के कट्टर हिमायती युवक' के बतौर दिया। वह तब अलीगढ़ के अपने गांव कौड़ियागंज में रहते थे और गाहे-बगाहे आगरा आकर टिक जाया करते थे। मैंने उनके बारे में कुछ-कुछ सुन रखा था। उनकी कहानी 'अगिहाने,' दो साल पहले 'टाइम्स ऑफ़ इंडिया प्रकाशन समूह' की उस समय की मशहूर कहानी पत्रिका 'सारिका' में प्रकाशित होने और उत्तर प्रदेश के एक स्थानीय जमींदार द्वारा पत्रिका पर मानहानि का मुक़दमा ठोंके जाने के चलते साहित्यिक हलकों में चर्चित हुई थी।

हम पहली मुलाक़ात में ही दोस्त बन गए। वह प्रायः मेरे घर आने-जाने लगे। यहाँ आने का उनका मक़सद मुझसे गप-सड़ाका करना तो होता ही था, मेरे पिता के साथ गंभीर राजनीतिक चर्चा करना और उनसे मार्क्सवाद का ज्ञान बटोरना भी होता था, जिसमें पापा पारंगत थे। वह पापा को 'पापा' कहकर ही सम्बोधित करते। कभी जोश और मस्ती में उन्हें कॉमरेड भी कह डालते थे। हमारी दोस्ती लगातार प्रगाढ़ होती चली गयी। इस बीच सुरेंद्र ने मेरे द्वारा निर्देशित कई नाटक देखे और वह पीयूष श्रीवास्तव, योगेंद्र दुबे और रूपनारायण अवस्थी जैसे नाट्यकर्म के मेरे कई दोस्तों के भी दोस्त हो गए। सुरेंद्र हमारे नाटकों के ज़बरदस्त प्रशंसक बन चुके थे। उन्होंने 'धर्मयुग', 'सारिका' आदि हिंदी की महत्वपूर्ण पत्रिकाओं में हमारी कई नाट्य प्रस्तुतियों की प्रशंसात्मक समीक्षाएं भी लिखीं।

वह उन दिनों देश भर में जहाँ भी जाते, उन नाटकों की और मेरी चर्चा ज़रूर करते। कहानीकार रमेश बत्रा से लेकर हरीश पाठक और सुरेंद्र मनन जैसों से मेरी दोस्ती उस दौरान उन्होंने ही करवाई। डेढ़ दशक बाद जब मैं पेशेवर पत्रकारिता का हिस्सा बन गया था और दिल्ली में नियुक्त था तब एक मुलाक़ात में आगरा का उल्लेख आने पर कमलेश्वर जी ने मेरी बेहतरीन नाट्य प्रस्तुतियों की चर्चा करते हुए मुझसे पूछा था कि मैंने पत्रकारिता के दबाव में रंगकर्म को तिलांजलि क्यों दे दी। किसी समय सुरेंद्र ने ही उनसे मेरे नाट्यकर्म के बारे में ज़िक्र किया था।

सुरेंद्र जवानी के दिनों से ही बकबकिया थे। उनकी जेब में ढेरों श्लील-अश्लील क़िस्से और चुटकुले पड़े रहते थे। उनमें ग़ज़ब की 'ऑब्ज़र्वेटरी' क्षमता रही है। एक बार जिसको देख लेते उसकी हूबहू नक़ल उतार डालते। मैंने कई बार उन्हें नाटकों में अभिनय की दावत दी लेकिन वह 'आगरा में स्थायी ठिकाना न बन पाने' की मजबूरी का बहाना बनाकर मेरा अनुरोध टाल जाते। यूं तो सुरेंद्र के आगरा में दूसरे भी तमाम मित्र थे लेकिन हमारी दोस्ती कुछ अलग धरातल पर विकसित हो रही थी।

दोस्तों की महफ़िलों में सुरेंद्र हमेशा 'ऑन

डिमांड' रहते। लड़कियों और स्त्रियों के प्रति आकर्षण उनके भीतर आजीवन बना रहा। आज का तो पता नहीं लेकिन तब वह अपनी चिकनी ज़बान और लंबी ज़ुल्फ़ों की बदौलत लड़कियों और महिलाओं को भी प्रायः आकर्षित कर लेते थे। सुरेंद्र के इस सुंदरी प्रेम को मैं पसंद नहीं करता था और वक़्त-बेवक़्त उन्हें आड़े हाथों ले डालता था। वह कोई प्रतिक्रिया न देते और मेरी आलोचना पर प्राय: चुप्पी साध जाते। न जाने क्या वजह रही हो लेकिन सुरेंद्र ने अपने मिलने-जुलने वालों में कभी किसी को ढेले भर भी गिना नहीं। यही वजह है कि ठीक-ठाक शख्स होने के बावजूद उनके जीवन में उन्हें गरियाने वालों की जितनी तादाद थी, उन्हें चाहने वालों की तादाद हमेशा उससे कम ही बनी रही। उन्हें शराब पसंद थी हालांकि वह उन दिनों शराब का नियमित सेवन नहीं करते थे। मैं उन दिनों शराब के इस्तेमाल का घनघोर विरोधी था इसलिए न तो उन्होंने कभी मेरी मौजूदगी में शराब पी और न मैंने उन्हें किसी सार्वजानिक स्थल पर शराब पीकर घूमते पाया।

मेरे विवाह के उपलक्ष्य में हम लोगों के घनिष्ठ मित्र रूपनारायण अवस्थी के कमरे पर होने वाली मित्रों की एक अंतरंग नॉनवेज पार्टी के प्रमुख आयोजनकर्ता वही थे। बाद में जब मुझे मालूम हुआ कि वहाँ नॉन वेज सूखा नहीं चबाया गया था तो मुझे बहुत गुस्सा आया। मैंने उन्हें फटकार लगाते हुए कहा कि "तुम्हें कम से कम मेरे विवाह की पार्टी में शराब का आयोजन नहीं करना था।" मैं रूठ गया था और मुझे मनाने मैं उन्हें कई हफ़्ते लग गए थे। यह काफी बाद की बात है और यह तो और भी बहुत सालों बाद की बात है कि मेरे पेशेवर पत्रकार हो जाने और नियमित शराब का सेवन करने की बाबत जब उन्हें पता चला तो उन्होंने बदले में मुझे ख़ूब फटकार लगायी थी। मैं हालाँकि जानता था कि वह मन ही मन फूल कर कुप्पा हुए जा रहे होंगे।

सुरेंद्र के साथ ख़ूब घुमाई-फिराई होती। 'रंगकर्म' (हम लोगों की नाट्य संस्था का नाम) में उनके कई दोस्त बन गए थे। मेरे अलावा वह उन सब के 'सुरेंद्र भाई साहब' होते थे। अकेला मैं ही था जो उन्हें 'सुरेंद्र' कह कर पुकारता और उम्र में पांच बरस छोटा होने के बावजूद उनसे बहुत 'लिबर्टी' ले लेता और वह दे भी देते। कई बार जब सड़क पर चलते-फिरते किसी हलवाई की दुकान या खोमचे वाले के यहाँ रुककर हम लोग कुछ खाते-पीते तो भुगतान का समय आने पर मैं मुंह मोड़ कर खड़ा हो जाता। वह कृत्रिम नाराज़गी के साथ बटुआ खोलते हुए बड़बड़ाते- "क्यों, हड़काने के नाम पर तुम बड़े भाई साहब और पेमेंट के नाम पर ‘’ ‘भैंचो’ हम?"

सुरेंद्र तब धार्मिक आडम्बरों और अंधविश्वासों के सख्त विरोधी थे। उन्होंने इसका गहराई से अध्ययन कर रखा था। उन्होंने कई साधु- महात्माओं की संगत की थी। यूं तो उनका मुख्य मक़सद उनके संग रहकर नशे-पत्ते का सेवन करना था लेकिन इस चक्कर में वह उनके तमाम 'ट्रेड सीक्रेट' से वाक़िफ़ हो गए थे। उनकी पोल खोलने में वह अपने इस ज्ञान का भरपूर लाभ उठाते। एक

पूर्वान्ह उनके साथ मैं, पीयूष श्रीवास्तव और योगेंद्र दुबे घूमने निकले। उस दिन उन्होंने गेरुआ रंग की चमकदार शर्ट पहन रखी थी और अपनी लंबी-लंबी ज़ुल्फ़ों की वजह से किसी मिनी साईं बाबा सरीखे लग रहे थे। हम लोगों ने उनसे छेड़खानी की, उन्हें चढ़ाया और वह पुदीने के पेड़ पर चढ़ गए। उनके दिमाग में तत्काल एक योजना कौंधी। योजना को हम लोगों को समझते हुए उन्होंने योगेंद्र को बाहर ही छोड़ दिया और मुझे व पीयूष को लेकर नज़दीक के एक चाय-पान के ढाबे में घुस गए। यह जगह सेंट जॉन्स कॉलेज के नज़दीक हुआ करती थी। आज यहां मशहूर रमन हलवाई की दुकान है। दोपहर शुरू होने को थी और ढाबे में ठीक-ठाक भीड़ जुटी हुई थी। वह ज़ोर-ज़ोर से बोलते भीतर दाखिल हुए।

"तीन चाय!"

उन्होंने चिल्लाकर कहा और एक ख़ाली मेज़ की तरफ बढ़ गए। मैं उनकी बगल मैं जा बैठा और पीयूष उनके ठीक सामने वाली बेंच पर बैठ गया।। तय प्लान के मुताबिक उन्होंने मुझसे ऊंचे स्वर में कहा "तुम्हें मेरी बात का विश्वास तब होगा जब यह पीयूष सब कुछ बताने लगेगा।" वह आँख बंद करके ऊँचे स्वर में कोई मन्त्र बुदबुदाते हुए खड़े हो गए। उन्होंने पीयूष की तरफ हाथ फेरते हुए ललकारा-

"जा!, चला जा! यह स्वामी सुरेन्द्रानन्द भारती का आदेश है कि चला जा। "

पीयूष आंख बंद करके मेज़ पर ही ढुलक गया और तब उन्होंने अपने मन्त्र के स्वरों को और भी ऊंचा किया। उनके इस अभिनय ने आसपास की मेज़ों पर बैठे लोगों को आकर्षित किया। लोग अपनी आपसी बातचीत छोड़कर उनकी तरफ देखने लग गए। यही तो वह चाहते थे। जब उन्होंने देखा कि मजमा ठीक से जमता जा रहा है तो उन्होंने ज़ोर से मुझसे पूछा-

" बोल क्या जानना चाहता है?"

"जौनपुर में मामा जी बीमार चल रहे हैं। हफ्ते भर से खबर नहीं मिली है। अब उनकी तबीयत कैसी है?" मैंने पूछा। सुरेंद्र ने ऊंची आवाज़ में ही मुझसे मामा जी का और गांव का नाम पूछा और गरज कर पीयूष से कहा-

"लड़के! जौनपुर चला जा और वहां धनियामऊ गाँव ढूढ़ कर प्रभाकर मिश्र की हेल्थ का पता कर और लौट कर बता। बीच में कहीं मती रुकियो वरना स्वामी सुरेन्द्रानन्द भारती नीबू से काट डालेंगे।" पीयूष आँखें बंद किए हुए ही कुछ- कुछ बड़बड़ाता रहा। हम सभी नाटक के एक्सपर्ट थे और हमारी 'दुकान' जमती जा रही थी।

पीयूष ने फ़ौरन बनारस की अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि का इस्तेमाल किया। कुछ ही सेकेंडों में 'वापस' लौटा और बताया-

"तीन दिन पहले बीएचयू में दिखाए थे। तब से कुछ आराम मिलना शुरू हुआ है। अभी लेकिन ठीक होने में दिन लगेंगे, ऐसा डॉक्टरों ने बोला है।"

"इंदिरा गाँधी की पार्टी का भविष्य पूछो!" मैंने

दूसरी 'क्वेरी' की।

"लड़के ……..!" सुरेंद्र फिर गरजे। "……..नयी दिल्ली में इंटेलिजेंस ब्यूरो के डायरेक्टर ऑफिस के फाइल रूम में जा और पता कर कि मोरारजी भाई देसाई ने जो गुप्त सर्वे करवाया है, उसकी क्या रिपोर्ट आयी है।"

"मोरारजी भाई के लिए कोई खुशखबरी नहीं। सारे देश में इंदिरा गाँधी की 'कांग्रेस आई' की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है।"

"रामनरेश यादव का मुख्यमंत्री पद अभी कितना चलेगा?" मेरा अगला सवाल था। पूछताछ पॉलिटिकल हो चुकी थी इसलिए लोगों की रुचियाँ और भी बढ़ती जा रही थीं। भीड़ में से कुछ आगरा की लोकल पॉलिटिक्स के सवाल सामने आये लेकिन सुरेंद्र ने उन्हें यह कह कर 'एंटरटेन' नहीं किया कि "लड़का अभी इनकी सेवा में है। तुम बाद में पूछना।"

इसी बीच तय प्लान के मुताबिक मैं थूकने गया। मुझे थूकता देख बाहर दूर खड़े इंतज़ार कर रहे योगेंद्र ने अपने 'डेस्टिनेशन' से चलना शुरू कर दिया। थूक कर लौटने के बाद मैंने सुरेंद्र से पूछा-

"स्वामी जी क्या आप सड़क चलते किसी को जमूरा बना सकते हो?"

"बरोबर।" वह अब और भी आक्रामक आवाज़ में बोल उठे थे। मैंने सड़क की ओर देखना शुरू किया। दूसरे ही क्षण योगेंद्र हमारी नज़रों के सामने सड़क के उस पार आ पहुंचा था।

इसे रोको!" मैंने इशारा करके आहिस्ता से कहा।

"ठहर जा!" सुरेंद्र ने और भी आहिस्ता से कहा। योगेंद्र को ठहरना था ही, वह ठहर गया। यह दृश्य देख कर ढाबे के भीतर की भीड़ उद्वेलित हुई।

"इधर मुड़ जा!" सुरेंद्र ने और भी मिनमिनाती आवाज़ में निर्देशित किया। योगेंद्र ने गर्दन ढाबे की तरफ मोड़ी। ढाबे के भीतर के लोगों ने तालियां बजायीं। सुरेंद्र ने उन्हें इशारे से शांत रहने को कहा।

"मेरी तरफ आ।" वह बहुत शांत स्वर में योगेंद्र को निर्देशित किये जा रहे थे। योगेंद्र ने सड़क पार करके ढाबे की तरफ बढ़ना शुरू कर दिया। भीड़ को जैसे सांप सूंघ गया हो। सब खामोश। चाय वाला भी बड़ी देर से इस ड्रामे को देख रहा था। योगेंद्र को ढाबे की ओर आता देख वह भी अभिभूत हो गया। योगेंद्र भीतर आया और गुमसुम सा आकर सुरेंद्र का सामने वाली बेंच पर, पीयूष के बगल में बैठ गया।

"कौन है तू?" सुरेंद्र ने उसके बैठते ही सवाल दागा।

"आपका दास हूं स्वामी स्वामी सुरेंद्रानंद सरस्वती।" योगेंद्र भीगी भिल्ली सा मिनमिनाया। सुरेंद्र ने ज़ोरदार ठहाका लगाया।

"तो तैयार हो जा……!"

कुछ देर ठहर कर वह फिर बोले "..... और इस जनता जनार्दन के सवालों का जवाब दे!"

योगेंद्र भी पीयूष की तरह ही मेज़ पर ही लुढ़क गया। अब सुरेंद्र ढाबे में अभिमन्त्रित बैठी भीड़ से मुखातिब हुए।

"पूछो प्यारे पूछो! स्वामी सुरेन्द्रानन्द भारती से अपना भविष्य पूछो!"

लोगों में हड़बड़ी सी मच गयी। सवाल आने लगे। घर के बारे में, माता-पिता के बारे में, बाल बच्चों की पढ़ाई और नौकरियों के बारे में। ज़्यादातर सवाल भविष्य के थे। योगेंद्र उनके सवालों पर अललटप जवाबों की झड़ी लगाता रहा। सबको अपने और अपने परिजनों के भविष्य की चिंता सता रही थी। किसी ने भूतकाल का ऐसा कोई सवाल पूछने की कोशिश नहीं की जो योगेंद्र की कलई खोल सके। एकाध सवाल वर्तमान के आये भी तो सुरेंद्र ने "आज की न पूछ, वो तो तेरे सामने है ही, आने वाले कल की सोच, जिसकी तुझे खबर नहीं" कहकर झटके में उड़ा दिया। अगले 15-20 मिनटों तक सवाल -जवाब का यह दौर चलता रहा। मैंने गर्दन निकाल कर झांका तो देखा कि बाहर ढाबे के नीचे भी सड़क पर भी तमाम लोग जमा हो गए थे।

"अब बस!" कुछ देर बाद सुरेंद्र ने अचानक ब्रेक लगाया।

"लौट आओ मेरे प्यारो!" उन्होंने कहा और पीयूष व योगेंद्र जैसे नींद से जागे।

"मैं कहाँ आ गया?" जम्हाई लेते हुए योगेंद्र ने पूछा।

"कहीं नहीं भइये, आप सामने रोड से निकल रहे थे, आप हमें अच्छे लगे तो हमने आपको चाय पीने को बुला लिया। आप आ गए। बहुत-बहुत धन्यवाद।" योगेंद्र खोई-खोई नज़रों से जैसे वातावरण को पहचानने की कोशिश कर रहा था। हम सब उसके इस जीवंत अभिनय से बेहद प्रभावित थे।

"चाय मास्टर, चाय लाओ! हमारे शेर सारा हिन्दुस्तान घूम कर आये हैं, थक गए होंगे। इन्हें कुछ खिलाओ भी।" उन्होंने चाय वाले को आदेश दिया जो हाथ जोड़े गर्दन हिलाता अपना 'गल्ला' छोड़ हमारे सामने आकर खड़ा हो गया था।। भीड़ में स्वर गूंजने लगे-

"मेरी तरफ से इन्हें टोस्ट-मक्खन....!" किसी ने पुकारा।

"..... मेरी तरफ से ब्रेड-आमलेट!" यह दूसरे कोने से आयी आवाज़ थी। कुछ ही देर में

मेज खाने-पीने के सामान की प्लेटों से सज गयी। इन सामानों में बगल के उस ज़माने के मशहूर चतुर्भुज हलवाई की दुकान से आयी भक्तों की मीठी 'भेंटें' भी शामिल थी।

खा-पीकर सुरेंद्र ने मूछें पोंछीं। लोग थे कि कूदते-फांदते उनके चरणों में समाये जा रहे थे। मुस्कराते हुए भौंहें तरेर कर कुछ-कुछ उस ज़माने के फिल्मी विलेन अजीत के अंदाज़ में उन्होंने हमारी तरफ घूरा मानो अभी कह देंगे- 'मोना डार्लिंग। देखना कैसे यह टाइगर शो का परदा अभी नीचे गिरा देगा। देखने वाले सरप्राइज़ हो जाएंगे।'

उनके भीतर क्या घुमड़ रहा था पता नहीं लेकिन सामने रखे नाश्ते के सामान की खाली प्लेटों को देखकर हम तीनों के प्राण सूखे जा

रहे थे। मैं सोच रहा था कि सुरेंद्र इस पूरे घटनाक्रम का उपसंहार कैसे करेंगे। डर भी लग रहा था कि कहीं पिटने की नौबत न आ जाये।

“अलख निरंजन! उन्होंने डकार लेते हुए भीड़ को अपने चरणों से दूर खिसकने की कोशिश की। एक लड़का उनके कान में कुछ फुसफुसाया। मुस्कराते हुए उन्होंने जवाब दिया -

"वो भी बताएंगे। सट्टे का भी और लॉटरी का नंबर भी बताएंगे। लेकिन उसके लिए भक्त को स्वामी जी की कुटिया की दहलीज छूनी होगी।"

"आपका महल कहाँ है महाराज?" लड़के ने ज़ोर देकर पूछा।

"कौडियागंज, बच्चा। कौडियागंज।" सुरेंद्र ने अपने चरणों को अब तक भीड़ के चंगुल से मुक्त कर लिया था।

"ये कहाँ है?" भीड़ में खुसर-पुसर होने लगी।

"इतना भी नहीं जानते तो कैसे होगा बच्चा? पता करो! जानकार लोगों से पूछो!" हाथ के इशारे से उन्होंने भीड़ को शांत किया। फिर गरज कर बोले-

"तुम सभी निरे मूर्ख हो।" भीड़ हाथ जोड़े खड़ी थी।

"क्या हो?"

“मूरख हैं महाराज।" भीड़ का प्रत्युत्तर आया।

"क्यों हो?" सुरेंद्र ने फिर पूछा। भीड़ निरुत्तर थी। काफी देर के इंतज़ार के बाद उन्होंने ही अपना जवाब दिया-

"अरे गेरुआ पहने तुम्हें सड़क चलता कोई भी तुम्हें दीखता है और तुम उसके पाँव पकड़ लेते हो। वह तुम्हें उल्लू बनाकर चला जाता है और तुम बन जाते हो.....।" भीड़ अभी भी इसे उनकी महिमा की ज्योति की तरह ही सुन रही थी।

“मैं सचमुच का स्वामी हूँ कि नक़ली, तुम्हें पता है?"

"असली हैं महाराज"

"और मेरे ये चेले?'

"ये भी आपके असली भक्त हैं महाराज।" भीड़ चिल्लाई।

"नहीं! न मैं असली स्वामी और न ये असली भक्त।"

कुछ देर गर्दन 'पेन' करके उन्होंने भीड़ को इस कोने से उस कोने तक घूरा। लोग थे कि हाथ जोड़े भक्ति भाव में डूबे ही थे। इसके बाद सुरेंद्र 10 मिनट तक पूरे प्रवाह से बोलते रहे। मैंने उन्हें ऐसे धाराप्रवाह में बहकर बोलते आज तक नहीं सुना था। उन्होंने स्वयं को 'आगरा विज्ञान मंडल’ का मेंबर बताया। (यह नाम भी उन्होंने अभी झटपट से गढ़ डाला था।) उन्होंने बताया कि हम लोग ऐसे ढोंगियों और पाखंडियों की पोल खोलने का अभियान चला रहे हैं जो तुम जैसी जनता-जनार्दन को मूर्ख बनाते हैं, उन्हें ठगते हैं और आज का हमारा ये ड्रामा उसी अभियान का हिस्सा था। अब भीड़ में सन्नाटा भर आया। अपना लंबा

सा भाषण पूरा करने के बाद उन्होंने अपना बटुआ खोला और चाय वाले को पुकारते हुए पूछा कि आज का टोटल खर्चा कितना हुआ बताओ? चाय वाला किंकर्तव्यमूढ़ सा काँप रहा था। वह समझ नहीं पा रहा था की सच किसे माने? जो अभी बताया गया उसे या जो कुछ क्षण पहले देख रहा था उसे? बाकी लोगों की भी कमोबेश यही दशा थी। सभी स्तब्ध थे। सड़क पर खड़े सेंट जोन्स कॉलेज के कुछ छात्र ऊपर चढ़ आये। उन्होंने सुरेंद्र से हाथ मिलाते हुए उनका धन्यवाद दिया और कहा कि आज उनकी आँखें खुल गयी हैं। सुरेंद्र सौ-सौ के तीन नोट निकाल कर दुकानदार के गल्ले की ओर बढे।

"बोल भइये बोल, क्या बिल बना?"

"कुछ नहीं भाई साहब। ये सब हमारी तरफ से। कोई तो मिला जिसने हमारी आँखें खोल दीनी।" उसने अब नए सिरे से सुरेंद्र के पैर छुए।

"नहीं नहीं, पैर नहीं।" सुरेंद्र दो नोट वहीँ गल्ले पर छोड़ कर बाहर निकल आये। उनके पीछे-पीछे हम तीनों भी बाहर आ गए थे। दुकानदार उन नोटों को लेकर सुरेंद्र के पीछे भागा। सुरेंद्र के हाथ जोड़ते हुए "आपको हमारी सौगंध भाईसाब जो इन्हें न लिए।" सुरेंद्र की जेब में नोट वापस ठूंसते हुए वह रिरियाया। पीछे-पीछे भीड़ भी 'स्वामी सुरेन्द्रानन्द' की जय-जयकार करती आ गयी थी। सुरेंद्र ने उन्हें डांटते हुए कहा मैं- सुरेंद्र सुकुमार हूँ, स्वामी सुरेन्द्रानन्द नहीं। वही लोग जो कुछ देर पहले उनकी चरण रज ले रहे थे, अब उनसे हाथ मिलाने को लालायित हो गए।

हम लोगों ने घटिया चौराहे पर जाकर एक अन्य ढाबे में चाय पी और आज के करतब की मीमांसा की।

"भाई साब, बाकी तो ठीक है पर भाषण के इत्ता जानदार होने के पीछ क्या राज़ था।?" योगेंद्र ने पूछा।

"अनिल तो गधा है ही, तुम भी मूर्ख हो चुन्नू.....?" योगेंद्र को फटकारते हुए उन्होंने कहा।

".....अरे आज सुबह बेलनगंज वाले पंडित जी के यहां से छानकर आये थे। जिस समय हमारा भाषण चल रहा था उस समय खूब नसे फट रहे थे।" यह पूरा घटनाक्रम किसी कहानी से कम नहीं लगता। सुरेंद्र सिर्फ़ कहानियां लिखने में ही नहीं, गढ़ने की कला में भी पारंगत थे।

शाम को जब मैं जैन साहब के ढाबे पर पहुंचा तो सुरेंद्र वहां पहले से मौजूद थे और शहर के साहित्यकारों को अपनी दोपहर की तीसमरखाई बयान करके आतंकित कर रहे थे।

सुरेंद्र आगरा आते तो कैप्टन व्यास चतुर्वेदी के यहाँ रुकते थे। कैप्टन व्यास एक स्वयंभू कवि थे, फौज से रिटायर होने के बाद ब्रासवेयर आइटम की सप्लाई का धंधा करते थे। अपने 'पीआर' को मज़बूत बनाना कैप्टन के धंधे की डिमांड भी थी और उनका निजी शौक़ भी। यही वजह है कि ब्रासवेयर के धंधे में साहित्य और साहित्य के धंधे में ब्रासवेयर का घोल तैयार कर देने की कला में वह माहिर थे। स्थानीय और बाहर से आने वाले कवि-

लेखकों पर डोरे डालना कैप्टन का शगल भी था और ज़रूरत भी। अपने फौजी कोटे की व्हिस्की से वह उनका दिल खोलकर स्वागत करते। जिन कवि-कथाकारों को वह अपने किसी काम का नहीं मानते थे या जिन्हें फटीचर समझते थे उनकी सार्वजानिक मंचों पर उपेक्षा भी कर देते और वक़्त ज़रूरत अपमानित भी। सुरेंद्र भी जब कैप्टन से कई बार आहत हुए तो एक दिन उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या वह अपना बोरिया-बिस्तर मेरे यहाँ डाल सकते हैं?

"पापा और मम्मी की राय भी ले लेना।" मेरे 'हां' कह देने पर यह उनकी दूसरी टिप्पणी थी। मैंने पापा-मम्मी से कहा। वे भला क्यों इनकार करते। वैसे भी पापा ने हमारे घर के ढांचे को बड़े लोकतान्त्रिक तरीके से विकसित किया था। हम तीनों सदस्यों को अपने-अपने अतिथियों को बुलाने के लिए बाकी दो की परमीशन नहीं लेनी पड़ती थी। जिसका मेहमान आना होता उसे शेष दो को सूचित करना होता कि अमुक मेहमान आ रहा है। मम्मी को विशेष रूप से सूचना देनी होती क्योंकि आखिर तो खाना-पीना उन्हीं को बनाना होता था। चूंकि 'होल टाइमर' राजनीतिक-सामाजिक कार्यकर्ताओं के घरों का आर्थिक ढांचा कमज़ोर होता है, इसलिए अतिथि की दाल-रोटी की बाबत ज़रूर जुगाड़ करना पड़ता। इस संकट में मेरे और पापा की मददगार अक्सर मम्मी ही होतीं। प्राय: हमारे अतिथि भी आर्थिक संकटों में हमें नहीं पड़ने देते थे और किचन की ज़रूरतमंद चीज़ लाते रहते। वैसे भी आज की माफ़िक यह कोई बहुत महंगा दौर नहीं था। मम्मी-पापा के बाद लम्बे समय तक यह परम्परा मैंने और मेरी पत्नी मनीषा ने अपने घर में बरक़रार रखने की कोशिश की। बेटों ने तीन पीढ़ियों की इस रवायत को स्वीकार नहीं किया।

सुरेन्द कभी हमारी लोकल सब्ज़ी मंडी की तरफ से आ रहे होते थे तो अपनी पसंद की सब्ज़ियां लेते आते। उस दिन रसोई उनके नाम होती, मम्मी के नहीं। वह सब्ज़ी को अच्छे से धोते, काटते और फिर लहसुन-प्याज़ और मसालों के बीच उन्हें जम कर भूनते। उस दिन मम्मी मेरे और उनके लिए दो-दो तीन-तीन रोटी एक्स्ट्रा सेंक कर रख देती थीं। सुरेंद्र अद्भुत 'शेफ' हथे, वेज और नॉन वेज दोनों के। कभी जोश में आते तो पापा से पूछते-" पापा कल बकरा पकाया जाय? पापा की स्वीकारोक्ति के बाद वह अगले दिन सुबह-सुबह हिजड़ों वाली मस्जिद की गोश्त मंडी जाते और सेर भर गोश्त खरीद लाते। उन्हें गोश्त की अच्छी पहचान थी। वह बड़े छांट-छांट कर 'रान' और 'पुष्त' के 'पीस' खरीदते और कसाई की हरगिज़ ढिठायी न चलने देते। घर लाकर वह बड़ी देर तक गोश्त की साफ़-सफाई करते और उसे धोते। तब कढईया चढ़ती। वह देर तक गोश्त को भूनते फिर लहसुन-प्याज की छोंकाई होती और सबसे बाद में मसाले में गोश्त भुनता। गोश्त और मसालों की महक हमारे अड़ोस-पड़ोस में गूंजने लगती और तब आँगन में फालतू बैठी मम्मी को देखा कर पड़ोस की रविंद्र की जिज्जी (मां) पूछना न भूलती- " आज तो लगता है सुरिंदर ने बहनजी की रसोई

पर कब्जा जमा रखा है? " मम्मी धीमे से मुस्करा देती।

अपने स्वस्थगत कारणों से पापा इसमें से एकाध बोटी और थोड़ा ही सा ही शोरबा चखते और बाकी के सारे गोश्त पर मेरा और सुरेंद्र का क़ब्ज़ा रहता लेकिन हम दोनों यह कहने से बाज़ न आते कि 'पापा के लिए गोश्त बनाया जाय!' पापा हम लोगों की बात सुनकर धीरे से हंस देते।

वक़्त धीरे-धीरे बढ़ता चला गया। कमलेश्वर ख़ेमे के साहित्य सम्मेलनों में देश के अलग-अलग कोनों में सुरेंद्र जाते रहे और घूम-घाम कर आगरा लौटते रहे। हम लोग दिन में घंटों-घंटों घर में बैठकर या घूम-फिर कर चर्चाएं करते। इन चर्चाओं में थिएटर तो होता ही, साहित्य और राजनीति की तमाम बातें होतीं। उनके मन में कमलेश्वर खेमे में पहुँचने वाले बहुत से नामचीन साहित्यकारों के प्रति वितृष्णा फैलती जा रही थी। वह उनकी कथनी और करनी के अंतर से बहुत निराश थे। वह उन्हें पाखंडी कहने लग गए। वह चूंकि मुझसे बहुत अपनत्व रखते थे और मुझे भरोसे का मानने लग गए थे इसलिए कभी-कभी मेरे सामने कमलेश्वर पर भी तलवार चला देते।

वह पापा से भी अपने इस नैराश्य पर बात करते। पापा उन्हें समझाते कि मूल भटकाव कम्युनिस्ट आंदोलन का है तब भला उससे जुड़े साहित्यकार और उनके संगठन कम्युनिस्ट आंदोलन के इस अवसरवाद से बाहर कैसे जा सकते हैं? वह पापा से बहुत प्रभावित थे। खास तौर पर क़ुरबानी के मामले में पापा का जज़्बा और भविष्य के इंकलाब की बाबत उनकी प्रतिबद्धता अक्सर सुरेंद्र को भी जोश से भर देती। अपनी तमाम बीमारियों में भी पापा का सक्रिय बने रहना, देश भर में उनके घूमना-फिरना और घर लौट कर लिखाई-पढाई करते देखने का अक्स वह बाहर के अपने जनवादी कथाकार मित्रों में ढूंढ़ते और न मिलने पर उन्हें जम कर गरियाते। वह पापा को अपने आदर्शों में गिनने लगे थे। वह इस तुफ़ैल में खुद को भी मार्क्सिस्ट-लेनिनिस्ट कहने लगे थे। उनके इस बयान का बाहर के शहरों में लोगों में कितना असर होता होगा पता नहीं लेकिन यहाँ आगरा में, मैं और पीयूष जैसे लोग उनसे कह देते- 'चलो-चलो। उसके लिए अभी बहुत ऊंचा पहाड़ चढ़ना पड़ेगा तुम्हें।' वह और भी दोगुना जोश भरकर बोलते- "मैं चढ़ भी जाऊंगा अनिल! तुम देखते रह जाओगे।"

वह भीतर से उस पहाड़ पर चढ़ना चाहते थे। चढ़ पाते या नहीं, पता नहीं लेकिन इसी बीच उनके साथ एक दुर्घटना हो गयी।

यह 1979 की गर्मियों की बात है। हुआ यूं कि एक दोपहर सुरेंद्र कौडियागंज

से आये। पापा सो रहे थे लेकिन मैं जाग रहा था। वह कुछ उखड़े-उखड़े लग रहे थे। उन्होंने आते ही मुझसे कहा कि इंक़लाब यूं नहीं आ सकता। ज़रूरी है उसको भारतीय परिस्थितियों के साथ जोड़ कर तैयार किया जाए। मैंने कहा कि इसमें कौन सी नयी बात है? हर देश में नेताओं ने वहां की परिस्थितियों के अनुरूप

ही मार्क्सवाद-लेनिनवाद को ढाला है। चीन में माओ ने, वियतनाम में होचीमिन ने, क्यूबा में चेगुवेरा ने……..

"नहीं नहीं कॉमरेड.....।" उन्होंने पहली बार मुझे इस शब्द से सम्बोधित किया। "……हम एक धार्मिक देश हैं। जब तक इंक़लाब की जड़ों में धर्म की खाद नहीं डाली जाती, कुछ नहीं होने वाला।" पहले मुझे लगा कि यह कहीं भांग-गांजा लेकर तो नहीं आये हैं। पूछा तो उखड़ गए।

"यार, यही तो मुश्किल है। सही बात कहो तो लोग नशेबाज़ समझने लग जाते हैं।" वैदिक धर्म और मार्क्सवाद के संयोजन की अपनी हाइपोथीसिस पर वह मुझसे देर तक उलझते रहे। शाम को पापा सोकर उठे तो उनसे भी जूझ गए। रात में आँगन में 4 चारपाइयाँ बिछाई गयीं। खाना-पीना करके पापा जल्दी सो जाते थे। उनके सो जाने पर वह मुझसे वाद -विवाद करते रहे। आखिरकार मैं भी सो गया। आधी रात के बाद का वाकया है, मेरी नींद टूटी तो देखा वह आँगन में चहलकदमी कर रहे हैं। बीच-बीच में रुककर वह आसमान की तरफ ताकते, अपने दाहिने हाथ की उंगली ऊपर की तरफ हवा में उठाकर गोल-गोल घुमाते और फिर 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर आगे बढ़ जाते। मुझे इस दफा उनका व्यवहार बड़ा अजीब सा लग रहा

था। एकाध बार उन्होंने वहां रखी सुराही में से पानी निकला और मुंह ऊंचा करके गिलास से उड़ेल कर पी लिया। मैं इस बीच फिर सो गया। सुबह सो कर उठा तो देखा वह जाग रहे थे।

"सोये नहीं लगता है?' मैंने यूं ही पूछ लिया।

"यार, देश इतने मुश्किल हालात से गुज़र रहा है तो नींद किस भैंचो को आएगी?" जल्दी नहा-धोकर वह तैयार हो गए तो मम्मी ने नाश्ते की कही। उन्होंने जैसे-तैसे दो पराठे और सब्ज़ी खायी हुए अपना बैग उठा लिया। उन्हें चंडीगढ़ एक साहित्य सम्मलेन में जाना था। सम्मलेन का आयोजन 'सारिका' वाले रमेश बत्रा के मित्रों ने किया था।

"लौटूंगा तो मेरे हाथ में सफलता की कुंजी होगी, कॉमरेड।" दरवाज़े से निकलते समय उन्होंने गर्मजोशी के साथ हाथ मिलाते हुए मुझसे कहा। चार दिन बाद वह लौटे तो उनके पास कुछ और था।

सारी रात नाटक के साथियों के साथ शहर में अपनी आगामी नाट्य प्रस्तुति के पोस्टर लगा कर मैं सुबह पांच बजे के आसपास घर लौटा था। घर के आखिरी कमरे में ठंडे फर्श पर दरी बिछा कर गहरी नींद में था। अचानक लगा कि कोई मुझे -झकझोर कर जगा रहा है। आहिस्ता से आँखें खोलीं तो देखा कि कोई लड़की मेरे ऊपर झुकी मुझे झकझोर रही है। थोड़ा और तन्द्रा टूटी तो देखा कि लड़की के बाल बिखरे हुए हैं और डबडबायी आँखों से आंसू बहे जा जा रहे हैं। अगले भाव में कानों ने उसकी आवाज़ को पकड़ने की कोशिश की-

"अनिल भैया उठिये! मैं पम्मी, सुरेंद्र सुकुमार की बहन। सुरेंद्र भैया पागल हो गए हैं! यह आवाज़ जब दूसरी बार भी कानों में ऐसी ही पड़ी तो एकदम से नींद टूट गयी। हड़बड़ा कर

मैं उठ बैठा। पम्मी मुझसे लिपट कर फूट पड़ी-

"सुरेंद्र भैया पागल हो गए हैं, अनिल भैया।"

"कहाँ है वह?" मैंने पूछा।

"बाहर। गाड़ी में।"

भाग कर मैं बाथरूम गया और जल्दी-जल्दी मुंह पर पानी के छींटे मारे। मम्मी आंगन में बैठी रो रही थीं। पापा अभी-अभी बाहर से सुरेंद्र को देख कर लौटे थे। डॉक्टर होने के नाते बहुत शांत स्वर में मुझसे बोले "अ केस ऑफ़ स्किज़ोफ्रेनिया।" बाहर आया तो हमारे चबूतरे से सटी एक टैक्सी खड़ी थी। चारों तरफ तमाशाइयों की भीड़ थी। चूंकि सुरेंद्र लंबे समय से घर आते-जाते थे लिहाज़ा आस-पड़ोस के लोग उन्हें अच्छा से पहचानते भी थे।

"नहीं बलराम, ऐसे न पकड़ो प्लीज़ बलराम ..... कहना मान जाओ।" उनके बड़े भाई शैलेन्द्र भाई साब उन्हें कस कर पकड़े हुए थे और वह उन्हें बलराम कहकर बुला रहे थे। बार-बार वह किसी तरह अपना दाहिना हाथ छुड़ा कर टैक्सी की खिड़की से बाहर निकाल लेते और पहली उंगली को आकाश की तरफ ज़ोर-ज़ोर से गोल-गोल घुमाते। शीलू भाई साब किसी तरह खींच-खाँच कर उनका हाथ अंदर कर लेते लेकिन वह कुछ ही देर में फिर इसकी पुनरावृत्ति करने लग जाते।

मैं समझ नहीं पा रहा था की माज़रा क्या है। फिर मुझे लगा कि चंडीगढ़ के सम्मलेन में शायद कथाकार बलराम से सुरेंद्र की कुछ कहा-सुनी हो गयी हो। वह सारे दिन शीलू भाई को बलराम ही कहते रहे। मुझे देखा तो "हेलो कॉमरेड!" कहकर चिल्लाये।

बहरहाल, दोपहर तक यह खबर आगरा के साहित्यिक-सांस्कृतिक हलकों में फ़ैल गयी। लोग जमा हो गए। हम लोगों की भागदौड़ के बाद शाम तक सुरेंद्र को आगरा के मानसिक चिकित्सालय में दाखिल करा दिया गया। वह वहाँ 19 दिन तक रहे। इस बीच शैलेन्द्र भाई साब आते-जाते रहे। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर सुरेंद्र को मानसिक रोग हुआ तो कैसे। मैं सोचता था कि कहीं उन्होंने चंडीगढ़ में कोई नशे के ऐसे पदार्थ का सेवन तो नहीं कर लिया जो दिमाग में चढ़ गया हो। पापा बोले कि नहीं, चंडीगढ़ जाते समय जब वह आगरा आया था, गड़बड़ तभी से शुरू हो चुकी थी।

बहुत बाद में, जब वह स्वस्थ हो गए तो मैंने उनसे पूछा कि क्या चंडीगढ़ के साहित्य सम्मलेन में उनकी बलराम के साथ कुछ कहा -सुनी हो गयी थी?

"नहीं तो।" वह बोले।

"तो तुम बलराम- बलराम क्यों चिल्ला रहे थे।"

"अरे यार..... वो दूसरा लफड़ा था।।"

"क्या?" मैंने फिर पूछा। वह मुस्कराये।

"मुझे श्रीकृष्ण का आत्मबोध हो गया था।" वह बोले।

"मतलब?" मेरी समझ में उनकी बात नहीं आयी।

"मुझे लगने लगा था कि मैं श्रीकृष्ण हूँ और सुदर्शन चक्र लेकर घूम रहा हूँ। ..... जब मैं श्रीकृष्ण हूँ तो भाई साब बलराम हुए कि नहीं?"

"वाह यार, बड़ी दूर की कौड़ी लाये थे।" मैंने

कहा।

"अरे भाई सुरेंद्र पागल भी होगा तो किसी स्टैंडर्ड का।" ठहाका मार कर वह बोले।

एक दिन ऐसी ही बातचीत में शैलेन्द्र भाई साहब ने उनकी बीमारी के कारणों का जो राज़ खोला वह कुछ चौंका देने वाला था। उन्होंने बताया कि उनकी बुआ की बेटी है। सुरेंद्र का उसके साथ कुछ चक्कर चल रहा है।

"अब ये ऐसा रिश्ता है कि इसे कौन स्वीकार कर लेगा?" शीलू भाई साहब बोले।

"क्या लड़की भी इनके इश्क़ में बाबस्ता है?" मैंने पूछा। उन्होंने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

"फिर तो ये भाई-बहन के रिश्ते हुये ही नहीं जब दोनों एक-दूसरे को इस नज़र से नही देखते।" मैंने कहा।

जब मैंने शीलू भाई साहब को ज़्यादा कुरेदा तो मालूम पड़ा कि लड़की सगी बुआ की है भी नहीं। बुआ की ननद की बेटी है।

"अरे भाई साहब फिर काहे के भाई-बहन?" मैं हमलावर हुआ। शीलू भाई साहब बोले -

"पर गाँव में तो ये सब नहीं चलता है।"

"अरे यार तो शहर में चलाओ। कौन कहता है कि गाँव में चलाओ। दोनों की शादी शहर में बुला कर करवा दो।" शीलू भाई साहब को मेरी बात अविश्वसनीय लगी।

"नहीं मानोगे तो लड़के से हाथ धो बैठोगे। क्या पता लड़की से भी हाथ धो बैठो।" मैंने यह बात पापा को बताई। उन्होंने भी शीलू भाई को समझाया और अपने पिताजी से बात करवाने को कहा। शीलू भाई जब गए तो पिताजी के नाम एक इस आशय का एक पत्र पापा ने लिख कर दिया।

सुरेंद्र के पिताजी रिटायर्ड सरकारी कर्मचारी थे लकिन प्रगतिशील और खुले विचारों के थे और सुरेंद्र से उन्हें बड़ी मोहब्बत थी। पापा के पत्र ने उन पर गहरा असर डाला। वह बात को आगे बढ़ाने को तैयार हो गए। सुरेंद्र जब स्वस्थ होकर चिकित्सालय से बाहर आये तो कुछ गैप के बाद मैंने, पापा ने और उधर गाँव में शीलू भाई ने उनसे इस बारे में चर्चा की और उनके भीतर के अपराध बोध को मिटाने की कोशिश की। बातचीत जब आगे बढ़ी और लड़की के घरवालों ने आपत्ति नहीं हटाई तो लड़की ने भी गहरा प्रतिरोध दर्ज करवाया। आख़िरकार उसके घरवाले दबाव में आये।

तमाम पक्षों की कोशिशों के बाद आख़िरकार 6 फ़रवरी सन् 82 को सुरेन्द्र उन्हीं सुधा देवी के साथ दाम्पत्य में बंधे। इस तरह एक जंगी लव स्टोरी ठिकाने लगी और हम सभी ने चैन की सांस ली।

*अनिल शुक्ल : संस्कृतिकर्म और हिंदी पत्रकारिता में 5 दशकों की जीवंत पारी। 'रविवार' (आनंदबाजार पत्रिका प्रकाशन समूह), 'संडे मेल' और 'अमर उजाला' में 80 और 90 के दशक में नौकरियाँ। दूरदर्शन के लिए 'क़ामयाब' और 'ग्रेट मास्टर्स', नाम से डॉक्युमेंटेशन की श्रंखलाओं का निर्माण और निर्देशन, दर्जन भर से ज़्यादा चर्चित डॉक्यूमेंट्री फ़िल्मों का निर्माण। स्वतंत्र पत्रकारिता के साथ-साथ इन दिनों आगरा में रहकर ब्रज की 400 वर्ष पुरानी लोक नाट्य कला 'भगत' के पुनरुद्धार को सक्रिय।

सुरेन्द्र

सुकुमार मेरे

अभिन्न मित्र हैं

लेकिन आदमी विचित्र हैं

लडते हैं झगड़ते हैं।

बहुत जल्दी मान भी जाते हैं।

होशियार भी खूब हैंआदमी पहचान जाते हैं।

नशा कोई भी हो स्वीकार है।

संतों फकीरों का खुला दरबार है।

दूसरे केदुख में दुखी

दूसरे के सुख में सुखी

प्रतिभा बहुमुखी।

कविता मे कहानी , कहानी में कविता

कब घुस गई इन्हें नहीं पता।

बहुत से बनाये गुरू

कहां से करूं शुरू

टिकेनहीं कहींभटकतेरहे

पकड़ से रहे दूरछिटकतेरहे।

दूसरों की मदद को हमेशा तैय्यार।

यारों के यार।

सुन्दर मोटी औरतों से दोस्तीके शौकीन।

व्यंग्यकार महीन।

पैरों के नीचे अपनी ज़मीन।

गप्पू नामचीन

मगर हैं ज़हीन।

आमीन आमीन।

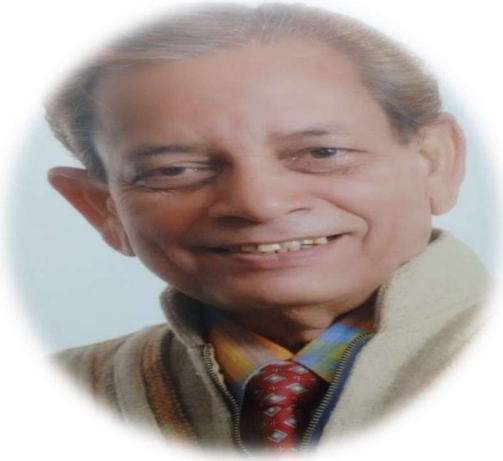

रामेंद्र त्रिपाठी

44ए, प्रतापनगर आगरा10उ,प्र

9412264988

सुकुमार हमारे बहुत निकट थे

उदयप्रताप

हालांकि आजकल मैं और सुरेंद्र सुकुमार मजबूरन दूर दूर रहते हैं। वह अलीगढ़ के स्थाई बाशिंदा हैं और हम लखनऊ की अचल सम्पत्ति होकर रह गए। लेकिन एक समय था जब सुकुमार हमारे बहुत निकट थे आत्मा से भी मन से भी। हमारे संबंधों की प्रगाढ़ता वैयक्तिक कम थी पारिवारिक ज़्यादा थी वह मेरी पत्नी को अपने वंश का नुमाइंदा समझते थे और हम उनकी पत्नी सुधा और बेटी अपूर्व को अपने स्नेहपूर्ण आशीर्वाद का सुपात्र मानते थे। सुरेंद्र सुकुमार का गम्भीरता से वही सम्बन्ध है जो नास्तिक का भगवान से माना जाताहै। हास्यरस के श्रेष्ठ कवियों में उनकी गिनती रही,उनकी कहानियां एक समय हिन्दी की श्रेष्ठ पत्र पत्रिकाओं की शोभा होती थीं। उन्होंने अपनी क़लम की प्रतिभा को भी कभी गम्भीरता से नहीं लिया वर्ना आज उनका स्थान कहीं और ही होता। खाओ पियो मौज करो उनका जीवन का सूत्र रहा है। और तो और जिन कविसम्मेलनों से पैसा और ख्याति मिलती थी उनको भी उतनी गम्भीरता से नहीं लिया जितना उनके साथी दूसरे मात्र मंच से ही जीविकोपार्जन करनेवाले बड़े कवियों ने लिया।

मुझे पता है कि सुकुमार को मुझसे और मुझे उनसे व्यक्तिश: सपरिवार हार्दिक लगाव रहा है। पर न जाने क्यों मुझे मुझे कभी कभी लगता था कि मेरी तरह वक्तन फवक़्तन सुधा और पूर्वा भी उससे अति लगाव के बावजूद उसकी बच्चों जैसी बाचाल

चपलता से खिन्न होते होंगे। फिर बच्चों जैसे भोलेपन पर मोहित भी होते होंगे। इसी अंतर्विरोध का नाम सुकुमार है। ऐसी ही खिन्नता में मैंने एक चौकड़ी लिखी थी

है सुकुमार स्वभाव के ये विपरीत के पाले न
कोई झमेला चित्त सदा दुविधा में रहे कभी
घाटशिला कभी राउरकेला देखन में बिरला
को भतीजा पर पास में नाहीं है फ़ूटो अधेला

तर्क से ज़्यादा कुतर्क करे शठ आयो बड़ो
रजनीश को चेला

मैंने सुरेंद्र सुकुमार के साथ जाने कितनी यात्राएं की हैं जाने कितने मंचों पर साथ-साथ कविताएं पढ़ने का काम किया है। हमारे बीच पत्राचार हुआ करते थे जब कभी मुझे फुर्सत होती थी तो मैं सुरेंद्र सुकुमार के पास अलीगढ़ पहुंच आराम मौज मस्ती करने जाता था मुझे याद है कि जब मुझे राज्यसभा का टिकट मिला था तभी मैं सुरेंद्र के घर पर उनके ठहाके सुन रहा था और मुझे वही यह खबर दी गई थी और जब मेरा चयन राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग में सदस्य के रूपमें

हुआ था तब भी मुझे सुरेंद् कुमार के घर से बहुत खोजबीन के बाद दस्तयाब किया गया था। स्पष्ट उस दृष्टि से सुरेंद्र का सत्संग मेरे लिए बड़ा शुभ रहा है।

इसीलिए सब ख़ूबसूरत प्यारी नादानीयां को अदेखा

करता रहता हूं। और दुआ करता हूं कि वह दीर्घायु हो

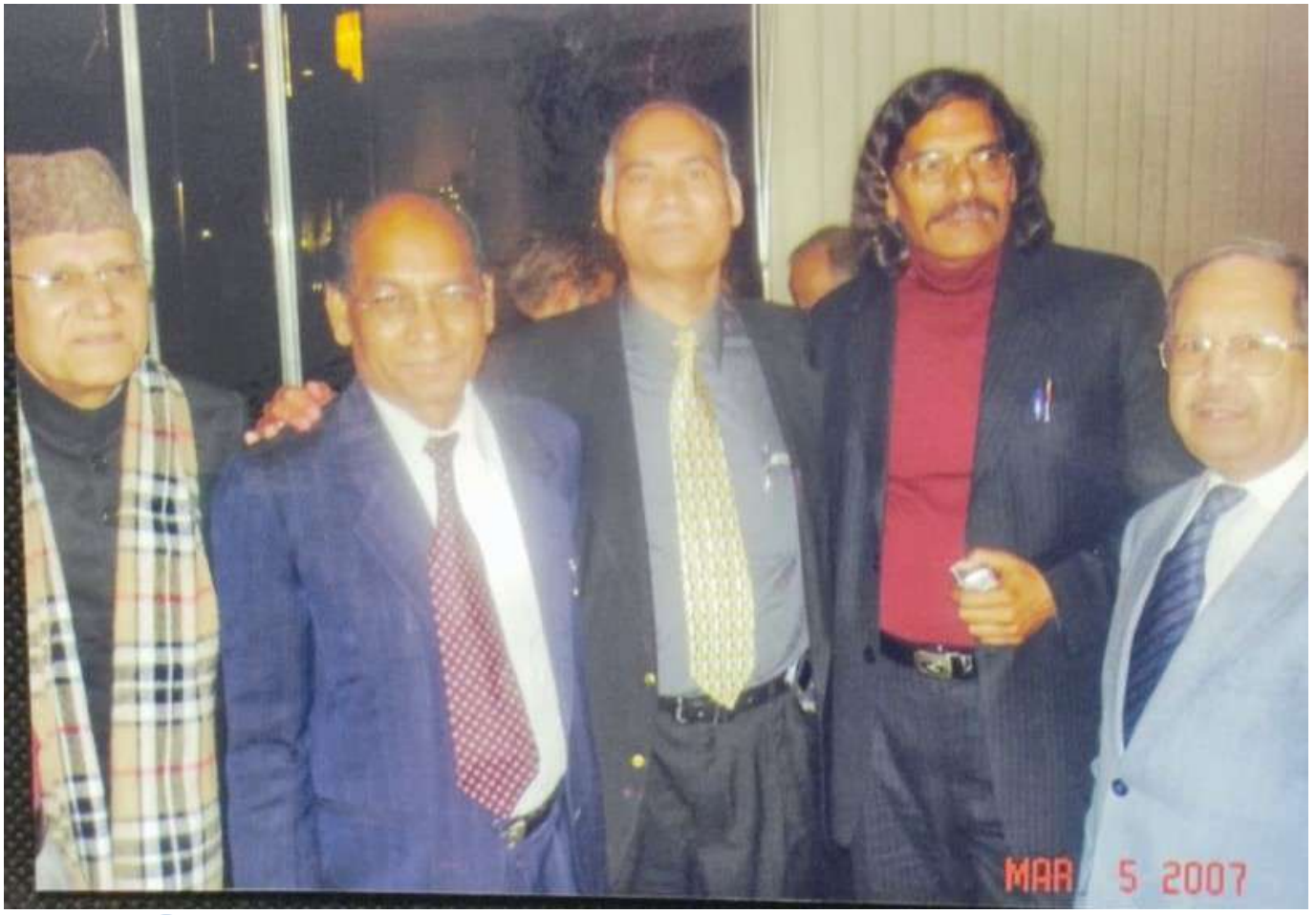

साहित्य की अलख अब तक

कमलेश भारतीय

सुरेंद्र सुकुमार से मेरी मुलाकात तो एक ही है लेकिन परिचय बरसों पुराना ! वे दिन थे दिल्ली के टाइम्स ऑफ इंडिया , रमेश बतरा और हमारे परिचय के ! मैं पंजाब के नवांशहर से रमेश बतरा से मिलने आता तो सुकुमार अलीगढ़ से। इस तरह वहां अनेक मित्रों से जान पहचान बनी और इनमें से एक थे सुरेंद्र सुकुमार ! एक हैं अब तक मेरे साथ हमसफर सुरेंद्र सुकुमार ! मुझे याद है कि उन दिनों सारिका में सुकुमार की एक बहुत प्यारी सी गजल आई थी -

यार ! तू बीढ़ी जला !

यह गजल तब हर किसी की जुबान पर चढ़ गयी थी । यह सफलता थी सुकुमार की । रमेश बतरा हमें चाय पिलाने और अच्छे से मिलवाने नीचे चाय की रेहड़ी के पास ले जाता और वहां देखते देखते महफिल जम जाती। इसी महफिल में एक बार सुकुमार से भी परिचय हुआ जो अब तक चल रहा है जो दोस्ती में बदल चुका है !

सुकुमार तब कहानियां भी लिखते थे और तब भी महाकवि निराला जैसे बाल थे लम्बे लम्बे ! बीढ़ी फूंकना तब भी इनके लिये शगल था। आज की कह नहीं सकता ! इन दिनों हम फेसबुक पर भी साथ साथ हैं और रोज सुकुमार कूछ न कुछ नयी शरारत , नये विचार और नयी गजल पोस्ट करते हैं।

सबसे बड़ी बात कि छोटी बहर की गजल लिखते हैं जिसे आसानी से याद किया जा सकता है । लघुकथा लेखक भी हैं । मेरी सोच के अनुसार गजल और लघुकथा एक प्रकार से शब्दों का कम उपयोग कर बड़ी बात कहने की कलायें है , विधायें है ! मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि इन दोनों विधाओं में सुकुमार पारंगत हैं और अपना श्रेष्ठ दे रहे हैं।

बहुत बहुत बधाई भाई सुकुमार। नाम के ही सुकुमार हो , वैसे पूरे फक्कड़ हो ! आगे तक बढ़ते जाइए जहां तक आकाश है !

मित्र ! बहुत बहुत बधाई आपके बारे में आने वाली किताब के लिये और दुआ है कि साहित्य की अलख ऐसे ही जलाये रखो ! बहुत जरूरत है आप जैसे लेखकों की ! ऐसे खतरनाक समय के प्रति सजग करने वालों की !

-पूर्व उपाध्यक्ष, हरियाणा ग्रंथ अकादमी।

संबंधों को सतही तौर पर जीने वाले शख्स "सुरेंद्र सुकुमार"

डा. विष्णु सक्सेना

मेरे इस शीर्षक से पाठक और सुरेंद्र सुकुमार जी, दोनो को विस्मय भी हो रहा होगा और मुझ पर गुस्सा भी आ रहा होगा। जो कि स्वाभाविक है।

जो उनके साथ बहुत दिनो तक रहे हैं वो मेरी इस बात को एक सिरे से नकार भी सकते हैं लेकिन जो उन्हें पूरी तरह जान नही पाए वो मेरे इस कथन से सहमत जरूर होंगे।

सुरेंद्र सुकमार के आस पास रहने वाले ये अच्छी तरह जानते होंगे कि

उनको संबंधों को साधना कभी नही आया, क्यों कि वो कभी सामाजिक रहे ही नही, किसी की खुशामद नही की, चाटुकारिता भी नहीं की, किसी को अपने आगे कुछ समझा नहीं, कोई अगर मुखौटा लगा कर सामने आया तो उसका मुखौटा सबके सामने उतारकर उसे नंगा करने में नंबर वन रहे, बिना ये विचारे कि भविष्य में मेरा नुकसान भी हो सकता है, सिद्धांतो के लिए अच्छे अच्छे सूरमाओं से टक्कर ले लेना उनकी प्रवृत्ति में शामिल रहा। क्योंकि सामाजिक होने में या रिश्ते बनाने में धन भी बहुत खर्च होता है लेकिन सुरेंद्र जी दूसरों पर इस तरह के व्यय को धन का अपव्यय समझते हैं। हां अपने शौक मौज में कितना भी खर्च हो जाए उसकी परवाह नहीं करते, अच्छा खाना पीना, अच्छा पहनना, इससे कोई समझौता नहीं।

उनको संबंधों को साधना कभी नही आया, क्यों कि वो कभी सामाजिक रहे ही नही, किसी की खुशामद नही की, किसी की चाटुकारिता भी नहीं की, किसी को अपने आगे कुछ समझा नहीं, कोई अगर मुखौटा लगा कर सामने आया तो उसका मुखौटा सबके सामने उतारकर उसे नंगा करने में नंबर वन रहे, बिना ये विचारे कि भविष्य में मेरा नुकसान भी हो सकता है, सिद्धांतो के लिए अच्छे अच्छे सूरमाओं से टक्कर ले लेना उनकी प्रवृत्ति में शामिल रहा।

जहां तक मैं उन्हें समझ पाया हूं सुरेंद्र जी के दिमाग में जीवन के मूल भूत सिद्धांत सब

क्लियर हैं। युवावस्था से पहले ही साधु संतो के बीच में बैठना, उनके फक्खड़पन को आत्मसात कर लेना, ओशो के विचारों से से अति निकटता ही इसका मूल कारण लगता है। ये अक्सर कहते हैं ये सब बकवास वा है, जीवन का असली आनंद कुंडली जाग्रत करना है। मन के एक कोने में एक बैरागी बैठा है जो इन तमाम रिश्तों को मिथ्या समझता रहता है। लेकिन भले ही यह सर्वथा सत्य है लेकिन "दुनियां में हम आए हैं तो जीना ही पड़ेगा" बस ये "पड़ेगा" शब्द के लिए ही सांसारिक रिश्तों को एक बोझ की तरह निभाया है अब तक, और आगे भी निभाएंगे। इसीलिए पद्म भूषण गोपाल दास नीरज जी से जिंदगी भर इनकी बहुत पटी। उनके अधिकांश गुण इनके अंदर विद्यमान हैं।

ऐसे लोग भावुक बहुत होते हैं। मैने उन्हे अनेक बार पूजा के मंदिर में भगवान के सामने ध्यान लगाते वक्त रोते हुए देखा है। मंच पर भी कभी कोई भावना प्रधान कविता सुना देता है तो भी उनकी आंखे गीली हो जाती हैं। जिससे एक बार मित्रता मान ली उसके लिए फिर बिना हानि लाभ का विचार किए उसका साथ नहीं छोड़ते। बिना उम्र की परवाह किए कि सामने वाला छोटा है या बड़ा उससे हर तरह की बातें कर लेना या यूं कहें उससे मित्रवत हो जाना सुरेंद्र जी का विशेष गुण हैं। इसका जीता जागता उदाहरण मैं हूं। मैं सुरेंद्र सुकुमार जी से बहुत छोटा हू लेकिन मैं उनसे हर तरह की बात करने के बाद स्वयं में आनंद की अनुभूति करता हूं।

सुरेंद्र जी ने उस ज़माने में भाभी से प्रेम विवाह किया जब प्रेम विवाह एक अपराध जैसा माना जाता था, ज़माने से लड़ने के बाद, पूरा जीवन बिताने के बाद जब से भाभी का साथ छूटा है तब से सुरेंद्र जी बहुत बिखर गए हैं, टूट से गए हैं बिखर से गए हैं। जिस दिन से भाभी गई हैं अपने पुराने सुरेंद्र नगर वाले बड़े मकान को त्याग दिया है। वो कहते हैं इस घर की दीवारें दुश्मन सी लगती हैं। इसलिए शहर से दूर ओजोन सिटी में एक छोटे से फ्लैट में रहने लगे हैं। संतान के नाम पर एक बेटी है उसके पास भी बहुत कम जाते हैं। अपनी दुनियां में मस्त रहते हैं, योग प्राणायाम पूजा पाठ, लेखन और सोशल मीडिया पर कुछ सार्थक और कुछ निरर्थक बातें लिखकर समय व्यतीत करते रहते हैं। उम्र के साथ साथ अब बहुत कमजोर दिखाई देने लगे हैं।

मेरी प्रभु से कामना है। वो स्वस्थ रहें, पूरी नींद ले। कवि सम्मेलनों में जाने का मोह न पालें और घर पर ही स्वस्थ लेखन कर संतुष्टि का भाव मन में रखे वही उनके तमाम प्रशंसकों के लिए सुखद होगा।

- डा. विष्णु सक्सेना, गीतकार, दयाल क्लिनिक, पुरानी तहसील रोड, सिकंदरा राऊ, जिला हाथरस।

पहली बार जब मिला 'सुकु'?

विनोद क्वात्रा

साँझ मिले तो भूरे रंग में।
भोर मिले तो पीले रंग में।

मौसम सी करवट ले लेता,

क्या सखी गिरगिट?

ना सखी, ---- नेता।

मित्रो चौंकिए मत! यह पंक्तियाँ मेरी नहीं हैं, इस युग के महान साहित्यकार "सुरेन्द्र सुकुमार" की पंक्तियाँ हैं।जिसकी कहानियाँ, लेख,कविताएं नंदन धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, सारिका अपने समय की हर प्रतिष्ठित पत्रिका में धड़ल्ले के साथ छपती रहीं। कभी भी किसी अनैतिकता के आगे माथा नहीं टेका। निष्कपट हृदय से अपने लेखन को सच्चाई और ईमानदारी का जामा पहनाकर आगे बड़ता रहा। यह नहीं कि मुशकिलें नहीं आईं, मगर निर्भीक होकर

उनका सामना करना भी बहुत बड़ा हौसला था।

17 - 18 साल की उम्र बड़ी अटपटी होती है, ऐसी तरुणाई में 26 जनवरी के कवि सम्मेलन में दिल्ली के लाल किले के प्राचीर से वरिष्ठ कवियों के बीच खड़ा हो कर नेताओं के जमावड़े के बीच एक युवा कवि सुकु यह कविता पढ़े -

समाजवाद में,

पहले हम,

समाज बाद में।

कथनी और करनी का फर्क बहुत साधारण शब्दों में गम्भीर बात

व्यंग्य में कह देता है। वहीं से जीवन के शब्दों

का आन्दोलन व्यंग्यात्मक लहजे में शुरू होकर संघर्ष में परिवर्तित होता चला जाता है। हम सब लेखक उजले और शब्दों के बहुत संभ्रांत होते

दिखते हैं पर अन्दर से मानसिक रूप से बहुत गरीब और लाचार होते हैं। कभी समाज कभी, कभी हमारी ही समवेदनाऐं हमें प्रताड़ित करती हैं। सन 1972 के एक कवि सम्मेलन में बहुत से

प्रतिष्ठित कवियों का जमावड़ा था शायद सारे हिन्दुस्तान के नामी कवि उस जमावड़े का हिस्सा थे। जिले के कवियों के लिए उसी मंच पर दूसरे दिन कवि सम्मेलन रक्खा गया था, मैं भी उस उसका एक अदना हिस्सा था। कवियों को जिस होटल में ठहराया गया था वहाँ शाम को सम्मेलन से पहले मिलने गये चर्चित हास्य कवि काका हाथरसी बैड पर लेटे थे गोरा चिट्टा चेहरा लामशाम पर्सनालिटी हम चरणों के पास खड़े हो गये उनको चरण स्पर्श कर अभिवादन किया। उन्होंने भी आशीर्वाद दिया मेरे साथ उभरते हुये गीतकार 'राकेश मधुर' भी थे जो मुझसे पाँच साल छोटे थे। साहित्य पर हल्की-फुल्की चर्चा के बीच एक सवाल दबे शब्दों में मैंने उनसे किया, " कि आप व्यंग्य में हास्य और हास्य में व्यंग्य कैसे कर लेते हैं। "उन के अन्दर का कवि जाग उठा। उन के शब्दों के बयान का सार मैं अपनी दो पंक्तियों में कहूँगा,

"मुस्काते चेहरों के पीछे, इन आँखों का क्षार न देखा,

बहती हुई नदिया देखी है, ठहरा हुआ तूफान न देखा।"

बिल्कुल ठीक इसी प्रकार (सुकु) उर्फ सुरेन्द्र सुकुमार जमाने की विषमताओं से जूझता हुआ समाज और उन के बनाये दस्तूरों से लड़ता रहा है। व्यंग्यकार और मर्यादित हास्य दोनों विधाओं में स्थापित होने के लिए सब से बड़ी चीज व्यक्ति का सहज हृदय और कर्म और स्वभाव में सच्चा और साफ हृदय का आचरण अति आवश्यक होना चाहिए। ऐसे कवि और लेखक को समाज से बहुत से दुर-वचनों और असहजताओं का सामना करना पड़ता है, बहुत प्रताड़ित होना पड़ता है, कभी कभी पिस्तौल से निकली गोलियों का भी सामना करना पड़ता है। लेखक और कवि हर युग के प्रवर्तक होते हैं उन का साहित्य उस युग का आइना होता है। वरना चन्द्र वरदाई जैसा महान कवि अन्धे पृथ्वीराज को कैसे प्रेरित करता आतताइयों का धनुष-बाण से संहार करने के लिए। हर व्यक्ति समय के साथ साथ इतिहास बनाता जाता है। अच्छे और बुरे कर्मो की छाप समाज पर रह जाती है। वह उस व्यक्ति का इतिहास ही भविष्य को बताता है।

सुकु उर्फ सुरेन्द्र सुकुमार पहली बार कैसे और कहाँ मिला, यह मैने अपने मस्तिष्क पर बहुत जोर दिया पर मुझे याद नहीं आया।

हार कर मैंने सुकु को फोन किया इसकी याददाश्त तेज हुई तो शायद याद हो। मुझे बिल्कुल याद नहीं था जो उसने बताया, कि

'महेश पंडित' युवा कवि, सुरेन्द्र सुकुमार को मेरी दुकान पर मुझ से मिलवाने लाया था कि एटा में दो कवि हैं जो अच्छा लिखते हैं। उन दिनों 60वें दशक का अन्त या सत्तरवें दशक का शुरुआती दौर था। मैं पिता के साथ घड़ियों की दुकान पर बैठता था। मुझ से मिलाने के बाद एक और नामी व्यंग्यकार केवल कृष्ण जो आजकल 'कृष्ण कबीर' के नाम से छोटे छोटे व्यंग लिखता है, फेसबुक में सक्रिय है, मिलवाने ले गया था। वह रेडियो मैकेनिक था। मगर मैं पूरी तरह से आश्वस्त नहीं था।

मैं कृष्ण कबीर से बात कर इस बात की तह तक जाना चाहता था तो मैं ने कृष्ण कबीर को फोन लगाया, उसने बताया 'प्रभात किरन' जी ने हम दोनो से मिलवाया था। प्रभात किरन हम से लगभग दुगनी उम्र के वरिष्ठ कवि थे.पास के किसी गाँव के सरकारी स्कूल में टीचर थे। साइकिल से रोज 7-8 मील स्कूल साइकिल चला कर जाते आते थे कवि प्रदीप के साथ बॉम्बे में फिल्मों के गीतकार बनने के लिये संघर्षरत रहे, पर असफ़ल हो कर अपनी मानसिक तनाव के कारण सदैव अभाव में रहे। उनका स्वभाव बहुत खुश मिजाजी था नवोदित रचनाकारों के सदैव प्रेरणा स्रोत रहे। खुद भी मजे हुये गीतकार थे, लोक गीत लिखने की बहुत परिपक्व थे। मेरी रचना बिना पूछे अख़बार में छपवा देते थे। एटा छोड़ने के बाद भी मेरे पास उनके पत्र आते रहे। उनके लोक गीत की दो पंक्तियाँ--

"माटी का पलंग मिला, राख का बिछौना,

जिन्दगी मिली कि जैसे, काँच का खिलौना।"

प्रभात किरन

मगर यह सब बातें बतानी जरूरी हैं कि जीवन में अभाव में क्या

स्थिति होती है साहित्यकार की। हम जैसे बहुत से ऐसे लोगों ने ऐसी विकट से विकट स्थिति का धैर्य से सामना किया है।

एक दिन एक बहुत पतला दुबला युवक, जो शायद 'एटा' में मेरे घर पर भी आया था मेरी आँखों में वही छवि बसी हुई थी जो एक या दो बार मिला और आजतक याद रहा। 1976 में मैं एटा छोड़ कर दिल्ली आ गया था। मगर अक्सर न जाने क्यों मुझे कुछ कुछ दिन बाद मन में सुकु की याद बिजली की तरह कौंध कर विलुप्त हो जाती थी। बहुत थोड़ा ही उसे सुना था ।उसकी पहली कहानी 'अगियाने' सन 75 में सारिका पत्रिका में छपने के बाद वह और भी ज्यादा चर्चित हो गया। उस कहानी पर केस भी चला एटा कोर्ट में किसी ठाकुर जमींदार द्वारा, अश्वनी कुमार उसके ऐडवोकेट थे और एटा के 18 वकील विपक्षी थे सुरेन्द्र सुकुमार के। सुकु खुद भी उन दिनों लौ की पढ़ाई कर रहा था। वहुत धैर्य के साथ उस ने संघर्ष रत रहकर वह केस जीता।और मजे की बात है कि कमलेश्वर जैसे महान साहित्यकार को भी उस कहानी के सिलसिले में एटा कोर्ट में पेश होना पड़ा। उन दिनों वह सारिका पत्रिका के सम्पादक थे। मेरी दुकान कचहरी से थोड़ी दूर ही थी। अभाव ग्रस्त होते हुए भी 'सारिका' मासिक और गृह शोभा साप्ताहिक धर्मयुग और हिन्दुस्तान यह

चार पत्रिकाएं आती थीं। साप्ताहिक हिन्दुस्तान पत्रिका का सब से पिछले पेज पर मुझे "मुसीबत है" कार्टून बहुत अच्छा लगता था। रवीन्द्र शर्मा कार्टूनिस्ट उन दिनो मौडल टाउन में मेरे बीच वाले मामा के किरायेदार थे। गर्मी की छुट्टियों में मामा के घर जाता था तो उन से मिला। शर्म के मारे मैंने कभी नहीं बताया कि मैं भी लिखता हूँ।

पता नहीं क्या था उस गधे सुकु में जिसको एक बार मिलता था उस को हमेशा उस की याद प्रियतमा की तरह सालती रहती थी। 40 साल बाद जब वह फेसबुक पर मिला तो इतनी आत्मीयता से मिला जैसे किसी कुम्भ के मेले में बिछड़े हुये दो भाई मिलते हैं। सच तो है यह दुनियाँ भी एक कुम्भ का मेला ही तो है। जो खो जाता है वह हमेशा के लिए ही खो जाता है। जब सुकु मुझे मिला सब से पहले मैंने पूछा तूने पीना छोड़ा कि नहीं? बहुत बेबाक उत्तर दिया, "नहीं! अब तो यह जिन्दगी के साथ चलेगा।" इस की शादी से बहुत पहले इसको पीने की आदत लग गई थी जो आज तक है। पत्नी के देहान्त के बाद और बड़ गई। दशकों से लगी आदत आसानी से पीछा नहीं छोड़ती।

मिर्जा गालिब ने एक शेयर में कहा भी है,

"पहले शराब जीस्त थी,

अब जीस्त है शराब।।"

(पहले शराब को मैं पीता था, पर अब शराब मुझे पी रही है।)

मगर यह सब होते हुये भी आज भी इसके लेखन में भटकाव नहीं है। बेबाक हर सच्चाई से ओतप्रोत होती हैं इसकी रचनाऐं।

जीवन के इन अन्तिम दिनों में नजाने क्यों ईश्वर भी उस को प्रताड़ित करने से नहीं चूक रहा, कुछ साल पहले पत्नी का विछोह और फिर लकवे का प्रकोप पता नहीं किस प्रकार फोन एक हाथ से चलाता हे एक दो तीन पोस्ट रोज फेसबुक पर करता है। स्वयम को सदा व्यस्त रखता है। अभी कुछ दिन पहते 'तारक मेहता का उल्टा चश्मा' प्रोग्राम के संयोजन शैलेष लोढा जी के

" वाह भाई वाह " प्रोग्राम में व्यंग्यात्मक रचना को सुना।प्रेरणा दायक रचना थी। सुरेन्द्र सुकुमार खुद भी समाज के लिए प्रेरणा का स्त्रोत है। प्राकृतिक और सामाजिक विपदाओं के बाद भी

कभी रोते और हौसला खोते हुये नहीं देखा। नित्य नई दिनचर्या नई चेतना के साथ अपने लेखन कार्यों में जुट जाता है।

पहली बार ही मेरी रचनाओं से प्रभावित होकर मुझ से कहा था,

"कि अगर मैं मर जाऊँ तो मेरे ऊपर संस्मरण लिखना। लिखोगे ना?"

तीन चार दिन पहले फिर मैसेज में कहा, --- आज मेरी साधना पूरी हो रही है। कितना खुशनसीब हूँ मैं!! औघड़ साहित्यकार को मेरी असीम शुभकामनायें। ईश्वर उस की सेहत को ठीक रखे

सुरेन्द्र सुकुमार से मेरी रू-ब-रू मुलाकात

त्रिलोक दीप

सुरेन्द्र सुकुमार से मेरी रू-ब-रू मुलाकात है, तय नहीं कर पा रहा हूं।उम्र जो हो गयी है। फिर याददाश्त पर ज़ोर देता हूं कि शायद एक बार वह 'दिनमान' में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना से मिलने के लिए आये थे तो मुझ से भी भेंट हुई थी।आखिर उनका फोन नंबर जो मेरे पास अभी तक है। वह बेशक उन्हीं का दिया हुआ होगा।सर्वेश्वर जी के पास अशोक चक्रधर, विनोद और कविता नागपाल,भानु भारती, राम गोपाल बजाज, प्रो कृष्ण कुमार आदि कवि-साहित्यकार- रंगकर्मी-कलाकार मिलने के लिए आया करते थे तो कभी कभार मुझ से भी भेंट हो जाती या सर्वेश्वर जी करवा दिया करते थे। बहरहाल सुरेन्द्र सुकुमार को 'रूह' से तो मैं उनकी कविताओं और कहानियों की बदौलत जानता तो 'बरूह' सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और रमेश बतरा की वजह से। रमेश बतरा की मुझ से ज़्यादा करीबी थी।वह कभी कभार अपने किसी मसले को लेकर जब आते तो छूटते ही कहते 'भा जी इसको अगर ऐसा कर दिया जायेगा तो कैसा रहेगा'। समस्या का समाधान उसके अपने पास रहता था लेकिन पुष्टि कराने के लिए मेरे पास आ जाया करता था। टाइम्स ऑफ इंडिया की 10, दरियागंज वाली बिल्डिंग में 'दिनमान' और 'पराग'के लोग तो खुले हाल में बैठते थे जबकि 'सारिका' और 'वामा' वाले अलग केबिन में।लेकिन कभी कभी केबिन से ऊब जाने पर रमेश बतरा,महेश दर्पण हम लोगों से मिलने-मिलाने के लिए आ जाया करते थे।मुझे कुछ कुछ याद है कि रमेश ने मेरी मुलाकात एक बार प्रेम जनमेजय से और दूसरी बार सुरेन्द्र सुकुमार से कारवाई थी। वह याद इसलिए भी है कि सुरेन्द्र सुकुमार कद काठी में रमेश से इक्कीस थे, लंबे चौड़े और अजब किस्म के बेतरतीब बालों वाले। 'संड मेल' में भी रमेश बतरा मेरे साथ थे और उनका अपना अलग केबिन हुआ करता था। जब कभी सुरेन्द्र सुकुमार उनसे मिलने के लिए

आते उनका व्यक्तित्व उनके परिचय के लिए काफी होता था। मुझे याद है कि तीन-चार बार उनसे फोन पर भी बातचीत हुई थी ।एक बार कवि बनाम राजनेता उदय प्रताप सिंह ने किसी संदर्भ में सुरेन्द्र सुकुमार के नाम का उल्लेख किया तो मैंने उन्हें फोन कर दिया था। अब संदर्भ मुझे याद नहीं पड़ता। 'संडे मेल' का प्रकाशन स्थगित हो जाने के बाद उसके मालिक संजय डालमिया ने मुझे अपने ऑफ़िस डीबीपीएल में महाप्रबंधक नियुक्त कर दिया। वहां मेरी उदय प्रताप सिंह से पहली बार मुलाकात हुई जब वह 'मासूम' नामक एक संस्था में भाग लेने के लिए आये थे। इस संस्था की महासचिव श्रीमती नफ़ीस खान थीं। उन्होंने ही उदय प्रताप सिंह से मेरा परिचय कराया था जो बाद में दोस्ती में तब्दील हो गयी। वह मेरे पास भी कभी कभार आकर बैठ जाते थे और अपनी कविताएं सुनाया करते थे। अच्छा लगता था। उनके साथ दोस्ती आज भी बरकरार है । सुरेन्द्र सुकुमार से एक संक्षिप्त ताज़ा बातचीत जो मुझे याद पड़ती है वह है फेसबुक पर अमेरिका यात्रा पर मेरे नियाग्रा जलप्रपात के पोस्ट पर। मैंने नियाग्रा जलप्रपात दोनों तरफ से देखा था - अमेरिका के बुफ्फ्लो की तरफ से और कनाडा की ओर से भी। वह इसलिए संभव हो सका, क्योंकि उन दिनों राष्ट्रकुल देशों के नागरिकों को एक दूसरे के देश में जाने के लिए वीज़ा लेने की ज़रूरत नहीं हुआ करती थी। मैं 1979 की बात कर रहा हूं। इस बात की जानकारी मेरे गाइड को भी नहीं थी। मेरे अमेरिका की तरफ के नियाग्रा का पोस्ट पढ़ कर सुरेन्द्र सुकुमार ने लिखा कि कनाडा की ओर के नियाग्रा जलप्रपात के बारे में भी लिखें क्योंकि हम लोग भी उसे देखने के लिए जाने वाले हैं । मैंने काफी विस्तार से न केवल जलप्रपात के बारे में ही लिखा बल्कि नियाग्रा के बारे में भी तफ़सील से लिखा। उनकी प्रतिक्रिया तो प्राप्त नहीं हुई, मैंने ही उनकी टिप्पणी मांगी थी जो सकारात्मक थी।

नियाग्रा में जलप्रपात देखते हुए एक भारतीय मूल के प्रो. प्रभात कुमार सूद मिल गये जो सपरिवार यह जलप्रपात देखने के लिए आये थे। वहीं उनसे परिचय पहचान हुई ।जब मैंने उन्हें बताया कि मैं पत्रकार हूं और अमेरिकी सूचना केंद्र के निमंत्रण पर यहां आया हूं तो उन्होंने मुझे टोरांटो चलने का ऑफ़र दिया जो नियाग्रा से 117 किलोमीटर दूर था। उन्होंने कहा कि इससे आपको दो फायदे होंगे: एक कनाडा हाउस ऑफ़ कॉमन्स के चुनाव की हलचल देख लेंगे और दूसरे भारत मूल की कुछ सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाओं के पदाधिकारियों से मुलाकात भी कर लेंगे। ऑफ़र मुझे मनमोहक और लुभावदार लगा। मैंने स्वीकृति के लिए अपने गाइड की तरफ

देखा और उनकी मंजूरी मिल गयी। चुनावी माहौल तो कुछ मैंने रास्ते में ही देख लिया था और कुछ टोरांटो में कनाडाई और भारतवंशियों ने अपने अपने अनुमान बता कर मेरा एक संवाद बना दिया। आप कह सकते हैं कि टोरांटो की इस यात्रा से मुझे दो स्टोरियाँ मिलीं -एक चुनावी और दूसरी क्ला-संस्कृति-साहित्य से संबंधित। भारतवंशियों ने बताया कि कनाडा में रहते हुए हम लोग अपनी जड़ों से जुड़े रहते हैं।समय समय पर हम लोग कवि सम्मेलन तथा कवि दरबार आयोजित करते रहते हैं तो कभी लेखकों-पत्रकारों को भी आमंत्रित कर अपनी समस्याओं के बारे में भी चर्चा करते रहते हैं।वैसे कनाडा की सरकार बहुत उदार है और अल्पसंख्यकों को हर तरह के अधिकार प्राप्त हैं बावजूद इसके अपने ही कुछ लोग कभी कभी गलतफहमियां पैदा करते रहते हैं।ऐसी गलतफहमियां अक्सर अंतर्राष्ट्रीय स्तर की खबरें बन जाती हैं जबकि हक़ीक़त में कुछ ऐसा होता नहीं। भला हो प्रो. प्रभात सूद का कि आपसे उन्होंने हमारी मुलाकात करायी।क्या कवि सम्मेलन अक्सर करते रहते हैं इस सवाल के जवाब में एक पदाधिकारी बड़े उत्साह बोले: जी कभी कभी साल में दो दफे भी हो जाते हैं।ऐसे कवि सम्मेलन में केवल भारतीय मूल के ही नहीं बल्कि और संस्कृतियों के लोग भी सम्मिलित होते हैं।उन लोगों की बातों से ऐसा लगा कि वह कवि सम्मेलनों के प्रति खासे आकर्षित रहते हैं और कवियों की देखभाल और सुख सुविधा का पूरा ख्याल रखते हैं जिसमें नियाग्रा जलप्रपात ले जाना भी शामिल है। ऐसे ही किसी कार्यक्रम में शायद सुरेन्द्र सुकुमार शिरकत करने गये थे। मैंने 1979 की अमेरिका यात्रा की यह पोस्ट दो-ढाई साल पहले ही लिखी थी।

विश्व का हो कल्याण

चाहा भारत की संस्कृति ने, सदा ही विश्व का हो कल्याण,
विश्व संविस्कृति है वास्तव में, धरती वेद की कीर्तिमान।
जन्में विश्व में सभी प्राणी ही, मूल रूप में तो थे एक,
रंग- रूप में खान पान में, वेश - भूषा में बने अनेक।
चार बेटे हों एक बाप के, अलग अलग सब के स्वभाव,
ऐसा पनपा भाव पृथ्वी पर, वर्ण जाति को मन में टेक।
पुरातत्व इतिहास खोज में, यही हमें होता है भान,
विश्व संस्कृति है वास्तव में, धरती वेद की कीर्तिमान।
भारत कभी निभाता था, भूमिका विश्व की था सिरमोर,
भाषा एक थी बहुत देशों की, निष्ठावान थे धर्म की और।
सभी एक थे, ध्यान सदा था, सच्चाई पर नित्य चलना,
जीवन में चाहे कितनी भी, कठिनाइयां आजायें घोर।
चक्रवर्ती साम्राज्य चला था, तब अपनी भूमि को जान, -
विश्व संस्कृति है वास्तव में धरती वेद की कीर्तिमान।
भारत के सब समर्थ ऋषिगण, करते रहे धर्म-प्रचार,
शक्ति और प्रयोग शस्त्र का, देते थे ज्ञान भण्डार।
वीर पुरुष इस धरती पर, बलवान और थे शस्त्रधारी,
ज्ञान कर्म और रहन- सहन में, रहे समर्थ आचार विचार।
विश्व संघ की स्थापना करके, फूंका विश्व में शान्ति-गान,
विश्व संस्कृति है वास्तव में, धरती वेद की कीर्तिमान।
कालान्तर में धीरे- धीरे, स्वार्थ परायण हो गए थे लोग,
भेद- भाव और उँच- नीच, लग गए सबके मन में रोग,
भौगोलिक ऐतिहासिक कारण, परिवर्तन आया सबके मन में,
करने लग गए सभी विश्व में, भेद वर्ण- जाति उपयोग।
मूल उद्गम संस्कृति -भारती, इसका सब को भी है भान,
विश्व संस्कृति है वास्तव में, धरती वेद की कीर्तिमान।
बड़ी बात होगी यदि हम अपनी, शक्ति को सब पहचानें,
धर्म संस्कृति योग- ध्यान से, ज्ञान विज्ञान को हम जानें।
विश्व के लोगों को हम सब दें, भ्रातृ-प्रेम का ही सन्देश,
बांधें विश्व को एक सूत्र में, विश्व- एकता को जानें।
पनपे नहीं उदंडता किसी में, और कभी न हो अभिमान,
विश्व संस्कृति है वास्तव में धरती वेद की कीर्तिमान।

डॉ केवल कृष्ण पाठक

जया रावत

सुकुमार मगर बेहद विचित्र

औरत कोई भी हो मगर अपवाद स्वरूप छोड दें तो वो बहुत कम संख्या में ही होती होगी जो इस शारीरिक यातना से न गुजरती हों यदि जो बहुत-बहुत शान्त और संयमित न हो तो, पुरुष का दमित उबाल कुछ यूंही प्रस्फुटित होता है गाली गलौज थप्पड लात और घूंसे।

यह जरूर है कि पहले के सुकुमार को मैं जानकर भी न जानती थी जितना अब जानी हूँ।

पहला शख्स और पहले थप्पड का किरदार (पतिनुमा प्रेमी था जो सुकुमार का दोस्त से अधिक मेरा कुछ लगता था), सुकुमार ही रहा है।

क्यों? किसलिए ? कैसे? कब? यह सब बातें पुरानी हो गयीं हैं मगर इनकी टीस कमबख्त खत्म होने का नाम ही नहीं लेती।

रमेश बत्रा और जया

उस दिन से मेरी जिन्दगी ने जैसा भी पलटा खाया सो तो है। मै मैकै भाग गयी और मार खायी मानसिक यन्त्रणा से बारंबार झुलसती रही अपने कमतर होने का अहसास कहीं अधिक संजीदा रहा एक आधुनिक परिवेश और नीच हरकतें--

सुकुमार तो उस दिन से पूरा ही उतर गया मेरे जीवन से मेरी अन्तरंग अस्मिता से---

उसकी शक्ल अक्ल सबसे बेसाख्ता मुझे परहेज ही रहा

बस तब यह राज नही जाना कि रमेशजी के दोस्त तो निरे शेकर जी के बारातियों से भी बदतर लगे-

खैर तब मेरी जड़ बुद्धि और अपना ईमान गुमान कुछ इस कदर हावी रहा कि बस भले बुरे की पहचान सब गम गलत हो गयी

तब उसके लेखन वेखन से मुझे कोई सरोकार नही था।

बस मेरा पैमाना तो सौन्दर्यीकरण और सम्पन्नता के इर्द-गिर्द ही घूमता रहता था।

जी हाँ!

मेरी नजर और दिलो दिमाग पर वह कभी परवान नहीं चढा मगर उसके अन्दर एक जील (Zeal) था जो शायद उसे भी पता नही था और न कभी उसने उसका सही इस्तेमाल नहीं किया '-'

उसे जहाँ अवसर मिलता लपट लेता--

मगर खास कर मैने उसे अब खूब जाना उसके अन्दर तो रचनात्मक निधिकरण इस कदर परिपक्व रहा है चाहे वह पागल करार दिया गया हो या कम्युनिज्म की ओर मुखातिब रहा हो -

रोमान्टिसिजम में तो उसे जैसे वरद हस्त प्राप्त हो वाक पटुता वाक चातुर्य का तो मधुमास रहा है उसका- 'हाँ! एक स्तर का उसे वो प्लेटफार्म नहीं मिल पाया जिसका वह हक दार था चूंकि लफ्फाजी सदैव उसके दिमाग पर हावी रहती साहित्यकार न होता तो शायद एक बड़ा दिमागी खुराफाती हो सकता था--

हाँ! अपने अन्दाज व दिल की बस्ती से सचमुच वह **सु कु मा र** ही रहा---

बात बात में झूठ का सहारा वह ऐसे लेता था जैसे वह इस कलात्मक अभियान मे शोध साधनारत रहा हो उस जमाने में हवाई जहाज के बिज़नेस क्लास से नीचे बात ही नही होती थी। मुझसे तो खूब लफ्फाजी होती थी उसकी

कहना न होगा कि उसकी कलम और दिलो-दिमाग की ताकत ने उसे छलिया रसिया और रूमानियत की शख्सियत बख्शी थी। अब एक अच्छी बात और कि मैं उसे चाहे कितनी गाली-गलौज कर लूं बुरा भला कह लूं वह शंकर के गरल पान सा सब गटक जाता है चूकि वह यह भी जानता है कि कुछ लोग कितना भी कह लें बस जुबान तक ही सीमित होते हैं दिल की बस्ती से जहर नहीं उगलते -'बस यही कहूँगी कि उसने कभी भी क्लास मेंटेन न कर सबका साथ दिया सबके साथ बैठा सबका सम्मिश्रण बना और आज भी उसके व्यक्तित्व में चमत्कारी रूप सन्निहित है भगवान जाने क्या बला है एक तरफ साधु वाद सा बैरागी तो दूसरी तरफ दारूल सेवी- 'भई अजीबोगरीब सी महात्मन सदगति है। शरीरिक बल से भी कुछ कमतर है मगर जिजीविषा प्रारूप भरपूर है।

बहुत कुछ लिखा जा सकता है मगर समयाभाव --यह भी तीन टुकडों में समा जबरन बांधा है सो तारतम्य रचना का अवश्य टूटेगा मगर क्या किया जाय अब बिना किसी वजह हम जाने इतने अस्त व्यस्त क्यू रहते हैं कि सुधबुध जैसी चीज का तो भान ही नहीं रहता बस समय अवश्य रेतीली खुरचन सा फिसलता रहता है---

ईश्वर उसे अकेलेपन मे भी खुश रखे चूंकि उसकी आत्मा अभी भी भतेरे प्रेम का स्वाद चख लेने के बाद भी सुधा (उसकी पत्नी) को ढूंढती रहती है

कुछ भी हो उसकी बीबी लाजवाब रही है--सब बिना फुर्सत के लिख डाला, जानती हूं कि बुरा नहीं मानेगा बस हंस भर देगा--और कहेगा "अरे भौजी तुम भी न----जाने जया से कब उसने मुझे भौजी का सम्बोधन दे डाला - 'प्रेम के पुजारी' ने" --अचछा हुआ कि सुधेनदु के इसरार ने कुछ तो लिखवा ही डाला----

साभार-'--

जया

सत्य ही जिया हूँ मैं तो, झूठ के संग जिया नहीं जाता : सुरेंद्र सुकुमार

कवि सम्मेलन के मंच पर साहित्यिक चरित्र रखने वाले कतिपय रचनाकारों में सुविख्यात व्यंग्यकार सुरेंद्र सुकुमार जी का नाम अग्रिम पंक्ति में लिया जाता है। सुरेंद्र सुकुमार जी अपने फक्कडाना स्वभाव, फकीराना अंदाज तथा अपनी मर्जी की जीवन शैली जीने के लिए जाने जाते हैं ।स्पष्टवादिता उनके स्वभाव में है। इसका असर उनकी रचनाओं पर भी दृष्टिगत होता है ।वह स्वयं लिखते हैं-

सत्य ही जिया हूँ मैं तो
झूठ के संग जिया नहीं जाता।

सुरेंद्र सुकुमार जी से मिलना, बात करना अपने आप में एक सुखद अनुभूति देता है। अलीगढ़ जनपद के कौडियागंज में 17 मई 1953 को पिता श्री आर. सक्सेना व माता श्रीमती त्रिवेणी देवी सक्सेना के घर जन्मे सुरेंद्र सक्सेना उर्फ सुरेंद्र सुकुमार ने पूरे देश में हजारों काव्य यात्राएं की हैं। 14 देशों में आपने अपनी व्यंग की वर्षा से श्रोताओं को अभिसिंचित किया है ।हिंदी साहित्य को दो कहानी संग्रह - नागवंशी और ग़लत व्याकरण देने वाले सुरेंद्र सुकुमार जी का कविता, गीत, गज़ल, संस्मरण लेख, सर्वेक्षण, हास्य व्यंग पर समान अधिकार रहा है। उनकी रचनाएँ साहित्यिक पत्रिकाओं - धर्मयुग, सारिका, साप्ताहिक हिंदुस्तान, रविवार, इंडिया टुडे में निरंतर प्रकाशित होती रहीं हैं।

बलराम सरस

सुरेन्द्र सुकुमार जी का बचपन एटा जनपद के कासगंज में बीता इसलिए उनका अलीगढ़ और एटा कासगंज के कवियों के साथ भावात्मक रिश्ता रहा है। इसी नाते मुझे भी उनका अनुजवत स्नेह मिलता रहा है।बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न वरेण्य व्यक्तित्व से बहुत कुछ सीखने को मिलता रहा है। वह काव्य की एक समृद्ध पाठशाला हैं। वह सामाजिक समरसता के पक्षधर रहे हैं। जातीय, धार्मिक उन्माद से परे सिर्फ सच को सच लिखने की प्रवृत्ति ही उन्हें भीड़ से अलग करती है। उनके व्यंग्य आम बोलचाल की भाषा में मुहावरों से लिपटे हुए आगे बढ़ते हैं और अन्त में सामाजिक राजनैतिक तथा काव्य विकृति पर गहरी चोट मार देते हैं। नेताओं के आचरण पर उनके अन्दर का कवि लिखता है-

रबड़ी वाले लच्छे नेता उड़ा रहे हैं
जनता को रमजान तुम्हारी ऐसी तैसी।
खा गये हिन्दुस्तान तुम्हारी ऐसी तैसी

एक श्रेष्ठ व्यंग्यकार काव्यमंचों की चुटकलेबाजी पर प्रहार करते हुए कहता है-

चार चुटकले कहकर खुद को कवि कहलाता है
और बगल की लड़की को कवयित्री बतलाता है।

कवि यहीं नहीं रुकता वह काव्यमंचों के लेन देन पर भी चोट करता है-

लेन देन की सही परम्परा निभा रहा है वो
उनको ही बुलवाता है जो उनको बुलवाता है।

उनके गीतों की बात हो तो हर गीत दिल को छूने वाला होता है ।हर गीत कई कई बार पढ़ने को विवश करता है।

उनका एक गीत जो मुझे बेहद पसंद है-

कितने दिन के बाद तुम्हें छू पाये हैं।
नयनों में है प्यास अधर मुस्काये हैं।
देख चाँदनी तुमको बहुत लजाती है।
चन्दा की बाँहों में गुम हो जाती है।
कितने दिन के बाद धूप इठलाई है,
और पवन ने अपने पंख हिलाए हैं।

उनकी कहानियों के पात्र अजनवी नहीं होते।भाषा शैली सहज और सरल है।कहानियों के संवाद पाठक को प्रभावित करते हैं। उनकी कहानियां और संस्मरण पाठक एक ही सांस में पढ़ जाना चाहता है क्योंकि उसकी जिज्ञासा अन्त तक बनी रहती है।

कहानियों के प्रति मेरी रुचि बचपन से ही रही है।पंचतंत्र की कहानियों से शुरू होकर मुंशी प्रेमचन्द की मंत्र, पंच परमेश्वर, हीरामोती, पूस की एक रात, गुल्ली डंडा भगवती चरण वर्मा की बसीयत, सुदर्शन की साइकिल की सवारी ने मेरे अन्दर कहानी पढ़ने का जुनून पैदा कर दिया था। इसी शौक के चलते सभी साहित्यिक पत्रिकाओं को पढ़ना शुरू कर दिया। एक दिन कहानीकार सुरेन्द्र सुकुमार की कहानी अगिहाने पढ़ने का भी सौभाग्य मिला। कहानी मेरे मन को छू गयी। इसके बाद सुकुमार जी की कई कहानियां पढ़ी। मैं उनका फैन हो गया। मैं उनकी कहानियों पर टिप्पणी लिखने को पोस्ट कार्ड लाता पर भाषा की अपरिपक्वता के कारण पोस्ट न कर पाता। सुरेन्द्र सुकुमार जी मेरे लिए आदर्श कहानीकार बन गये।

कवि बनने की प्रक्रिया से गुजरते समय मैं कवि सम्मेलन सुनना नहीं छोड़ता था। एटा की प्रदर्शनी में अ.भा.कवि सम्मेलन था। मैं नीचे श्रोताओं में बैठा था जिसमें मंच पर देश के चोटी के डेढ़ दर्जन कवि थे।

यहीं पर अपने पसंदीदा कहानीकार सुरेन्द्र सुकुमार जी का व्यंग्य कवि के रूप में साक्षात दर्शन पाकर अभिभूत हो गया। लम्बी-चौड़ी कद काठी, आकर्षक व्यक्तित्व, कन्धे छूते मोरपंखी आकार वाले काले बाल आपके व्यक्तित्व पर चार चांद लगा रहे थे। कवयित्री इन्द्रा इन्दु और सुरेन्द्र सुकुमार जी की हेयरस्टाइल श्रोताओं में आकर्षण पैदा करती थी।

मैंने पहलीबार उनकी सुप्रसिद्ध रचना मिर्जा खालिद सुनी जो मेरे दिमाग से कई दिन तक निकली ही नहीं। इसके बाद तो उन्हें बहुत बार सुना।यूँ तो उस समय काव्यमंचो पर काका हाथरसी, निर्भय हाथरसी ,शैल चतुर्वेदी, हुल्लड़ मुरादाबादी जैसे दिग्गज कवि थे किन्तु मैं या तो के.पी.सक्सेना को पसंद करता था या फिर सुरेन्द्र सुकुमार को।

मैं अक्सर सोचा करता था क्या सुरेंद्र सुकुमार जी जैसे बड़े कहानीकार और मंच के बड़े कवि से मेरी कभी व्यक्तिगत मुलाकात या जान पहचान हो पायेगी? एक दिन मैंने दादा को कवि सम्मेलन के बावत झिझकते हुए फोनिक वार्ता की।दादा सुकुमार जी के सहज सरल और आत्मीय लहजे से मैं बहुत प्रभावित हुआ।तब से लेकर अब तक मुझे उनका सान्निध्य और आशीष मिलता रहा है। कई बार उनकी उपस्थिति में काव्य मंचो पर काव्यपाठ का सौभाग्य मिला है। मैं ऐसे कालजयी रचनाकार का अभिनन्दन करता हूँ और उनके शतायु होने की मंगल कामना करता हूँ। उनकी लेखनी से निकले संस्मरण उनके फेसबुक पेज पर पढ़ने का जो सौभाग्य मिल रहा है वह निरंतर बना रहे यही कामना करता हूँ।

अपना-अपना काम

(लघु-कथा)

"यहाँ से कटोगी न, तो तीन मील दूर जाकर गिरोगी!" हवा ने पतंग से कहा।

" कटूँगी तब न, अभी छ: मील ऊपर तक उड़ूँगी..." पतंग ने मुड़की लेकर कहा," देखो..." वह लहराने लगी।

" यह मत भूलो तुम्हारी डोर किसी दूसरे के हाथ में है।" हवा ने फिर तंज कसा," बड़ी आयी हो उड़ने वाली...आकाश में..."

"यहाँ सबकी डोर किसी न किसी के हाथ में है..." पतंग ने दार्शनिक अंदाज मे कहा," तुम मेरे काम में क्यों दखल दे रही हो...?"

" देखोगी?" हवा ने धमकी दी।

" मतलब?" पतंग ने सहम कर कहा।

" मैं अगर चाहूँ, तो तुम्हें गिरा दूँगी।" हवा ने गुमान से कहा," तुम मेरे सहारे उड़ रही हो..."

" और तुम? तुम भी तो किसी के सहारे बह रही हो..." पतंग का जवाब सीधा और सरल था मगर अर्थपूर्ण।उसने हवा को फिर से समझाते हुए कहा," सुनो, मालिक ने सबको अपना -अपना काम दिया है । तुम्हारा काम बहना है, बहो... मेरा काम उड़ना है, उड़ने दो। समझो सब के परस्पर सहयोग से कायनात में रौनक है, इसमें घमंड या गुमान कैसा?" पतंग का मन आकाश की तरह साफ था। वह परवाज करती हुई पवित्र विचारों से भरी हुई थी। उसे खुद पर जरा भी वहम नहीं था। हवा पतंग की बातों की कायल हो गयी। फिर वह पतंग से माफी माँग कर अपने काम पर लग गयी। पतंग की रूह से दुआ फूट रही थी। वह बीत भर ऊपर उठ गयी थी ।उसका रंग और चमकीला हो गया था!

संजय कुमार सिंह

अशोक 'अंजुम'

सुरेंद्र सुकुमार : भोगी भी, योगी भी...

बात 1989 के आसपास की है। उन दिनों मैं दिल्ली की एक साप्ताहिक पत्रिका 'मनुशक्ति' के सहायक संपादन से जुड़ा हुआ था। विचार पैदा हुआ कि वर्तमान में जो लोकप्रिय हास्य-व्यंग्य कवि हैं, उनको लेकर एक प्रतिनिधि हास्य-व्यंग्य कविता-संकलन तैयार किया जाए। कविताएं जुटाना शुरू किया। कवियों की समितियां, स्वीकृतियां लेने का सिलसिला चला। इसी के चलते श्री सुरेन्द्र सुकुमार को भी रचनार्थ पत्र लिखा। उस समय आप अलीगढ़ के नज़दीक के एक कस्बे कौड़ियागंज में रहा करते थे। त्वरित गति से सुकुमार जी का सुंदर हस्तलिपि में पत्र और व्यंग्य कविताएं प्राप्त हुए। उस समय फ़ोन बहुत प्रचलन में नहीं थे। मोबाइल का तो दूर-दूर तक अता-पता नहीं था। लैंडलाइन थे, लेकिन पूरे गली-मोहल्ले में एकाध किसी के घर में। तब चिट्ठियों की बहुत महत्ता थी। मैंने सुकुमार जी को आभार-पत्र लिखा और फिर पत्र-व्यवहार का जो सिलसिला चला तो सालों तक चलता रहा, जब तक कि मोबाइल ने हमारे पत्रव्यावहारिक संवाद पर पूरी तरह से कब्ज़ा न कर लिया। इन पत्रों में एक अग्रज की तरह सुकुमार जी हमेशा अपना स्नेह उड़ेलते रहे। अधिकांश पत्र मैंने सहेज रखे हैं। अगर उन्हें प्रकाशित करवाऊं तो पत्रों की एक अच्छी-ख़ासी पुस्तिका तैयार हो जाएगी।

दिल्ली मेरा बहुत समय तक टिकना नहीं हो सका। यूं कहिए कि चार-पांच महीने ही रहा। मैं फिर अपने पूर्व ठिकाने कासिमपुर पावर हाउस, अलीगढ़ से 17 किलोमीटर पर स्थित एक पावर स्टेशन है, उसकी आवासीय कॉलोनी के क्वार्टर नम्बर एफ-23 में लौट आया। वापस लौट कर पुनः साहित्यिक गतिविधियां शुरू कीं। अपने संयोजन में 1992 में एक अखिल भारतीय कवि सम्मेलन कराया। आयोजन के लिए राशि कॉलोनी के कर्मचारियों से चंदा इकट्ठा करके जुटाई। उस समय तक कवियों के भाव बहुत ज्यादा नहीं बड़े थे। कुल बीस-बाईस हज़ार के बजट में पूरा कवि सम्मेलन हो गया था। कवि सम्मेलन में नीरज जी, डॉ. उर्मिलेश, कवयित्री ममता शर्मा, प्रेम किशोर पटाखा, हुक्का बिजनौरी, रेहाना शाहीन, ओंकार गुलशन आदि लगभग दर्जनभर कवियों ने शिरकत की... सुकुमार जी को तो इसमें होना ही था। कवि सम्मेलन की सफलता की गूंज कई दिन तक रही। मैंने जो राशि कहीं (₹500) उसे एक अनुज की तरफ से भेंट स्वरूप स्वीकारते हुए इनके द्वारा कोई ना-नुकुर नहीं

की गई। सुकुमार जी की इस, और ऐसी आत्मीयता के प्रमाण निरंतर मिलते रहे। मेरे संयोजन में जब-जब कोई आयोजन हुआ, सुकुमार जी हमेशा आए और लिफ़ाफे में रखकर जो कुछ दे दिया, सदैव सहर्ष स्वीकार किया। हालांकि दूसरा पहलू यह भी है कि अपने संयोजन में टीम बनाते हुए बड़े भाई ने कभी याद नहीं किया.. अब इस बात का मलाल तो रहना ही है। ख़ैर... कौड़ियागंज से अलीगढ़ स्थापित होने का समाचार जब सुकुमार जी ने दिया, तो मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। हालांकि तब तक मैं कासिमपुर ही रहता था। अलीगढ़-यात्रा पर प्रायः सुकुमार जी से बैठक होने लगी। सुनना-सुनाना चलता रहा।

अट्ठारह-बीस साल हो गए होंगे, शायद ज्यादा ही। एक बार मैं और कवि यादराम शर्मा जन्माष्टमी के अवसर पर आयोजित रेलवे मनोरंजन केंद्र, अलीगढ़ में एक कवि सम्मेलन में आमंत्रित थे। रात लगभग दस बजे कवि सम्मेलन समाप्त होने पर सुकुमार जी बोले, 'अशोक, अब क्या वापस कासिमपुर जाओगे, चलो घर चलते हैं! आज तुम्हें एक दिव्य आत्मा के दर्शन कराऊंगा!' मैं और यादराम शर्मा सुकुमार जी के घर पहुंच गए। वहां पहुंचकर सुकुमार जी बोले, 'अभी आराम कर लो! रात्रि बारह-एक बजे के करीब गुरु जी के दर्शन कराने ले चलूंगा। दर्शन करके तुम्हारी तबियत प्रसन्न हो जाएगी!' आराम कहां... बातें होती रहीं.. साहित्य की, कुछ अन्य इधर-उधर की। जैसे ही एक बजे,बोले- 'चलो चलते हैं!'

अलीगढ़, सुदामापुरी फाटक के पास, रेलवे लाइन के किनारे एक मंदिर के परिसर में छोटी-सी कोठरी। दरवाज़ा अंदर से बंद नहीं था। सुकुमार जी ने खोल दिया। अंदर भी दांयी ओर एक छोटी-सी कोठरी और थी। जिसका छोटा-सा खिड़कीनुमा दरवाज़ा बंद था। यह दरवाज़ा लगभग एक-डेढ़ फुट ज़मीन से ऊपर रहा होगा। कोठरी में दांयी ओर एक तख्तनुमा बिस्तर था, जिस पर सलीके से गद्दा बिछा था, तकिया रखा था। कोने में एक तरफ बाल्टी, या शायद घड़े में... पानी था । वहीं पानी की निकासी का मार्ग बना था। पुरानी दो -तीन कुर्सी भी थीं। सुकुमार जी ने बैठने का इशारा किया। हम बैठ गए, चुपचाप। दिल धड़क रहा था। अजीब-सा वातावरण था उस कोठरी का। रात के लगभग दो बजे होंगे । सुकुमार जी ने बताया कि 'गुरुजी अंदर कोठरी में समाधिस्थ हैं, अब उनके बाहर आने का समय हो गया है। गुरुजी की उम्र का पता नहीं है, घंटों समाधि में रहते हैं। मैं नियमित गुरु जी के दर्शन को आता हूं।' सुनकर जिज्ञासा और उत्तेजना बढ़ रही थी। लगभग 15-20 मिनट प्रतीक्षा के बाद झोपड़ी के अंदर का बायी ओर वाला दरवाज़ा खुला और उसमें से गुरु जी प्रकट हुए। चेहरे पर तेज, निर्विकार भाव। कोने में रखे पात्र से अपने सिर पर पानी डाला। समाधिस्थ होने से सिर की गर्मी को शांत करने का उपक्रम। कई लोटे पानी सिर पर डालने के पश्चात अंगोछे से पौंछकर अपने बिस्तर पर बैठे। सुकमार जी ने चरणों में सिर रख दिया। हमने भी अनुसरण किया। सुकुमार जी ने हमारा परिचय दिया। आशीर्वाद मिला। सुकुमार जी की वार्ता और प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर। आधा-पौन घंटा वहां रहने के बाद हम लोगों ने उन्हें दंडवत करते हुए विदा ली। यह प्रसंग बताने का मकसद यही है कि सुकुमार जी जहां साहित्य में अपनी पैठ रखते हैं, वहीं आध्यात्म से भी गहरा रिश्ता रहा है। नशे के बारे में बताते हैं कि कोई ऐसा नशा नहीं जो मैंने न किया हो।

1999 में प्रकाशित मेरे ग़ज़ल-संग्रह 'मुस्कानें

हैं ऊपर- ऊपर' पर सुकुमार जी ने लंबा आलेख तैयार किया। जिसे वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़ के पुस्तकालय-हाल में डॉ वेदप्रकाश अमिताभ द्वारा आयोजित और संयोजित, संचालित लोकार्पण समारोह में, जिसमें कि अलीगढ़ के अधिकांश वरिष्ठ साहित्यकार उपस्थित थे। नीरज जी जाम में फंस जाने के कारण कार्यक्रम में नहीं पहुंच सके थे। बाद में वे रास्ते से ही वापस लौट गए थे। बहरहाल, सुकुमार जी ने वहां अपना वह आलेख पढ़ा। उनके द्वारा किताब से उद्धृत शेरों पर वाहवाही से उपस्थित जनों ने अपनी सहमति की मोहर लगाई।

सुकुमार जी मुख्य रूप से कहानीकार हैं। एक ज़माने में साहित्य की सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाएं यथा- धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, सारिका, कादंबिनी आदि आपकी कहानियों को ससम्मान प्रकाशित करती रही हैं। अख्खड़पन ऐसा कि कहानी पर मुकदमे भी चल गए। लेकिन लिखा तो जी खोलकर लिखा, बिंदास लिखा। व्यंग्य कविता में भी श्री सुकुमार का कहानीकार अपनी पूरी छाप छोड़ता है। जब आप व्यंग्य कविता में मिर्जा खालिद का सहारा लेकर सामाजिक विसंगतियों, विडंबनाओं पर प्रहार करते हैं तो श्रोता वर्ग एक-एक पंच पर उछल-उछल कर तालियां बजाता है, यूंकि काव्य-मंच के अनूठे व्यंग्यकार हैं सुरेन्द्र सुकुमार।

भाभी जी के स्वर्गवास को लगभग 6 वर्ष हो गए। बीच में लगा कि इस सदमे से आप पूरी तरह टूट गए हैं। इस बीच गंभीर रूप से बीमार भी रहे। 2020 के अलीगढ़ प्रदर्शनी के अखिल भारतीय कवि सम्मेलन में जब उन्हें बैठकर लड़खड़ाती जुबान में काव्य-पाठ करते देखा, तो बहुत कष्ट हुआ। लेकिन सुकुमार आसानी से हार मानने वाली व्यक्ति नहीं हैं। जिसका प्रमाण ये कि अभी हाल ही में पूरे जोश-खरोश के साथ शेमारू टीवी के, भाई शैलेश लोढ़ा द्वारा संचालित लोकप्रिय कार्यक्रम 'वाह भाई वाह' में आपने उसी जोशखरोश के साथ अपनी प्रस्तुति दी है, जिसके लिए कि आप जाने जाते हैं। पिछले दस-बारह साल से मुझसे कहते रहे हैं कि अशोक मेरा कहानी-संग्रह प्रकाशित कराओ। तमाम पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों की कटिंग्स रखी हैं। छांटकर पांडुलिपि तैयार करा दो। मैं हमेशा कहता रहा कि अवश्य, मैं किसी दिन घर आता हूं। जब मेरे पास समय हुआ तो पता चला कि वे अलीगढ़ में नहीं हैं। जब उन पर समय हुआ तो मैं कहीं अन्यत्र उलझा हुआ रहा। अभी पिछले ही माह (मार्च-23) को फोन करने पर पता चला कि अपने ओजोन सिटी वाले फ्लैट पर हैं। मिलना तय हुआ। शाम को मैं अपने युवा साथियों सुधांशु गोस्वामी और डॉ.दौलतराम शर्मा के साथ उनके आवास पर पहुंचा, तो तब तक मुर्गा-दारू का सेवन हो चुका था। लगभग आधा-पौन घंटा बातें हुईं। फिर कहानी-संग्रह के प्रकाशन की बात चली। समय तय हुआ। उधर से कहा गया कि किसी दिन शाम को 5 बजे के करीब आओ। नॉनवेज में जो पसंद हो समय से फोन करके बता देना। सेवक बेहतरीन कुक है। तुम्हारी तबियत खुश हो जाएगी। तभी कहानियां में छांट लेंगे और तुम्हारी पत्रिका 'अभिनव प्रयास' का आजीवन शुल्क भी दे दूंगा । अब उन्होंने बताया कि दिल्ली के मित्र सुधेन्दु ओझा के सौजन्य से दो कहानी-संग्रह प्रकाशित हो रहे हैं, तो बहुत प्रसन्नता हुई। कहानी-संग्रहों की प्रतीक्षा रहेगी। ईश्वर सुकुमार जी का अख्खड़पन और जीवंतता बनाए रखे, इनका भोग और योग चिरायु हो, यही कामना है।

अवधेश कुमार सिंह राठौर (आईएएस)

"सुरेन्द्र सुकुमार" मेरी दृष्टि में

सुरेन्द्र सुकुमार से मेरा परिचय , घनिष्ठता " दोस्ती सबकुछ सन 1995 से लेकर 2000 तक के मेरे अलीगढ़ हाथरस के सेवाकाल में ही हुआ और तबसे निरंतर हम लोग घनिष्ठ आत्मीय रूप से मिलते रहे हैं।

मेरी प्रारंभ से ही हिंदी साहित्य विशेषतः काव्य में गहरी रुचि रही है।

जहाँ भी रहा बड़े बड़े कवि सम्मेलन आयोजित कराए।

अलीगढ़ में भी सुरेन्द्र सुकुमार से कह कर एक साहित्यिक संस्था " अक्षरा " नाम से बनवाई उसके तत्वावधान में दो गीत महोत्सव आयोजित किए जिसमें संस्था के पदाधिकारी डॉक्टर महेन्द्र कुमार मिश्रा, डॉक्टर नरेन्द्र तिवारी, डॉक्टर वेदप्रकाश अमिताभ, सुरेश कुमार और डीएस कॉलेज के तत्कालीन प्राचार्य आर एन सिंह का विशेष योगदान रहा दोनों ही महोत्सव की अध्यक्षता नीरज जी ने की।

हिंदी के लगभग सभी गीतकारों को आमंत्रित किया गया और सभी ने अपने श्रेष्ठतम गीत सुना कर कार्यक्रम को यादगार बना दिया था।

मैंने उक्त कार्यक्रमों में सुरेन्द्र जी से बहुत आग्रह किया के अपने गीत सुनाएं पर वे माइक तक पर नहीं आए।

जब मैं हरदोई में जिलाधिकारी था तब भी मैंने वहाँ दो कवि सम्मेलन और दो मुशायरे कराए दोनों में ही श्रेष्ठ कवियों और शायरों की सूची सुरेन्द्र जी ने ही बनाई और दोनों ही कार्यक्रम बेहद सफल रहे।

हाँ बात सुरेन्द्र सुकुमार की कर रहा था जो अपने लंबे काले घुंघराले बालों की वज़ह से कितनी भी बड़ी भीड़ में आसानी से पहचाने जा सकते हैं घुंघराले बालों के अतिरिक्त वे कहीं से भी सुकुमार नहीं लगते हैं अपने ज़िद्दी स्वाभाव के कारण मैं उन्हें अक्खड़, फक्खड़ मस्त फ़क़ीर के रूप में जानता हूँ।

अपनी पहली कहानी "अगिहाने " पर क्षेत्रीय ज़िमीदार ने इनके और सारिका के सम्पादक कमलेश्वर और मुद्रक प्रकाशक श्री कृष्णगोविंद जोशी पर मानहानि का मुक़दमा दायर कर दिया तो एक वर्ष बाद सम्पादक, प्रकाशक सारिका में खेद प्रकाशन करके अलग हो ही पर ये लड़ते रहे जबकि इनकी हत्या करवाने के लिए भी उन्होंने एक अपराधी को अग्रिम धनराशि दी थी।

इत्तेफाक से वो अपराधी इनका परिचित निकला। सुरेन्द्र जी ने ऐसी स्थितियां पैदा कर दीं कि उनको मुक़दमा वापस लेना पड़ा एक नवोदित युवा व्यक्ति के लिए कितना बड़ा रिस्क था पर सुरेन्द्र सुकुमार तो सुरेन्द्र सुकुमार कभी भी किसी से डरना सीखे ही नहीं।

एक व्यंग्य कविता को लेकर एक बार दो मुस्लिम युवकों ने इनके ऊपर गोली भी चलाई यदि ये घूम नहीं जाते तो स्वर्ग नर्क कहीं भी सिधार सकते थे पर जीवट इतना कि ख़ुद ही गाड़ी चला कर मेडिकल कॉलेज चले गए। वहाँ ऑपरेशन करके गोली निकाली गई शहर के सभी प्रतिष्ठित जन नेता अधिकारी, साहित्यकार उपस्थित हो गए थे पर

जिलाधिकारी के कहने के बाद भी न तो सुरक्षा गार्ड लिया और न ही एफ आई आर लिखवाई। मीडिया को यह बयान दिया कि जिसने गोली मरवाई उसने गलतफहमी में मरवाई इसलिए उसका कोई दोष नहीं है और जिन लड़कों ने गोली मारी वो तो व्यवसायिक शूटर थे उनका तो यही धंधा है इसलिए उनका भी कोई दोष नहीं है। सबकुछ जानते हुए भी इन्होंने कोई एक्शन नहीं लिया ये जानते थे कि जिसने गोली मरवाई वो समाजवादी पार्टी का विधायक था और उस समय समाजवादी पार्टी की ही सरकार थी।

जबकि इनके मुलायम सिंह जी के परिवार से मधुर सम्बंध हैं यदि ये कुछ भी बताते तो बाबेला मच जाता जो बुरा चाहता है उसका बुरा ही होता है कुछ समय बाद उस विधायक की गोली मारकर हत्या कर दी गई।

उनके अलमस्त फ़क्कड़ पन और बेहद स्वाभिमानी स्वभाव का यह हाल है कि कई बार शिवपाल सिंह जी से सुरेन्द्र जी के बेहद घनिष्ठ सम्बंध हैं बल्कि उनके पूरे परिवार से ही हैं न एक बार शिवपाल सिंह जी इनसे कहा कि " भाई साहब सब लोगों को 11 लाख रुपए का "यश भारती" पुरस्कार मिल रहे हैं और 50 हजार रुपए की प्रति माह पेंशन मिल रही है तो आप भी एक प्रार्थनापत्र और बायोडाटा देदें तो आपको भी "यश भारती" पुरस्कार दिलवादें। उस समय सरकार भी समाजवादी पार्टी की थी तो सुरेन्द्र जी ने कहा कि "यदि आपको यह लगता है कि साहित्य में हमारा कोई योगदान है तो हमें पुरस्कार देदें प्रार्थना पत्र तो हम नहीं देंगे हमने गाँधी जी की जीवनी में पढ़ा है कि किसी से कृपा की याचना करना अपनी स्वतंत्रता बेचना है"

न इन्होंने प्रार्थना पत्र दिया और न ही इन्हें पुरस्कार मिला उस समय मुलायम सिंह जी के गुरू और सुरेन्द्र जी के परम् आत्मीय श्री उदयप्रताप सिंह जी उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के कार्यकारी अध्यक्ष थे सुरेन्द्र जी ने हिन्दी संस्थान में भी कोई प्रार्थना पत्र नहीं दिया। इसलिए हिंदी संस्थान का भी कोई पुरस्कार इन्हें नहीं मिला अब कोई भी विचार कर सकता है कि इतना स्वाभिमान और फ़क्कड़ पन कितना कठिन है जो इतने बड़े लाभ को भी छोड़ दे।

सुरेन्द्र जी ने अपने जीवन का प्रारंभ काव्यपाठ से किया था पर सन 1975 से कहानी लेखन शुरू कर दिया था और शीघ्र ही उनकी कहानियाँ धर्मयुग, सारिका, साप्ताहिक हिंदुस्तान, इंडिया टुडे, रविवार, हँस में

ससम्मान प्रकाशित होने लगीं और देखते देखते वे आठवें दशक के महत्वपूर्ण कहानीकार बन गए। उनकी कहानियों के नाट्यरूपातरण हुए उनकी कहानियों के भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त विदेशी भाषा मे भी अनुवाद हुए मैं यह कह सकता हूँ कि यदि सुरेन्द्र जी कवि सम्मेलनों के मोहपाश में नहीं फँसते तो आज हिंदी कथासाहित्य में एक उच्चतम मुक़ाम पर खड़े होते।

अपने स्वाभिमान के कारण वो कभी भी किसी प्रकाशक के पास अपनी पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए नहीं गए वे यह सोचते रहे कि प्रकाशक का काम अच्छे साहित्य को प्रकाशित करना है और समीक्षक का काम अच्छे साहित्य पर समीक्षा करना है इसलिए न ये किसी प्रकाशक के पास गए और न ही किसी समीक्षक के पास। पर ये इनकी भूल साबित हुई दो कहानी संग्रह मित्र प्रकाशकों ने प्रतिशत किए।

एक "नागवंशी" दूसरा "ग़लत व्याकरण" पर ढंग से समीक्षा नहीं होने के कारण उनकी समुचित चर्चा नहीं हो पाई।

एक बार नौकरी छोड़ने के बाद उन्होंने कभी भी कोई नौकरी नहीं की और एडवोकेट होते हुए भी वक़ालत भी नहीं की। आगरा विश्वविद्यालय से स्वर्ण पदक के साथ प्रथम श्रेणी में एम ए हिंदी से करने के बाद भी प्रवक्ता की नौकरी भी नहीं की। कवि सम्मेलनों में स्तरीय हास्यव्यंग्य कवि के रूप में सुदृढ़ पहचान बनाने के साथ साथ अपार धन और लोकप्रियता अर्जित की अपने देश के अतिरिक्त अमेरिका, कनाडा, जॉर्डन, चाइना, इंग्लैंड, दुबई, शारजाह, मस्कट, ओमान, सिंगापुर की कई कई बार काव्ययात्राएँ कीं उनका चुलबुला पन और व्यवहार इतना आकर्षक है कि कवियित्रियाएँ और महिलाएँ इनके ऊपर सहज ही आकर्षित हो जाती थीं बहुत ही कम कवि हैं जिनके पास इतनी महिला मित्र हों।

पहले आरएसएस फिर सीपीआई फिर सीपीएम और फिर नक्सलाइट मूवमेंट से जुड़ने के साथ साथ अध्यात्म में विशेष रूचि रही और अंत में अद्वैत दर्शन से प्रभावित होकर कई सद्गुरुओं से दीक्षा लेकर ध्यान साधना में लग गए।

उपनिषदों का गहराई से अध्ययन मनन चिंतन किया और अपने सद्गुरु माँ पूर्ण प्रज्ञा से उपनिषदों का श्रवण, मनन, चिंतन और निदिध्यासन किया जे कृष्णमूर्त, रमण महर्षि और ओशो का भरपूर अध्ययन किया और ओशो ने जब पहली बार पूना आश्रम में कवि सम्मेलन कराया तो नीरज जी के साथ इनको

भी आमंत्रित किया वहाँ भी पाँच दिन रह कर आए वहाँ इनको गहरे आध्यत्मिक अनुभव हुए। इस समय भी दो सद्गुरुओं के सान्निध्य में हैं और उनकी मन से सेवा करते हैं मैंने दोनों के ही दर्शन किए हैं एक तो योगी हैं श्री नीलकंठ गिरि जी महाराज जो दिन में केवल चार सेव एक कि लो दूध और सौ ग्राम पनीर लेते हैं पानी और नमक तक नहीं लेते हैं 18 घण्टे निर्विकल्प समाधि में बैठते हैं।

सुरेन्द्र जी और मेरी यायु में मात्र साल छः महीने का अंतर है पर मैं उन्हें भाई साहब कहता हूँ और वे मुझे भाई साहब कहते हैं उनके अंदर एक बेहतरीन साहित्यकार है। इसीलिए उन्होंने कभी भी कवि सम्मेलनों को गम्भीरता से नहीं लिया वे सदैव आधे अधूरे मन से कवि सम्मेलन करते रहे सिर्फ़ धनोपार्जन के लिए यदि वे पूरे मन से कवि सम्मेलन करते रहते तो मैं गारण्टी से कह सकता हूँ कि वे कवि सम्मेलन के सुपर स्टार होते। इसीलिए उन्होंने अपनी पत्नी सुधा जी की मृत्यु के बाद कवि सम्मेलनों में आना जाना लगभग बंद ही कर दिया है।

उनके प्रगाढ़ सम्बंध बड़े बड़े राजनेताओं, अधिकारियों, उद्योगपतियों , साहित्यकारों से रहे हैं पर उन्होंने कभी भी किसी से भी कोई लाभ नहीं लिया। साहित्यकारों में धर्मवीर भारती, कमलेश्वर, कन्हैया लाल नंदन, अज्ञेय, सर्वेस्वर दयाल सक्सेना, नीरज जी, सोम ठाकुर, उदयप्रताप सिंह जी, आदि से घनिष्ठतम सम्बंध रहे बल्कि पारिवारिक रहे भाभियों ने भी सुरेन्द्र जी पर अपना भरपूर स्नेह लुटाया कवियित्रियों ने और अन्य महिला मित्रों ने भी सुरेन्द्र जी से खूब प्यार किया बावजूद इसके उन्होंने अपनी पत्नी सुधा जी से अन्यन्य रूप से प्यार किया। सुधा जी थीं भी ऐसी ही महिला बहुत ही शालीन व्यवहार कुशल और ममतामयी थीं अथित सत्कार उनकी हॉवी थी। अथितियों का बेहद ख्याल रखती थीं उनको खिलाने पिलाने का बहुत ही शौक़ था यही कारण था कि जबतक वे रहीं इनके घर में साहित्यकारों व मित्रों का जमघट लगा रहता था। मैंने भी उनका आथित्य खूब उठाया है स्वाभिमानी इतने कि एक बार सारिका में उपसम्पादक पद के लिए इंटरव्यू देने गए तो इंटरव्यू कमेटी में अज्ञेय जी के अतिरिक्त नंदन जी भी बैठे थे। नंदन जी ने पूछा कि रोमांटिक उपन्यासों में आपको कौन से उपन्यास पसंद हैं तो बताया कि टीनएज में भारती जी का "गुनाहों का देवता" उषा प्रियवंदा का "रुकोगी नहीं राधिका" आयु बढ़ जाने पर राजेन्द्र यादव का "एक इंच मुस्कान" और अज्ञेय जी का "नदी के द्वीप" नंदन जी ने कहा कि नदी के द्वीप का नाम आप इसलिए ले रहे हैं क्योंकि अज्ञेय जी यहाँ बैठे हैं तो सुरेन्द्र जी ने तत्काल कहा कि यदि आप ऐसा समझ रहे हैं तो बता दें कि अज्ञेय जी का उपन्यास "शेखर एक जीवनी" दो कौड़ी का लगा अज्ञेय जी ने पहली बार इन्हें मुंह उठा कर देखा परिणाम जो होना था वही हुआ इन्हें नहीं लिया गया।

साधू सन्यासियों के बीच बैठने उठने के कारण भँग का सेवन चरस, गाँजे की चिलम पीना इनकी आदत में शामिल हो गया था शराब के लिए तो इनका यह कहना है कि कायस्थ होने के नाते शराब पीना तो हमारा खानदानी शौक़ है। नशे के नाम पर सुरेन्द्र जी ने लगभग सभी नशे भरपूर किए पर सुधा जी के जाने के बाद सब छोड़ दिए बस खानदानी नशा शेष रह गया है। अभी कुछ दिन पहले मैं भी इनके पास रह कर आया हूँ सबकुछ छोड़ छाड़ कर मस्त जीवन जी रहे हैं।

अभी बताया कि "भाई साहब दिल्ली के श्री सुधेन्दु ओझा हमारा समस्त साहित्य प्रकाशित कर रहे हैं" मुझे भी बहुत ही प्रसन्नता हुई कि कोई तो मिला जो इन जैसे फ़क्कड़ स्वाभिमानी , मस्त , अक्खड़ व्यक्ति को कोई तो समझ पाया मैं सुरेन्द्र सुकुमार जी के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ और साथ साथ श्री सुधेन्दु ओझा को बहुत बहुत बधाई देता हूँ कि वे इनके साहित्य को पुनःप्रकाश में ला रहे हैं प्रभु उनको सभी इस महत्वपूर्ण काम में सफलता मिले

अस्तु

(1)
सिर्फ देखने आई थी
क्या तुम फिर लौटे थे
सड़क से उतर पगडंडियों पर
सुर्ख झरबेरियां चुनने
झरबेरियां जस की तस
मुस्कुरा रही हैं
तपतपाती धूप में
उन्हें भी प्रतीक्षा थी
चुने जाने की
(2)
सड़क बह रही थी
रूखी नदी सी
झिलमिलाती मरीचिका
खड़ी हो जाती रह रह कर
पगडंडियां गर्वित थीं
सड़क से मिल कर
वे सन्निकट थीं सड़क के
गर्वित थीं
सड़क को अपना मान
सड़क भाग रही थी
सीना तान
(3)
शब्दों को क्या पता
मान सम्मान अपमान
वे बहते रहते हैं आत्मा की
गहराइयों की बेचैनियां बटोर
सुनो या न सुनो
पढ़ो या फिर चाहो भी मत
पढ़ना या देखना
शब्द पगडंडियां हैं
महाकाव्य या सड़क नहीं
(4)
माना कि बहुत कठिन है
भागते रहना पगडंडियों पर
यहीं से चल कर मिलती है सड़क
ये भी कि समय कम है
दूर तक पहुंच कर मिलेगा लक्ष्य
पगडंडियों को याद है कटाव
रिसते हुए घाव थाम लेती हैं
बबूल की झाड़ियां
ये बताते हुए कि
वो सड़क है और तुम पगडंडियां

प्रतिमा पुष्प